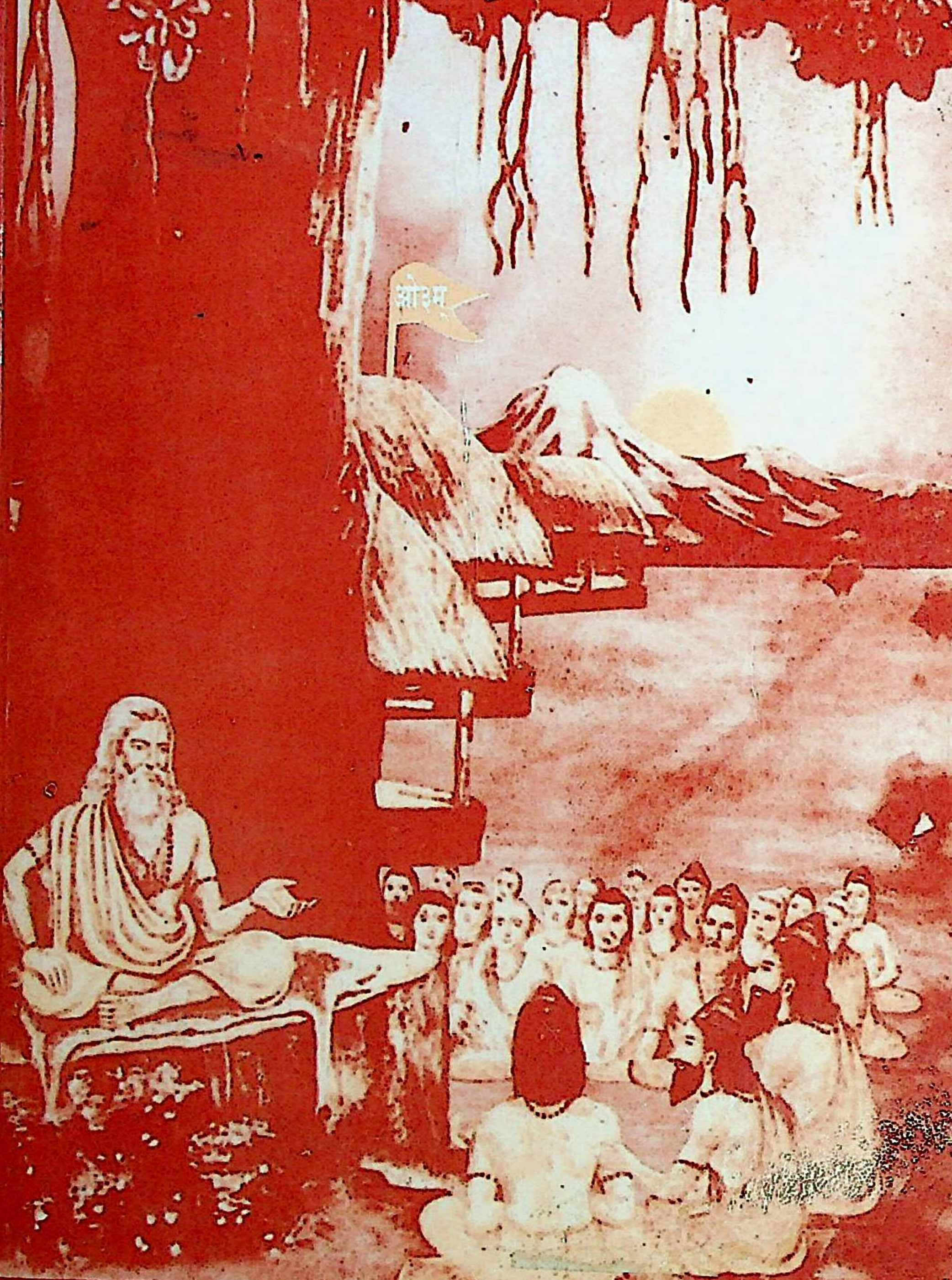
अथर्ववेद सन्देश



डॉ. सोमदेव शास्त्री



लेखक

डा. सोमदेव शास्त्री

द्वारा

लिखित वैदिक साहित्य

१ वैदिक - सन्देश
२ गीता - सन्देश
३ उपनिषद् - सन्देश
४ रामायण - सन्देश
५ महाभारत - सन्देश
६ स्मृति - सन्देश
७ दर्शनों का तत्त्वज्ञान
८ सत्यार्थ - सन्देश
९ संस्कार - सन्देश
१० ऋग्वेदादि - सन्देश
११ यजुर्वेद - सन्देश
१२ सामवेद - सन्देश
१३ अथर्ववेद सन्देश
१४ सरल संस्कृत शिक्षक
१५ स्वर सिद्धान्त
१६ पूना प्रवचन सार
१७ पं. श्याम जी कृष्ण वर्मा
१८ मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम



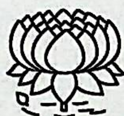


अथर्ववेद-सन्देश



❋ लेखक ❋

डॉ. सोमदेव शास्त्री



❋ प्रकाशक ❋

प्रणव प्रकाशन

३०९, मिल्टन अपार्टमेन्ट्स

जुहू, कोलिवाड़ा, मुम्बई - ४०० ०४९.

प्रथम संस्करण   विक्रम संवत् - २०६२   मूल्य : ४० रुपये

१००० प्रति

प्राप्ति स्थान :

सोमदेव शास्त्री
३०९, मिल्टन अपार्टमेन्ट्स
जुहू कोलिवाड़ा, मुम्बई - ४९.

आर्य समाज सान्ताक्रुज
विठ्ठलभाई पटेल मार्ग,
सान्ताक्रुज (प.), मुम्बई - ५४.

प्रथम संस्करण
अप्रैल - २००५

मुद्रक :
निराला मुद्रक
१४०, सानेगुरुजी मार्ग,
मुम्बई - ४०० ०११.

अथर्ववेद सन्देश के सम्बन्ध में दो शब्द

श्री डॉ. सोमदेव जी शास्त्री आर्य जगत् के मनीषी विद्वान्, ओजस्वी वक्ता एवं लेखक हैं। ये सद्‌गृहस्थी होते हुए भी सारे देश में एक निस्पृहः प्रचारक के रूप में प्रचार कर रहे हैं। जहाँ वैदिक धर्म के लिये इनकी लेखनी अजस्त्र चल रही है। वहाँ इनके व्याख्यान भी गम्भीर एवं प्रभावशाली होते हैं। ऋषिकृत तथा अन्य आर्ष साहित्य पर सन्देश माला प्रकाशित कर रहे हैं तथा सभी ऋषि ग्रन्थों, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, उपनिषद्, दर्शनादि की परीक्षायें भी निरन्तर चला रहे हैं। इसी क्रम में अब उन्होंने अथर्ववेद सन्देश नामक पुस्तक लिखी है। उसका कुछ अंश मुझे देखने को मिला। अथर्ववेद के विषय में पाश्चात्त्य विद्वानों ने अनेक भ्रम फैला रखे हैं। वे इसकी नयी भाषा मानकर इसे सब वेदों से नया वेद मानते हैं, तो कुछ विद्वान् इसको वेदों में गिनती करते ही नहीं, क्योंकि कहीं कहीं इन चार वेदों का स्पष्ट वर्णन न होकर त्रयीविद्या कहा गया है, क्योंकि ज्ञान, कर्म, उपासना नाम से तीन विद्या हैं। उन तीनों विद्याओं का ही चारों वेदों में वर्णन है। जबकि अथर्ववेद भी अन्य वेदों की तरह भगवान् की वाणी अंगिरा ऋषि से प्रकट हुई है। इसी प्रकार कुछ विद्वान् इस अथर्ववेद में जादू-टोना, वशीकरण आदि का वर्णन मानते हैं तथा राक्षस पिशाचादि का वर्णन भी अथर्ववेद के मन्त्रों से होना मानते हैं। राक्षस-पिशाचादि शब्दों का यथार्थ तथा अथर्ववेद के विषय में फैली हुए भ्रान्तियों का निराकरण करके अनेक महत्वपूर्ण बातों का वर्णन करते हुए अथर्ववेद में किस प्रकार की विद्या है ? इसमें किन-किन बातों का वर्णन किया गया है, इन सबका उल्लेख विद्वान् लेखक ने किया है। सामवेद सन्देश, यजुर्वेद सन्देश के पीछे यह अथर्ववेद सन्देश पाठकों की सेवा में देकर आदरणीय श्री शास्त्री जी ने अथर्ववेद विषयक अनेक समस्याओं का समाधान किया है। इसके लिये मैं डॉ. श्री सोमदेव जी को धन्यवाद के साथ शुभाशीष भी देता हूँ। भगवान् इनको इसी प्रकार की शक्ति, सामर्थ्य प्रदान करें, जिससे वे स्वस्थ एवं निरोग रहकर दीर्घ समय तक वेद का सन्देश देश-देशान्तर में फैलाते रहें।



– स्वामी धर्मानन्द सरस्वती
संचालक
गुरुकुल आश्रम आमसेना (ओड़ीसा)

प्राक्कथन

वेद समस्त ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हैं (सर्वज्ञानमयो हि सः - मनु.) ऐसी मान्यता प्राचीन काल से चली आ रही है इसी को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्रादि चारों वर्णों तथा ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ और संन्यास आदि चारों आश्रमों के क्या कर्तव्य हैं इन सब का वर्णन वेदों में विद्यमान है। इतना ही नहीं अपितु पृथिवी-अन्तरिक्ष और द्युलोक में कौन कौन से तत्व हैं अर्थात् भूगर्भविद्या-चिकित्सा, भौतिक, ज्ञान-विज्ञान-यज्ञ-चिकित्सा-व्यापार-राज्य-व्यवस्था-ईश्वर-उपासना आदि सभी विषयों का वर्णन वेदों में किया गया है। जैसा कि लिखा है-

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति॥ (मनु. ११-९७)

वेदों के विषय में अनेक मिथ्याधारणाओं का समाधान महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में किया। अथर्ववेद के विषय में भी अनेक भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं जैसे कि अथर्ववेद में जादू-टोना-मारण-वशीकरण-भूत-प्रेतादि का वर्णन है। इन सभी मिथ्या धारणाओं को दूर करने का प्रयास सप्रमाण आर्य विद्वानों ने अपने अथर्ववेद भाष्यों में किया है। उन्हीं विद्वानों के वेदभाष्यों का अनुसरण करते हुए इस लघु पुस्तिका के प्रथम अध्याय में अथर्ववेद से सम्बन्धित मिथ्या मान्यताओं को दूर करने का यत्न किया है, एतदर्थ सभी आर्य विद्वानों का मैं हृदय से अनुगृहीत हूँ।

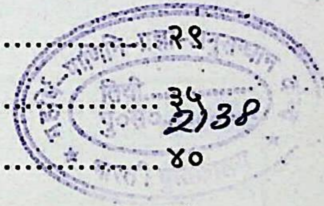
इस पुस्तक के प्रकाशन में माननीय श्री चौधरी मित्रसेन जी रोहतक (हरियाणा) ने सहयोग प्रदान करके मुझे आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त किया, इसके लिये मैं आपका आभारी हूँ। आर्य जगत् के तपस्वी संन्यासी श्रद्धेय स्वामी धर्मानन्दजी सरस्वती गुरुकुल आमसेना (उड़ीसा) ने पुस्तक के विषय में दो शब्द लिख कर पुस्तक की महत्ता में वृद्धि की है। स्वामी जी महाराज का मेरे गुरुकुल में प्रवेश (सन् १९६४) से लेकर अद्यावधि पर्यन्त मुझे स्नेह और आशीर्वाद प्राप्त है यह मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ कि ऐसे तपस्वी का वरद हस्त मुझ पर है। पुस्तक की साज सज्जा एवं शुद्ध मुद्रणादि के लिये श्री देवेश्वर शर्मा उपप्रधान आर्य समाज मुम्बई ने विशेष ध्यान रखा इनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

मुम्बई
३०-४-२००५

विदुषामनुचर
सोमदेव शास्त्री

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या



'वेद महिमा'

अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥

(महा. शान्तिपर्व २३२-२४)

अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में स्वयम्भू परमात्मा ने दिव्य वेदों का ज्ञान दिया । इसमें मनुष्यों के हितकारी सभी कर्मों का उपदेश दिया गया है । परमात्मा का ज्ञान होने के कारण न तो इसका कभी आरम्भ हुआ है न इसका कभी विनाश होता है यह अनादि और नित्य है ।

"अथर्ववेद - परिचय"

अथर्व शब्द का अर्थ :- अथर्व शब्द ''थर्व कौटिल्यहिंसयो:'' धातु से बनता है। जिसका तात्पर्य है कि जिसमें कुटिलता (छल-कपटादि) और हिंसा नहीं होती है उसे अथर्व कहते हैं। छल कपट और हिंसा करने से या हिंसक वृत्ति (स्वभाव) रखने से मनुष्य की मानसिक चंचलता बढ़ती है जिससे मनुष्य को मानसिक एकाग्रता-स्थिरता और शान्ति नहीं प्राप्त हो पाती है, इसलिये जिसमें कुटिलता और हिंसक प्रवृत्ति दूर करने या समाप्त करने का उपदेश है उसे अथर्व (वेद) कहते हैं।

अथर्व शब्द ''थर्व गतौ'' धातु से भी बनता है जिसका तात्पर्य है कि जहां गति अर्थात् चंचलता न हो, स्थिरता या मानसिक एकाग्रता हो, मानसिक एकाग्रता और स्थिरता से ही आत्मसाक्षात्कार और ब्रह्म की अनुभूति होती है। ऐसा उपदेश जिसमें दिया गया है उसे अथर्व (वेद) कहते हैं। इसलिये अथर्ववेद को 'ब्रह्मवेद' भी कहा गया है। अथर्व वेद को ब्रह्मवेद क्यों कहा गया है ? इसको स्पष्ट करते हुए गोपथ ब्राह्मण (३-४) में लिखा है कि जो अथर्वा है वह भेषज (दवा) है, जो भेषज है वह अमृत है और जो अमृत है वह ब्रह्म है[१]। अथर्व शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए महर्षि यास्क ने निरुक्त (११-४) में लिखा है कि निश्चल और संशय रहित ज्ञान को अथर्व कहते हैं[२] ऐसा ज्ञान जिस वेद में है उसे अथर्व वेद कहते हैं।

'अथर्व' शब्द की व्याख्या करते हुए गोपथ ब्राह्मण (१-४) में लिखा है कि अब पास में ही उसे ढूंढ़ो (अथ+अर्वाक्+एनम्) अर्थात् वह (ब्रह्म) पास में ही है, यह ज्ञान जिस वेद में दिया गया है उसे अथर्व वेद कहते हैं[३]। अथ (अब) अर्वन् (इस ओर) अब इस ओर अर्थात् आत्म साक्षात्कार की ओर (अथ+अर्वन्=अथर्वन् =अथर्व) यह उपदेश इस वेद में दिया गया है इसलिये इसे 'अथर्व वेद' कहते हैं।

विविध नाम:- अथर्व वेद के लिये अनेक नामों का उल्लेख मिलता है। इसे ब्रह्मवेद-छन्दोवेद-अंगिरावेद-अथर्वाङ्गिरसवेद कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण में इसे ''भृग्वाङ्गिरो वेद'' भी लिखा है क्योंकि अंगिरा के शिष्य भृगु थे। अंगिरा ने भृगु को इसका उपदेश दिया और भृगु ने इसका प्रचार प्रसार किया इसलिये इसे 'भृग्वाङ्गिरो वेद' कहते हैं।

ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन, ब्रह्म की प्राप्ति (चित्त की एकाग्रता) के उपायों का वर्णन इसमें होने से इसे ब्रह्मवेद भी कहा गया है।

अथर्व वेद में किसी एक छन्द की प्रमुखता नहीं है। जैसे ऋग्वेद में गायत्री छन्द का, यजुर्वेद में त्रिष्टुप् छन्द का तथा सामवेद में जगती छन्द का प्रमुख रूप से वर्णन है, इन छन्दों में इन तीनों वेदों के मन्त्र अधिकांश रूप में मिलते हैं किन्तु अथर्व वेद में

किसी एक छन्द का प्रमुख रूप से वर्णन न होकर सभी छन्दों का वर्णन है। सभी छन्दों का प्रयोग अथर्व वेद में होने के कारण इसलिये अथर्ववेद को छन्दो वेद कहा जाता है[४]।

छन्दो वेद और महर्षि दयानन्द :- महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद (३१-७) के मन्त्र में आये हुए छन्दांसि शब्द का अर्थ अथर्ववेद किया है[५]। छन्दांसि शब्द का अर्थ अथर्ववेद क्यों किया है ? इसको स्पष्ट करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि सभी वेद मन्त्र किसी न किसी छन्द में ही विद्यमान हैं पुनः 'छन्दस्' शब्द का प्रयोग वेदमन्त्र में करके स्पष्ट किया है कि 'छन्दस्' शब्द अथर्व वेद के लिए है। छन्दांसि शब्द का प्रयोग हरिवंश पुराण में करते हुए लिखा है कि -

ऋचो यंजूषि सामानि छन्दांस्यथर्वणानि च।
चत्वारस्त्वखिला वेदाः सरहस्याः सविस्तराः ॥

यह उल्लेख पं. रघुनन्दन शर्मा ने 'वैदिक सम्पत्ति' नामक पुस्तक में किया है। इस प्रकार अथर्ववेद के लिए छन्दस् शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। अथर्वा ऋषि के द्वारा दृष्ट होने के कारण गोपथ ब्राह्मण में इसे 'अथर्वणो वेद' लिखा है[६]। अंगिरा ऋषि के द्वारा दृष्ट मन्त्रों का संकलन इस वेद में है इसलिये इसे अंगिरसो वेद भी गोपथ ब्राह्मण भी लिखा है।

अथर्व वेद और आधुनिक विद्वान् :- विगत दो शताब्दियों से वेदों पर पाश्चात्त्य विद्वानों ने तथा उनका अनुसरण करने वाले भारतीय विद्वानों ने वेद और वैदिक साहित्य पर अत्यधिक कार्य किया है। किंतु सायण-महीधर-उव्वटादि मध्यकालीन वेद भाष्यकारों का अनुसरण करके वे वैदिक वाङ्मय के विषय में दिग्भ्रमित हो गये जिसके कारण कई स्थलों पर वेदों का अनर्थ कर डाला। ऐसा ही अनर्थ 'अथर्ववेद' के साथ किया गया है। तथा कथित आधुनिक विद्वान् 'अथर्वन्' शब्द का अर्थ 'जादू-टोना' करते हैं अर्थात् अथर्ववेद में जादू टोने के मन्त्र हैं। पाश्चात्त्य विद्वान् ब्लूमफील्ड ने 'अथर्वन्' शब्द का अर्थ पवित्र-सात्विक मन्त्र का बोधक माना है। तथा अंगिरस् शब्द को अपवित्र अभिचारादि कर्म का प्रतीक माना है। कुछ विद्वानों ने 'अथर्वन्' का अर्थ रोगनाशक मन्त्रों का संकलन तथा 'अंगिरस्' का अर्थ शत्रु और विद्रोहियों के विनाश तथा अभिशाप विषयक मन्त्रों का संकलन किया है। अर्थात् दोनों प्रकार के (रोगनाशक और शत्रुविनाशक) मन्त्रों का संकलन इस वेद में होने के कारण इसे "अथर्वाङ्गिरस वेद" कहते हैं, जबकि यह मान्यता अथर्ववेद सम्मत नहीं है। पाश्चात्त्य विद्वान् तथा उनके अनुयायी भारतीय विद्वान् सायण भाष्य में उल्लेख किये गये कौशिक सूत्र के विनियोगों के कारण दिग्भ्रमित हुए हैं।

अथर्व वेद की प्राचीनता :- 'वेदत्रयी' शब्द के कारण यह भ्रान्त धारणा लोगों ने बना ली कि वेद चार नहीं अपितु तीन हैं। ऋग्वेद, यर्जुवेद, सामवेद ही हैं क्योंकि वेदत्रयी के प्रसंग में इन तीनों के ही नामों का उल्लेख मिलता है अथर्व वेद का उल्लेख नहीं मिलता है। इसलिये यह मिथ्या मान्यता प्रचलित हो गयी कि अथर्ववेद तीनों वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) के समान प्राचीन नहीं है। आपितु अर्वाचीन (नवीन) है। जबकि प्राचीन ग्रन्थों में तीनों वेदों के साथ अथर्व वेद का भी उल्लेख अनेक स्थलों पर आया है।

'वेदत्रयी' शब्द का प्रयोग मन्त्रों के उच्चारण की दृष्टि से किया गया है। इसको स्पष्ट करते हुए मीमांसा दर्शन में लिखा है कि जो मन्त्र पद्य रूप में हैं वे ऋक् कहलाते हैं तथा जो मन्त्र गद्य रूप में हैं वे यजुः कहलाते हैं और जिन मन्त्रों का गान किया जाता हैं उन्हें साम कहते हैं[९]। 'वेदत्रयी' शब्द को स्पष्ट करते हुए षड्गुरु शिष्य ने सर्वानुक्रमणी की वृत्ति (व्याख्या) की भूमिका में लिखा है कि चारों वेदों के मन्त्रों का विनियोग (उपयोग या प्रयोग) तीन ही प्रकार (ऋक्-यजु और साम) से ही किया जाता है[१०]। अथर्व वेद में तीनों ही प्रकार के मन्त्र (अर्थात् पद्य रूप में गद्य रूप तथा जिनका गान किया जाता है ऐसे मन्त्र) हैं इसलिये 'अथर्व वेद' का उल्लेख वेदयत्री (उच्चारण) के प्रसंग में नहीं किया गया है।

चार वेद :- वेद चार हैं। चारों वेदों का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर स्पष्ट रूप से किया गया है। महाभाष्य में स्पष्ट लिखा है कि वेद चार हैं[११]। श्री जयन्त भट्ट ने न्यायमञ्जरी में अथर्ववेद का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वेद चार हैं[१२]। गोपथ ब्राह्मण में चारों वेदों का उल्लेख करके अथर्ववेद को ब्रह्मवेद लिखा है[१३]।

यज्ञ को करने के लिए चार ऋत्विजों की आवश्यकता होती है। जिन्हें होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा कहते हैं। ऋग्वेद का ज्ञाता होता, यर्जुवेद का ज्ञाता अध्वर्यु, सामवेद का ज्ञाता उद्गाता तथा अथर्ववेद का ज्ञाता ब्रह्मा होता है। ऐसा गोपथ ब्राह्मण तथा अन्य ग्रन्थों में लिखा है[१४]। होता, अध्वर्यु, उद् गाता जो भी यज्ञ क्रिया (कर्म) करते हैं उनका द्रष्टा यज्ञ का ब्रह्मा होता है, जो मौन रहकर यज्ञ की सारी प्रक्रियाओं को ध्यान से देखता रहता है। यदि तीनों (होता, अध्वर्यु, उद्गाता) ऋत्विजों में यदि कोई त्रुटि करता हैं तो ब्रह्मा उनको वहीं रोक लेता है और उनके द्वारा की गयी सारी त्रुटियों को शुद्ध करता हैं। क्योंकि यज्ञ का ब्रह्मा ही यज्ञ का अध्यक्ष होता है और वह अथर्व वेद के साथ तीनों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) का ज्ञाता होता है। ऐसा ऐतरेय ब्राह्मण (५-३३) में लिखा है। इसलिए शास्त्रों में ब्रह्मा को 'सर्ववेदविद्' कहा गया हैं। याज्ञिक कर्मकाण्ड में चार ऋत्विजों के कर्तव्यों के विवेचन से भी स्पष्ट होता है कि

तीनों वेदों के समान अथर्व वेद भी प्राचीन है। ऋग्वेद (१-८-३-५) में स्पष्ट ही अथर्ववेद का भी उल्लेख है[१५]। मुण्डकोपनिषद् (१-१-५) में परा और अपरा विद्या का वर्णन करते हुए ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के साथ अथर्ववेद का भी स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है[१६]। शतपथ ब्राह्मण (१४-५-४-१०) में लिखा है कि सृष्टि के प्रारम्भ में श्वास प्रश्वास के समान ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व वेद परमात्मा से प्रकट हुए हैं[१७]। अर्थात् अथर्ववेद भी तीनों वेदों के समान प्राचीन है।

महाभारत में स्पष्ट ही चारों वेदों के नामों का उल्लेख किया है[१८]। छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि नारद ने अपना परिचय देते हुए सनत्कुमार से कहा कि हे भगवन् मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का अध्ययन किया है[१९]। महर्षि यास्क ने भी निरुक्त में एक मन्त्र की व्याख्या करते हुए वेद चार हैं यह उल्लेख किया है[२०]। इन विविध प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि वेद तीन नहीं अपितु चार हैं तथा ऋग्वेदादि तीनों वेदों के समान अथर्ववेद भी प्राचीन है।

अथर्ववेद का महत्त्व :- जैसे ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद का महत्त्व है वैसे ही अथर्ववेद का भी महत्त्व है फिर भी अथर्ववेद की महत्ता का वर्णन करते हुए गोपथ ब्राह्मण ने लिखा है कि जो अथर्वा है वह भेषज (दवा) है। जो भेषज है वह अमृत है और जो अमृत है वह ब्रह्म है। अथर्ववेद सभी वेदों में सर्वश्रेष्ठ वेद है क्योंकि यह ब्रह्मज्ञानियों के हृदय में प्रतिष्ठित रहता है[२१], ऐसा गोपथ ब्राह्मण में लिखा है। अथर्व परिशिष्ट नामक ग्रन्थ में लिखा है कि अथर्ववेद के मन्त्र की सम्प्राप्ति (ज्ञान) होने से मनुष्य के सब पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं अर्थात् मनुष्य सफलता प्राप्त कर लेता है[२२]। इसी विषय में आगे लिखा है कि जिस राजा के राज्य में अथर्ववेद का जाननेवाला विद्वान् शान्ति स्थापना के कार्य में संलग्न रहता है वह राष्ट्र उपद्रव रहित होकर उन्नत होता (बढ़ता) रहता है[२३]। सामान्यतया वेदों के महत्त्व के विषय में महर्षि मनु ने लिखा है कि वेदशास्त्र के तत्त्वार्थ को जाननेवाला मनुष्य चाहे वह किसी भी आश्रम में रहे वह इस लोक (जन्म) में ही रहकर मोक्ष को प्राप्त करने में सफल होता है[२४]। वेदों की यथार्थता का वर्णन करते हुए महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन में लिखा है कि वेदों की वाक्यरचना बुद्धि पूर्वक है[२५]। अर्थात् वेदों के सभी विषय तर्क संगत और बुद्धि सम्मत हैं। बुद्धि के विरुद्ध कुछ भी वर्णन वेदों में नहीं है इसलिये इनको पढ़ने और जाननेवाला व्यक्ति दुःखों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

अथर्ववेद और आयुर्वेद :- वेद समस्त ज्ञान विज्ञान के भंडार हैं। ऐसी प्राचीन शास्त्रों की मान्यता है[२६]। इस मान्यता के अनुसार वेदों में सभी विषयों का संक्षिप्त रूप से वर्णन किया गया है। मानव जीवन की यात्रा में स्वस्थ शरीर का बहुत महत्त्व है, शरीर के स्वस्थ रहने पर ही मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कर

सकता है[२७]। इसलिये वेदों में शरीर को स्वस्थ रखने तथा शरीर के अस्वस्थ होने पर उसकी चिकित्सा करने का भी उपदेश संक्षेप से दिया है। चिकित्सा का विस्तृत विवेचन आयुर्वेद के ग्रन्थों में किया गया है। शरीर विज्ञान (चिकित्सा) का वर्णन सभी वेदों में मिलता है किन्तु अन्य वेदों की अपेक्षा अथर्ववेद में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है, ऐसा उल्लेख आयुर्वेद (चरक संहिता) में किया गया है[२८]। इसी कारण आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद सुश्रुत में लिखा है[२९]। ताण्ड्य महा ब्राह्मण (१२-९-१२) में लिखा है कि अथर्ववेद में चिकित्सा शास्त्र का वर्णन विद्यमान है[३०]। गोपथ ब्राह्मण में अथर्वा (अथर्ववेद) को भिषक् वेद अर्थात् चिकित्सा का वेद लिखा है[३१]। अथर्ववेद में ही मन्त्र आता है कि इसमें चिकित्सा का वर्णन है[३२]। कुछ विद्वानों के अनुसार अथर्व शब्द ही उस ओषधि की ओर संकेत कर रहा है कि जो रोग की गति को रोक देती है इसलिये अ+थर्वा कहते हैं[३३]। क्योंकि गति अर्थ में विद्यमान थर्व धातु से अथर्व शब्द बनता है। 'उष दाहे' धातु से 'ओष' शब्द बनता है अर्थात् जो दाह जनक रोग हैं उन्हें 'ओष' कहते हैं तथा जो दाह जनक रोगों को नष्ट करती है उसे 'ओषधि' कहते हैं[३४]। अर्थात् जो शरीर (शरीराग्नि) को स्वस्थ रखें उसे ओषधि कहते हैं। विविध ओषधियों का वर्णन अथर्ववेद में है। इस प्रकार विविध प्रमाणों से ज्ञात होता है कि अथर्ववेद में चिकित्सा शास्त्र (शरीर विज्ञान) का वर्णन विद्यमान है तथा चिकित्सा का विस्तृत वर्णन करनेवाला आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है।

अथर्ववेद में आयुर्वेदीय चिकित्सा से सम्बन्धित अनेक मन्त्र विद्यमान हैं। शरीर के अंग प्रत्यंगों का वर्णन उनके कार्य, शरीर में पाचनक्रिया, कृमि अर्थात् रोग के कीटाणुओं के कारण होनेवाले विविध रोगों के नाम, उनसे सुरक्षित रहने के उपाय दीर्घायु और स्वस्थ जीवन के साधन इत्यादि विविध विषयों का वर्णन अथर्ववेद में है। अथर्ववेद के १०वें काण्ड के दूसरे सूक्त के ग्यारहवें मन्त्र में शरीर मे होनेवाले रक्त प्रवाह की प्रक्रिया का वर्णन है। शल्यक्रिया का वर्णन अथर्ववेद में (१-३-७) में किया गया है। शल्यक्रिया के उपयोग में आनेवाले विविध शस्त्रों का विवेचन अथर्ववेद (१२-५-६२ तथा ६७ मन्त्र) में किया गया है। इसमें अनिद्रा तथा तपेदिक (यक्ष्मा) की चिकित्सा का उल्लेख (अथर्व १०-३ में) है। अथर्ववेद के चौथे काण्ड के बारहवें सूक्त में शस्त्रों के कटने से शरीर में घाव होने तथा उससे प्रवाहित होनेवाले रक्त को रोकना, घाव को भरना, हड्डियों को जोड़ना, और मांसपेशियों तथा त्वचा को ठीक करने के उपायों का वर्णन अनेक मन्त्रो में है। दीर्घायु प्राप्त करने के लिये विविध वनस्पतियों तथा वारणमणि (१०-३-३), फलमणि (१०-६-२९), दर्भमणि (१९-२८-१), औदुम्बरमणि (१९-३१-१), जंगिड़मणि (१९-३४-१), शतवारमणि (१९-३६-६) आदि विविध मणियों का वर्णन किया गया है। हृदय

रोग, पाण्डु, कमला, ज्वर आदि रोगों को दूर करने का उपदेश भी अथर्ववेद (१-२२ तथा ७-११६) में दिया गया है। कृमियों को नष्ट करने का (२-३१ में) तथा वाजीकरण का उल्लेख (४-४ में) सर्पविष की चिकित्सा का उपदेश (५-१३ में) दिया गया है। प्रसव क्रिया सुगमता पूर्वक हो इसका वर्णन अथर्व (१-११) में है तथा प्रसव के लिये शल्यक्रिया की आवश्यकता पड़े तो उसका विवेचन अथर्ववेद (१-११-५) में किया गया है। जल चिकित्सा का वर्णन (१-४ में), अग्नि चिकित्सा (५-२३-१३), सूर्य चिकित्सा का (१-२२-१) उल्लेख है। अथर्ववेद में अग्नि और सूर्य को कृमियों (रोग कीटाणुओं) को नष्ट करनेवाला कहा गया है[३५]।

उदुम्बर (गूलर) की विशेषता का वर्णन करते हुए अथर्ववेद (१९-३१) में लिखा है कि गूलर खाने से गाय के हृष्ट-पुष्ट बछड़े, बछड़ियां पैदा होती हैं। गूलर खानेवाली गाय का दूध गुणकारी होता है। गूलर के फल का सेवन करने से विविध रोग नष्ट हो जाते हैं। गुगल की गन्ध का सेवन करने से राजयक्ष्मादि रोग तथा छुआछूत के रोग नहीं होते हैं। यह वर्णन (१९-३८-१) में किया है।

चार प्रकार की चिकित्सा :- अथर्ववेद (११-४-१६) में आथर्वणि-आंगिरसी-दैवी और मानवीय प्रकार की चिकित्सा (ओषधियों) का वर्णन किया गया है[३६]। **आथर्वणी चिकित्सा :-** कुछ विद्वानों ने अथर्वा का अर्थ एकाग्रचित्त होकर ईश्वर की साधना करनेवाला योगी किया है। जो साधक या चिकित्सक अपने एकाग्र मन से मानसिक रोगियों की मानसिक चिकित्सा करता है। मनुष्य क्रोध, ईर्ष्या, द्वेषादि के कारण मानसिक रोगी हो जाता है। क्रोध को दूर करने के साधनों का वर्णन अथर्ववेद (६-४३-१) में किया है[३७]। ईर्ष्या मनुष्य को अन्दर ही अन्दर आग के समान जलाती रहती है जैसे अग्नि जंगल में वृक्षों को जला देती है वैसे ही ईर्ष्या मनुष्य का जीवन नष्ट कर देती है। जैसे शीतल जल से अग्नि शांत हो जाती है वैसे ही सद्विचारों (शिवसंकल्प) रूपी जल (मन) से ईर्ष्या की अग्नि शांत हो जाती है[३८]। यह उपदेश अथर्ववेद में दिया है। इसलिये मन में सदा सद्विचार रहें यह प्रार्थना भी वेद में की गयी है[४०]। मन के कारण ही मनुष्य बन्धन अर्थात् दुःखों को प्राप्त करता है तथा मन के कारण ही अनन्त सुख अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है ऐसा उल्लेख शास्त्रों में किया है। मानसिक एकाग्रता के द्वारा मन की शान्ति को बढ़ाना, मन को शुद्ध और पवित्र करना, अपने पवित्र मन के द्वारा मनो रोगियों को ठीक करना, जिसे आयुर्वेद में सत्वावजय चिकित्सा कहते हैं इसे अथर्ववेद में आथर्वणी चिकित्सा कहा गया है[४१]।

आंगिरसी चिकित्सा :- आंगिरस शब्द की व्याख्या करते हुए शास्त्रों में लिखा है कि "अंग+रस" अर्थात् अंगों के रस से होनेवाली चिकित्सा आंगिरसी चिकित्सा कहलाती है[४२]। इस चिकित्सा पद्धति में अंगों का रस रक्तादि की न्यूनता को

दूर करना, दूसरे के शरीर से रक्त निकालकर रोगी के रक्त की न्यूनता को समाप्त करना, व्रण (घाव) को ठीक करना, शरीर के अंगों में रस रक्त मांसादि तत्त्वों की वृद्धि करना इस निमित्त आधुनिक चिकित्सा पद्धति के तुल्य पोषकतत्व (विटामिनादि) का प्रयोग करना, जिससे शरीर में (रोगों को दूर रखने के लिए रोग के कीटाणुओं से संघर्ष करने के लिए) प्रतिरोधात्मक शक्ति बनी रहे ऐसी ओषधियों का सेवन करने को आंगिरसी चिकित्सा पद्धति कहा जाता है। इस आयुर्वेद में युक्ति व्यपाश्रय चिकित्सा कहा गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार अंगिरा ऋषि द्वारा दृष्ट (उपदिष्ट) मन्त्रों से रोगों (शत्रुओं और राक्षसों) के विनाश का वर्णन है[४३]। इसलिये इसे आंगिरसी चिकित्सा कहते हैं।

दैवी चिकित्सा :- रोग के सूक्ष्म कीटाणुओं (कृमियों) को अथर्ववेद में राक्षस कहा गया है। सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के द्वारा रोग के कीटाणु नष्ट होते हैं। अथर्ववेद (२-३२-१) में लिखा है कि सूर्य दृष्ट तथा अदृष्ट कृमियों को नष्ट करता है, सूर्य की किरणें कृमियों को उसी प्रकार नष्ट करती हैं जैसे पत्थरों से चनों को पीसा जाता है (अथर्व २-३१-१)। सूर्य की किरणें सर्व रोगनाशक हैं (अथर्व ९-८-१ से २२) अग्नि के द्वारा भी कृमियों का विनाश होता है। इस सूर्य चिकित्सा (धूप सेवन) अग्नि चिकित्सा, जल चिकित्सा, मृत्चिकित्सा (मिट्टी की चिकित्सा) आदि प्राकृतिक (दैवी) चिकित्सा (अथर्व ८-१-५ तथा८-२-१) का वर्णन है। इस दैवी चिकित्सा को आयुर्वेद में दैवव्यपाश्रय चिकित्सा कहते हैं। इस चिकित्सा पद्धति के अनुसार मन्त्रोच्चारण के द्वारा यज्ञादि करके रोग के सूक्ष्म कीटाणुओं को नष्ट किया जाता है। अथर्ववेद में यज्ञ को रोग कीटाणुओं को नष्ट करनेवाला (रक्षघ्न) कहा गया है। यज्ञ की समिधाओं को भी कीटाणुनाशक कहा गया है[४५]। यज्ञ की सामग्री में प्रयुक्त गुग्गल, पीपल, जटामांसी आदि को रोग कीटाणुओं का विनाशक लिखा है[४६]।

मानवीय चिकित्सा :- चूर्ण (काष्ठ औषध) अवलेह, आसव, रस, रसायनादि के द्वारा की जानेवाली चिकित्सा मानवीय चिकित्सा कहलाती है जिसका उल्लेख अथर्ववेद में किया गया है, मानवीय चिकित्सा को आयुर्वेद में युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा कहा जाता है।

कौशिक सूत्र और अथर्ववेद :- अथर्ववेद का भाष्य करते हुए सायणाचार्य ने कौशिक सूत्र के विनियोगों का उल्लेख किया। कौशिक जो एक तान्त्रिक थे, उसने मन्त्र का प्रयोग किसलिये करना चाहिये इसके लिये उसने "कौशिक सूत्र" नामक ग्रन्थ लिखा। उस ग्रन्थ में उसने अपनी तान्त्रिक विचारधारा का प्रचार मन्त्रों का विनियोग (प्रयोग या उपयोग) के द्वारा किया है। उसने अथर्ववेद के मन्त्रों का विनियोग जादू टोना-मारण वशीकरण आदि वेदविरुद्ध कार्यों के लिये किया है। सायण ने कौशिक के विनियोग का उल्लेख करके मन्त्र का भाष्य किया और अथर्ववेद

में जादू टोने मारण (मूठ डालना) वशीकरण आदि अनर्थकारी वेदविरुद्ध भ्रान्तियों का प्रचार किया। सायण भाष्य का अन्धानुकरण पाश्चात्त्य विद्वानों तथा उनका अनुसरण करनेवाले तथाकथित आधुनिक भारतीय विद्वान् भी इस अन्धविश्वास से ग्रस्त हो गये कि अथर्ववेद में जादू टोना है। इस दुष्प्रभाव से आज भी भारतीय विश्वविद्यालयों में संस्कृत और वेद विभाग प्रभावित है। यदि सायण कौशिक के विनियोगों से प्रभावित न होकर स्वतन्त्र वेद व्याख्या करता तो अथर्ववेद के साथ इतना बड़ा अनर्थ न होता। योगी अरविन्द ने इस यथार्थता को स्वीकार करते हुए अपनी पुस्तक "वेद रहस्य" में लिखा है कि "यह मेरा सौभाग्य था कि मैंने वेद का सायण भाष्य पहले नहीं पढ़ा था अन्यथा संभव है मैं उसी प्रवाह में बह जाता और वेदों के जिस आध्यात्मिक तत्त्व के दर्शन मैंने किये हैं उसे न कर पाता[४७]।" योगी अरविन्द ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य से प्रभावित हुए और उन्होंने वेदों के विषय में अपनी गहन आस्था को व्यक्त किया है।

कौशिक सूत्र का अनर्थ :– अथर्ववेद में जादू टोना, मारण, (मूठ डालना) उच्चाटन, वशीकरण, कृत्या, अभिचार, मणिबन्धन आदि का विधान है। यह जादू टोने का वेद है। ऐसा अनर्थ कौशिक सूत्र में निर्दिष्ट विनियोगों के द्वारा अथर्ववेद के साथ हुआ। उन विनियोगों का उल्लेख सायण भाष्य में किया गया है। जिसे पढ़कर पाश्चात्त्य और आधुनिक भारतीय विद्वान् दिग्भ्रमित हो गये। अनर्थकारी विनियोगों से कितना वेदविरुद्ध अर्थ करके अथर्ववेद के साथ अन्याय किया गया है इसके लिये कुछ उदाहरण अधोलिखित हैं।

१. अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड के प्रथम सूक्त के पांच मन्त्रों में ब्रह्म (परमात्मा) की महिमा का वर्णन है[४८]। इस सूक्त का देवता (विषय) ब्रह्म अर्थात् परमात्मा है। कौशिक सूत्र में इन मन्त्रों का विनियोग (प्रयोग) करते हुए लिखा है कि पांच पर्व (गांठ) वाला वेणु दण्ड (बांस) लेकर उसे समतल प्रदेश (स्थान) में खड़ा करके उस पर हाथ रखे। मन में अभीष्ट कार्य को विचार करके वेणुदण्ड (बांस) पर से हाथ हटा ले, यदि विचार कि गयी दिशा की ओर बांस गिरता है तो मन की इच्छा पूरी हो जाती है अन्यथा अभीष्ट कार्य सिद्ध नहीं होता। जबकि ऐसा वर्णन इन मन्त्रों के किसी भी शब्द में नहीं है, इनमें केवल परमात्मा का गुणगान किया गया है।

२. अथर्ववेद के चतुर्थकाण्ड के दूसरे सूक्त में आठ मन्त्र (य आत्मदा बलदा.....यःप्राणतो निमिषतो.....हिरण्यगर्भ.....) हैं। इन मन्त्रों का देवता (विषय) परमात्मा है। इन मन्त्रों में भी परमात्मा की महत्ता का अत्युत्तम विवेचन किया गया है किन्तु कौशिक ने विनियोग करते हुए इन मन्त्रों के विषय में लिखा है कि गाय का वध करके उस (गाय) को शान्ति प्राप्त हो इसके लिये इन मन्त्रों के द्वारा उसके अंगों से होम

करना चाहिये। यदि काटी (मारी) हुई गाय का अचानक गर्भ दीख जाय तो उस गर्भ को अंजलि में लेकर इस सूक्त (अथर्व ४-२-१) के मन्त्रों से अग्नि में आहुति दें[९]। कितना अनर्थ इन मन्त्रों का कौशिक सूत्र द्वारा किया गया है यह इस प्रकरण से स्पष्ट है।

३. अथर्ववेद के तीसरे काण्ड का पांचवा सूक्त ("पर्णमणि सूक्त") कहलाता है। इसमें राजनीति का वर्णन किया गया है जब कि सायण भाष्य में इन मन्त्रों का विनियोग करते हुए लिखा है कि जो व्यक्ति तेज, बल और दीर्घायु प्राप्त करना चाहता है वह व्यक्ति ढाक की मणि बनवा कर उसे दही और शहद में त्रयोदशी के दिन डाल कर रख दे। चौथे दिन प्रतिपदा को इस सूक्त के मन्त्रों को बोलकर उस दही और शहद को खा ले और मणि का हाथ में बांध ले, उसकी सारी कामनाएं पूर्ण हो जायेंगी[१०]। वेदमन्त्रों के नाम पर कामनाओं की पूर्ति के लिये ऐसे सस्ते नुस्खे लिखकर वेदों का उपहास इन भाष्यकारों ने किया।

४. अथर्ववेद के सातवें काण्ड के ११६वें सूक्त में दो मन्त्रों (नमो स्वराय च्यवनाय.....) तथा (यो अन्येद्यु सभयद्यु.....) में उष्णज्वर और शीतज्वर तथा दो दिन छोड़कर आनेवाले ज्वर के विषय में वर्णन है, जब कि इन मन्त्रों का विनियोग करते हुए कौशिक सूत्र में लिखा है कि जिस व्यक्ति को ज्वर आ रहा हो उसकी चारपाई के नीचे नीले और लाल रंग के धागे से मेंढक को बांध दे, उस व्यक्ति का ज्वर उतर जायेगा। जबकि इन मन्त्रों में मेंढ़क, लाल और नीले रंग के धागे आदि का कोई उल्लेख नहीं है। पाठकों को भी जानकारी के लिये ये कुछ उदाहरण दिये गये हैं जिनसे स्पष्ट हो सके कि कौशिक के विनियोगों ने अथर्ववेद के मन्त्रों का कितना अनर्थ किया है जिसके कारण अथर्ववेद के विषय में कितनी (जादू टोने आदि की) भ्रान्त धारणा जन सामान्य में फैल गयी। यदि कौशिक सूत्र में निर्दिष्ट विनियोगों को छोड़कर वेद के मूल शब्दों के आधार पर वेदार्थ सायणादि भाष्यकारों द्वारा किया जाता तो वेदों का इतना अनर्थ न होता।

राक्षस और पिशाच :- अथर्ववेद में जादू टोने का ही वर्णन नहीं अपितु इसमें भूत, प्रेत, राक्षस, पिशाचादि प्राणियों (योनियों) का वर्णन है यह भी एक मिथ्या धारणा प्रचलित है, जबकि अथर्ववेद में ऐसा कोई वर्णन नहीं है। इन शब्दों के प्रयोग को देखकर ही पाठक दिग्भ्रमित हो जाता है। अथर्ववेद के चौथे काण्ड के ३७वें सूक्त में भूत, प्रेत, राक्षस शब्दों का प्रयोग कई मन्त्रों में हुआ है। राक्षस कोई योनि (प्राणी) विशेष नहीं हैं अपितु रोग के सूक्ष्म कीटाणु (कृमि) हैं जो शरीर में प्रविष्ट हो कर रक्त पीते हैं। **असृग् भाजानि ह वै राक्षांसि** (कौ. १०-४) और शरीर को रोगी कर देते हैं। इनसे शरीर की रक्षा करनी चाहिये ऐसा निरुक्त में महर्षि यास्क ने लिखा है[११]।

इसलिये इन्हें राक्षस कहते हैं। ऐसे रोग कीटाणु (कृमि) सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से अग्नि तथा पानी से नष्ट होते हैं। इसलिये इन राक्षसों को मारनेवाला, नष्ट करनेवाला 'रक्षघ्न' कहा गया है"[२]। आयुर्वेद में हींग, गुग्गुल, पीली सरसों, तुलसी आदि को रक्षघ्न-राक्षसों का विनाश करनेवाली लिखा है"[३]। ये सभी आयुर्वेदिक ओषधियां है इनसे रोग के कीटाणु (राक्षस) नष्ट होते हैं कोई शरीरधारी प्राणी विशेष राक्षस नहीं हैं। इन प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि अथर्ववेद में प्रयुक्त राक्षस शब्द प्राणी विशेष के लिये नहीं अपितु रोग कीटाणु के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार पिशाच भी कोई राक्षस विशेष नहीं अपितु रोग कीटाणु है। जो मांस को खानेवाले या चाटनेवाले कीटाणु हैं उन्हें 'पिशाच' कहते हैं"[४]। इसी प्रकार अथर्ववेद के आठवें काण्ड के छटे सूक्त में राक्षस पिशाचादि के साथ 'दुर्णामा' शब्द आता है उसकी व्याख्या करते हुए निरुक्त में लिखा है कि ''दुर्णामा'' नाम का कृमि होता है जो कच्चे मांस को खाता है"[५]।

मन्त्र विद्या और मणिबन्धन :- मन्त्र विद्या कोई जादू टोना, तन्त्र-मन्त्र, गण्डे, ताबीजादि की विद्या नहीं अपितु यह मनोरोगियों (मानसिक रोगियों) की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के द्वारा की जानेवाली मनोरोग चिकित्सा है। आयुर्वेद में शारीरिक और मानसिक दो प्रकार के रोगियों की चिकित्सा का उल्लेख है। ओषधि के द्वारा शारीरिक रोगों को दूर किया जाता है तथा मन्त्र की इच्छा शक्ति दृढ़ संकल्प और सद्विचारों के द्वारा मनोरोगी की निराशा अनुत्साह तथा भय और क्रोधादि से उत्पन्न विविध अस्वाभाविक चेष्टाओं (क्रियाओं) जैसे सन्निपात ज्वर में अनर्गल प्रलापादि को दूर किया जाता है। कुशल चिकित्सक मनोरोगी को स्वस्थ करने में सफलता प्राप्त करता है उसे मन्त्र विद्या कहा है क्योंकि मनन (चिन्तन) करने को मन्त्र कहा जाता है (मननात् मन्त्रः निरुक्त) जैसे शिक्षा के विषय में जो मनन चिन्तन करता है सोचता विचारता है उसे शिक्षा मन्त्री कहते हैं। इसी प्रकार स्वास्थ्य के विषय में चिन्तन करने वाले को स्वास्थ्य मन्त्री और रक्षा के विषय में सोचनेवाले को रक्षामन्त्री कहते हैं। इस प्रकार मनन चिन्तन करके मनोरोगी को जिस विद्या से ठीक किया जाता है उसे मन्त्र विद्या कहते है। मन के रोगों को दूर करता हुआ व्यक्ति अथर्ववेद में प्रार्थना करता है"[६] मेरे मन का सब पाप बुरे विचार (जो मेरे मन को कुत्सित अर्थात् कमजोर कर रहे हैं वे सब) समाप्त हो जाय, मनुष्य अपने मन की दृढ़ इच्छा शक्ति से सब कार्यों को पूर्ण करता है"[७]। पवित्र मनवाला मनोवैज्ञानिक चिकित्सक अपने हाथ से मनोरोगी को स्पर्श करता हुआ कहता है कि मैं तुम्हारे (मनो रोगों) को समाप्त करता हूँ। यह मेरा ओषध रूप सुख शान्ति का देने का साधन है। ऐसी प्रार्थना अथर्ववेद में की गयी है। जल के स्पर्श से भी (मूर्छादि) रोग दूर होते हैं"[८]।

मणि बन्धन :- मणि बन्धन का विकृत रूप डोरा, धागा, गंडा, ताबीजादि हो गया जबकि आयुर्वेद में मोती, मूंगा, स्फटिकादि मणियों के बांधने का उल्लेख है। इस विषय में सुश्रुत में लिखा है कि इन मणियों के बांधने से नेत्र की शक्ति बढ़ती है, मन शांत होता है तथा विष को दूर करने में सफलता प्राप्त होती है[६०]। अर्थववेद में विविध मणियों का वर्णन आता है। अथर्ववेद में प्रयुक्त 'मणि' शब्द को लेकर जादू टोने आदि का भ्रम पैदा किया गया जबकि यह शब्द विविध ओषधियों के लिये प्रयुक्त हुआ है। अर्थववेद के दूसरे और उन्नीसवें काण्ड में ''जंगिड़मणि'' शब्द का प्रयोग हुआ है। सायण ने अथर्ववेद (२-४ के मन्त्र) में आये ''जंगिड़मणि'' की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है कि जो व्यक्ति कृत्या (हिंसा) से बचना चाहता है, अपनी रक्षा चाहता है और विघ्न बाधाओं को दूर करना चाहता है, तो वह जंगिड़ पेड़ की मणि को बांधे तथा बांधने के समय इस सूक्त (अथर्व २-४) के मन्त्रों का पाठ करे। इस प्रकार की व्याख्या करके यह स्पष्ट किया है कि जादू टोना करके या मूठ डालकर कोई दुश्मन किसी की कृत्या (हिंसा) करना चाहता है तो यदि व्यक्ति अपने हाथ में जंगिड़ मणि (२-४ सूक्त के मन्त्रों का पाठ करके) बांध लेता है तो उसकी जादू टोने या मूठादि डालने से उसकी हिंसा नहीं होगी, वह बच जायेगा। ऐसी मिथ्या विचारधारा अथर्ववेद के नाम पर प्रचलित हो गयी। जबकि अथर्ववेद में जादू टोने का किञ्चित् मात्र भी वर्णन नहीं हैं। 'जंगिड़मणि' को अथर्ववेद (१९-३४-९) में विविध रोगों को नष्ट करनेवाली ओषधि कहा गया है[६१]। अथर्ववेद (२-४-३) में इसे 'विश्व भेषज' अर्थात् अनेक रोगों को दूर करनेवाली ओषधि लिखा है[६२]। अथर्ववेद (२-४-१ तथा २) में इसे ओषधि कहकर इसके गुणों का वर्णन करते हुए यदि शरीर में रोग या घाव हो गया तो उसे ठींक करती है यह ओषधि सहस्त्रवीर्य बहुत अधिक गुणकारक और शक्तिशाली है। इसे अथर्ववेद (१९-३४-९) में अमीवा अर्थात् रोगों को नष्ट करनेवाली (बलासः) बल प्रदान करनेवाली कष्टदायक ज्वर (तक्मा) को दूर करनेवाली बताया गया है। इसमें जादू टोने की गन्ध मात्र भी नहीं है।

अथर्ववेद के चौथे काण्ड के दसवें सूक्त में 'शंखमणि' का वर्णन आता है। इस सूक्त की व्याख्या करते हुए इस मणि के विषय में आचार्य सायण ने लिखा है कि बालक जल में डूबने से मृत्यु को प्राप्त न हो तथा वह दीर्घायु हो इसके लिये शंख की मणि बनाकर इन मन्त्रों का पाठ करके बालक के हाथ में बांध दें। मृत्यु से बचने और सौ साल जीवित रहने का इससे सस्ता नुस्खा और क्या हो सकता है ? वेदों के नाम पर ऐसा पाखण्ड मध्यकाल से प्रचलित हो गया जिससे बुद्धि जीवी लोग वेदों से दूर हो गये। जबकि वेदों में ऐसा कुछ भी नहीं है यह सारा दोष कौशिकादि विनियोग कर्ताओं तथा सायण, महीधर, उव्वटादि मध्यकालीन वेद भाष्यकारों का है। अथर्ववेद के

चतुर्थ काण्ड के दसवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में 'शंखमणि' को 'कृशनः' अर्थात् रोगों को दुर्बल कमजोर क्षीण करने वाला कहा गया है। दूसरे मन्त्र में रोग और रोग की कृमियों (राक्षसों) को खानेवाला, तीसरे मन्त्र में इसे बुद्धि की दुर्बलता को दूर करनेवाला, तथा अनेक रोगों को, पागलपन की पीड़ा देनेवाले रोगों को दूर करनेवाला लिखा है। इसलिये आयुर्वेद में 'शंख' का बहुत महत्त्व है, इसकी भस्म बनाकर विविध रोगों को ठीक करने के लिये चिकित्सक लोग इसका उपयोग करते हैं।

अथर्ववेद के १९वें काण्ड के ३६वें सूक्त में 'शतवारमणि' का उल्लेख है जिसके विषय में आचार्य सायण ने लिखा है कि जिसकी सन्तानें मर जाती हैं तथा कुल के क्षय की चिन्ता जिसे हो रही है वह व्यक्ति इस सूक्त (अथर्व १९-३६) के मन्त्र का पाठ करके शतवार मणि को हाथ में बांध ले, कुल के क्षय होने से वह बच जायेगा मणि बांधने के बाद जो सन्तान होगी वह नहीं मरेगी। यह लिखकर 'सन्तान बचने के लिये' गण्डे ताबीज बांधने के विषय में यह भ्रम फैलाकर अथर्ववेद के साथ अन्याय किया। अथर्ववेद में जादू भरी मणि नहीं है अपितु शतवार एक ओषधि है जो रोग कृमियों (राक्षसों) को नष्ट करती है। यह पुंसत्व शक्ति प्रदान करनेवाली ओषधि है जिस प्रकार ऋषभ अर्थात् साण्ड शक्तिशाली होता है वैसे ही यह ओषध शक्तिशाली हैं रोगों को नष्ट कर देती है[३३]। अथर्ववेद के दसवें काण्ड के छठे सूक्त में कालमणि का वर्णन है। जिसमें 'कृषिविद्या' का विशेष विवेचन किया गया है। इसी प्रकार अथर्ववेद के तीसरे काण्ड में पांचवें सूक्त में 'पर्णमणि' का वर्णन है। इस सूक्त में राजनीति का अद्भुत विवेचन किया गया है। यह कोई ढाक (पलाश) का मणि (गांठ) विशेष नहीं हैं। इस प्रकार मणि सूक्तों में विविध मणियां जादू टोने की गोटियां नहीं अपितु ये अद्भुत गुण सम्पन्न ओषधियां हैं। वेदार्थ को ठीक तरह न समझने के कारण वेदों के नाम पर जादू टोना मारण वशीकरणादि विषयक कितना अनर्थ हुआ है यह कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट होता है।

'मणि' शब्द के कारण भी लोगों में भ्रान्ति फैल गयी है कि मणि का अर्थ गण्डा, ताबीज या किसी वृक्ष का छोटा टुकड़ा (गांठ विशेष) है जबकि अति मूल्यवान् या महत्त्वपूर्ण वस्तु को 'मणि' कहा जाता है। मनुष्य शरीर में महत्त्वपूर्ण धातु शुक्र (वीर्य) को मणि कहा गया है। जो व्यक्ति सब व्यक्तियों में गुणों से सम्पन्न होता है उसे ''शिरोमणि'' कहा जाता है। जैसे कवि शिरोमणि विद्वद् शिरोमणि आदि.....

कृत्या और अभिचार :- मध्यकालीन वेद भाष्यकारों और तान्त्रिकों ने कृत्या शब्द का जादू टोना करके शत्रु को मारना, उस पर मूठ डालना और शत्रु का विनाश करना आदि अर्थ किया, जिससे अनेक व्यक्ति स्वार्थी तान्त्रिकों के जाल में फंसकर उनके शिकार होते रहे हैं और आज भी हो रहे हैं। मध्यकालीन विनियोग

कर्ताओं और वेदभाष्यकारों के अनुसार अभिचार शब्द का अर्थ किसी विरोधी या शत्रु को कष्ट देने के लिये, या उसे रोगी (बीमार) बनाने के लिये, या उसकी मृत्यु के लिये यज्ञादि या अन्य कोई कर्मकाण्ड करने को अभिचार कहते हैं तथा यज्ञादि कर्मकाण्ड के द्वारा दुश्मन को मार डालने को 'कृत्या' कहा जाता है। अर्थात् 'कृत्या' अभिचार का हिस्सा है, जब अभिचार के द्वारा शत्रु की हिंसा की जाती है उसे 'कृत्या' कहा जाता है। इस प्रकार कृत्या और अभिचार के मनमाने अर्थ करके इनको वेदों पर थोपा गया हैं, जो वेदों के विरुद्ध है। 'कृती छेदने' धातु से कृत्या शब्द बनता है अर्थात् शस्त्रादि से काटने को, घायल करने को, मारने को 'कृत्या' कहा जाता है। कृञ् हिंसायाम् धातु से भी 'कृत्या' शब्द बनता है। विविध मणियों (मणिबन्धन) के प्रसंग 'कृत्या' का उल्लेख अथर्ववेद में हुआ है अर्थात् शत्रु के शस्त्र प्रहार से यदि शरीर में कोई घाव (व्रण) हो गया हो, शरीर के किसी अंग को शत्रु ने शस्त्र प्रहार द्वारा काटने (हिंसा करने) का यत्न किया हो तो विविध मणियों (ओषधि विशेष) द्वारा घावादि को ठीक करने का आदेश अथर्ववेद में दिया है। जादू टोनादि करने शत्रु को मारने का नहीं।

'अभिचार' शब्द अभि उपसर्ग पूर्वक चर भक्षणे धातु से बनता है अर्थात् जिस प्रक्रिया के द्वारा शत्रु के शरीर में विष प्रविष्ट होकर उसे पीड़ा देकर मार डालने (भक्षण करनें) में समर्थ होता है उसे 'अभिचार' कहते हैं। चाणक्य ने कौटिल्य अर्थशास्त्र में लिखा है कि पुरोहित लोग राजा को युद्ध में कृत्या और अभिचार का प्रयोग करने की अनुमति प्रदान करें[६४]। अथर्ववेद के आंठवें काण्ड के पांचवें सूक्त के पांचवें मन्त्र में लिखा है कि पुरोहित कृत्या के प्रतिकार का सम्मान करें[६५]। अर्थात् ओषधियों के विषय में लिखा है कि ये मणियां ओषधियां कृत्या की नाशक होती हैं अर्थात् शत्रु द्वारा की जानेवाली हिंसक प्रक्रियाओं को रोकने के लिये चिकित्सक ओषधियों (विविध मणियों) का प्रयोग करें यह उपदेश अथर्ववेद में दिया गया है। इस मन्त्र में विषनाशक ओषधियों को कृत्या नाशक कहा गया है[६६]।

अभिचार शब्द का अर्थ करते हुए शब्द कल्पद्रुम में लिखा है कि ''किसी शत्रु को खान पान में विष देकर हिंसा करने का नाम अभिचार है[६७]।'' इसी अर्थ में अभिचार शब्द का प्रयोग अथर्ववेद (८-२-२६) में हुआ है। जिसमें उल्लेख है कि समान स्पर्धा (संघर्ष) करने वाले व्यक्तियों द्वारा अभिचार से मर जाने की सम्भावना तथा ओषधि से न मरने देने का उल्लेख किया है[६८]। अभिचार भय मृत्यु और वध से बचाने वाला वरण मणि है यह वर्णन अथर्ववेद (१-३-७) में किया है[६९]। अथर्ववेद में वरण (वरना) को अभिचार से रक्षा का साधन बताया गया है। (अभिचार खान पान में विष भक्षण) से हृदय की रक्षा करना अत्यावश्यक है। आयुर्वेद में विष खाने से हृदय की रक्षा सर्व प्रथम करने का उल्लेख किया है[७०]। इस प्रकार अभिचार और

कृत्या के द्वारा होनेवाले कष्ट पीड़ा का निवारण विविध ओषधियों, शंख, मणि, शतवार मणि, जंगिड़ मणि आदि विविध मणियों के द्वारा होता है जो विशिष्ट ओषधियों के रूप में प्रयुक्त होती रही हैं। युद्ध के प्रकरण में दुश्मन 'कृत्या अभिचार' का प्रयोग करते हैं। जिनका निवारण मणियों (ओषधियों) से किया जाता है यही उपदेश अथर्ववेद में दिया है। इसमें कोई जादू टोने या गण्डे, ताबीजादि का कोई उल्लेख नहीं है।

अथर्ववेद परिचय :- अथर्ववेद के विषय में 'महाभाष्य' में लिखा है कि 'अथर्ववेद' की नौ शाखाएं हैं (नवधाऽथर्वणो वेदः महाभाष्य पस्पशा.) जो अधोलिखित हैं। १. शौनक २. पैप्पलाद ३. स्तोद(तोद) ४. मौद ५. जाजल ६. जलद ७. ब्रह्मवद ८. देवदर्श ९. चारणवैद्य। इन नौ शाखाओं में से इस समय शौनक और पैप्पलाद में दो संहिताएं ही उपलब्ध हैं। शौनक संहिता अथर्ववेद के नाम से जानी जाती है, इसे अथर्ववेद कहते हैं, सायण ने इसका भाष्य किया है। इसे अथर्ववेद लिखा है। इसका विभाजन काण्ड सूक्त और मन्त्र के रूप में है तथा काण्ड अनुवाक सूक्त और ऋचा के रूप में भी इसका विभाजन होता है। इसमें बीस अध्याय ७३१ सूक्त ५९७७ मन्त्र हैं। किस काण्ड में कितने सूक्त और कितने मन्त्र हैं इसकी संख्या निम्नलिखित है।

काण्ड	सूक्त	मन्त्र	काण्ड	सूक्त	मन्त्र
१	३५	१५३	११	१०	३१३
२	३६	२०७	१२	५	३०४
३	३१	२३०	१३	४	१८८
४	४०	३२४	१४	२	१३९
५	३१	३७६	१५	१८	२२०
६	१४२	४५४	१६	९	१०३
७	११८	२८६	१७	१	३०
८	१०	२९३	१८	४	२८३
९	१०	३१३	१९	७२	४५३
१०	१०	३५०	२०	१४३	९५८

अथर्ववेद (शौनक संहिता) के बारह सौ मन्त्र ऋग्वेद के १-८ और १०वें मण्डल में पाये जाते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार ये मन्त्र ऋग्वेद से अथर्ववेद में लिये गये हैं। अथर्ववेद के २० वें काण्ड के १२ सूक्तों को छोड़कर शेष सभी सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल से मिलते जुलते हैं। अथर्ववेद के एक से सात काण्ड तक छोटे छोटे सूक्त हैं, प्रथम काण्ड के प्रत्येक सूक्त में चार चार मन्त्र हैं। द्वितीय काण्ड के सूक्त में ५-५ मन्त्र, तृतीय काण्ड के सूक्तों में ६-६ मन्त्र तथा चतुर्थ काण्ड के सूक्तों में ७-७ मन्त्र

हैं। पांचवें काण्ड के सूक्तों में ८ से १८ मन्त्र पाये जाते हैं। छठे काण्ड के १४२ सूक्तों में ३-३ मन्त्र तथा सातवें काण्ड के ११८ सूक्त में एक मन्त्र तथा किसी सूक्त में दो मन्त्र हैं।

अथर्ववेद के ८-१२ काण्ड में बड़े बड़े सूक्त हैं, बारहवें काण्ड का प्रथम सूक्त पृथिवी सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। तेरहवें काण्ड में अध्यात्म का वर्णन है। चौदहवें काण्ड के दो सूक्तों में विवाह संस्कार विषयक मन्त्र हैं। १३वें काण्ड में यज्ञ तथा आध्यात्मिक वर्णन है, १६वें काण्ड में दुःख और स्वप्न विषयक मन्त्र, १७वें काण्ड में एक ही सूक्त है जिसमें तीस मन्त्र हैं, १८वें काण्ड में अन्त्येष्टि पितृमेध से सम्बन्धित, १९वें काण्ड में भैषज्य (चिकित्सा विषयक) राष्ट्र वृद्धि तथा २०वें काण्ड में सोमयागादि विषयक मन्त्र हैं। अथर्ववेद में रोगनिवारक मन्त्रों को 'भैषज्यानि' कहा है, आयुष्य सूक्त, वृष्टि सूक्त, ब्रह्मचर्य सूक्त, पृथिवी सूक्त, प्रायश्चित सूक्त, कृन्ताप सूक्तादि सूक्त अथर्ववेद के प्रसिद्ध सूक्त हैं।

परिशिष्ट :- पाश्चात्त्य विद्वानों के अनुसार अथर्ववेद का १९-२० काण्ड प्रक्षिप्त अर्थात् परिशिष्ट है क्योंकि इसमें विकृत पाठादि नहीं मिलते हैं २०वां काण्ड ऋग्वेद से संगृहीत है १९-२०वें काण्ड में कौशिक सूत्र के विनियोग का भी उल्लेख नहीं है इत्यादि हेतु इनके परिशिष्ट होने में देते हैं। वेद पाठियों के अनुसार ये दोनों काण्ड परिशिष्ट नहीं अपितु अथर्ववेद का ही भाग है। बृहत् सर्वानुक्रमणी में इनका उल्लेख है, मन्त्रों का विनियोग नहीं अतः कौशिक ने इनके विनियोग का उल्लेख नहीं किया।

अथर्ववेद में विषय :- वेद भाष्यकार पं. सातवलेकरजी के अनुसार अथर्ववेद में स्थाली पाक (अन्नसिद्धि) मेधा जनन(बुद्धि की वृद्धि के उपाय) ब्रह्मचर्य का महत्त्व, राष्ट्र भक्ति, राष्ट्र उन्नति के उपाय, गाय बैलादि पशुओं का संवर्धन, कृषि व्यापार, धन प्राप्ति के साधन, रोग निवारण के उपाय, विविध ओषधियों का स्वरूप एवं महत्त्व, कृषि यज्ञ, दीर्घायुष्य की प्राप्ति के साधन, पारिवारिक जीवन, देश देशान्तरों में गमनागमन, मन की एकाग्रता, ब्रह्म का स्वरूप, समाज और राष्ट्र में शान्ति की स्थापना के उपाय इत्यादि विविध विषयों का वर्णन अथर्ववेद में हैं।

पाश्चात्त्य विद्वानों के अनुसार अथर्ववेद में यातु विद्या अर्थात् जादू टोने का वर्णन है। अथर्वन् और आंगिरस् शब्द अथर्ववेद के लिये प्रयुक्त हैं। अथर्वन् का अर्थ पवित्र-सात्त्विक मन्त्र अर्थात् जिनमें राज्य की प्राप्ति, कष्ट के निवारण विषयक मन्त्र हैं। आंगिरस् का अर्थ है अपवित्र अर्थात् मारण-मोहन-अभि-चार विद्या विषयक मन्त्र, जिनके द्वारा जादू-टोना-झाड़-फूंक-गण्डे-ताबीज-मूठ डालकर किसी को मारने का षड्यन्त्र करना इत्यादि विषयों का वर्णन है। यह विचारधारा वेदविरुद्ध है इसका निराकरण कृत्या-अभिचार-मणि बन्धनादि प्रकरण में किया जा चुका है।

अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा :- महाभाष्यादि ग्रन्थों के अनुसार अथर्ववेद की नौ शाखाएं थी (नवधाऽथर्वणो वेदः महा.) किन्तु इस समय अथर्ववेद की शौनक और पैप्पलाद दो ही शाखाएं उपलब्ध हैं। शौनक संहिता तो अथर्ववेद है इसकी एक मात्र शाखा ''पैप्पलाद संहिता'' इस समय मिलती है इसके प्रवक्ता पैप्पलाद मुनि थे। इस संहिता में बीस काण्ड हैं इसकी एक मात्र प्रति महाराजा कश्मीर नरेश के महाराजा रणवीर सिंह पुस्तकालय में सन् १८७० में शारदालिपि थी, जिसे महाराजा ने जर्मन बासी डा. रथ को १८८५ में भेंट कर दी, उसी से १९०१ में उसे अमेरिका से प्रकाशित किया गया। डा. रघुवीर ने सन् १९३६ में बहुत परिश्रम करके लाहौर से इसे प्रकाशित किया था। कभी कश्मीर में इस शाखा का पठन-पाठन प्रचलित था। मुस्लिम आक्रमणों के कारण इसका अध्ययन अध्यापन कश्मीर में समाप्त हो गया, इस शाखा के कुछ अध्येता उड़ीसा प्रान्त के पर्वतीय क्षेत्रों में मिलते हैं। इसकी पठन पाठन की परम्परा नष्ट प्रायः हो चुकी है। महाभाष्य में चारों वेदों के प्रथम मन्त्रों का उल्लेख किया है उनमें अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र के रूप में ''शन्नो देवीरभिष्टय....'' मन्त्र को उल्लेख किया है। यह मन्त्र पैप्पलाद शाखा का प्रथम मन्त्र है। शौनक संहिता अर्थात् अथर्ववेद में यह मन्त्र छठे सूक्त का प्रथम मन्त्र है। महाभाष्य के प्रमाण से स्पष्ट होता है कि महाभाष्यकार के समय इस शाखा का अधिक प्रचार प्रसार था।

'गोपथ ब्राह्मण' :- अथर्ववेद का ब्राह्मण ग्रन्थ एक मात्र 'गोपथ ब्राह्मण' उपलब्ध है। इसके दो भाग हैं। १. पूर्व गोपथ २. उत्तर गोपथ। पूर्व गोपथ में ५ प्रपाठक तथा उत्तर गोपथ में ६ प्रपाठक हैं। प्रपाठक का अध्याय भी कहा जाता है। प्रपाठक का विभाजन कण्डिकाओं में है तथा इसमें २५८ कण्डिकाएं हैं। इसमें अथर्ववेद के महत्त्व का वर्णन किया है। वेदों को पढ़ने से पहले अथर्ववेद को पढ़ना चाहिये। पूर्व गोपथ के प्रथम प्रपाठक ओ३म् तथा गायत्री की महिमा, द्वितीय प्रपाठक में ब्रह्मचारी के नियमों का उल्लेख, तृतीय प्रपाठक में चार ऋत्विजों (होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा) के कार्यों का वर्णन, चतुर्थ प्रपाठक में ऋत्विजों की दीक्षा का पांचवें प्रपाठक में संवत्सर सत्र, अश्वमेध, पुरुषमेध, अग्निष्टोमादि का वर्णन है। उत्तर गोपथ में विविध आख्यायिकाओं (कथाओं कहानियों) का उल्लेख है।

आरण्यक और उपनिषद् :- अथर्ववेद का कोई आरण्यक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। प्रश्नोपनिषद्, मुण्डक तथा माण्डूक्योपनिषद् अथर्ववेद से सम्बन्धित हैं। प्रश्नोपनिषद् अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा से सम्बन्धित है। पिप्पलाद ऋषि के समीप सुकेशा, भार्गव, आश्वलायन, सत्यकाम, सौर्यायणि, कबन्धी ये ब्रह्मवेत्ता ऋषि जाते हैं और उनसे ब्रह्म के विषय में प्रश्न करते हैं जिनका उत्तर पिप्पलाद ऋषि ने दिया है जो इस उपनिषद् में वर्णन किया गया है।

मुण्डकोपनिषद् में तीन मुण्डक तथा प्रत्येक मुण्डक के दो दो खण्ड हैं इसमें परा और अपरा विद्या का वर्णन है। द्वा सुपर्णा सयुजा....मन्त्र का उल्लेख करते हुए त्रैतवाद (ईश्वर-जीव-प्रकृति) का उपदेश दिया गया है। माण्डूक्योपनिषद् सबसे छोटा (लघुकाय) उपनिषद् है। इसमें १२ गद्यात्मक वाक्य हैं 'ओ३म्' की अ उ म् तीन मात्राएं तथा अमात्र इन चार मात्राओं का वर्णन किया गया है।

सूत्रग्रन्थ :- अथर्ववेद से सम्बद्ध वैतान श्रौतसूत्र है, जो गोपथ ब्राह्मण पर आधारित है इसमें आठ अध्याय हैं, ब्रह्मा नामक ऋत्विज तथा उनके सहयोगी ऋत्विजों और यजमान के कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। कौशिक गृह्य सूत्र अथर्ववेद का गृह्यसूत्र है। इसमें चौदह अध्याय हैं। अथर्ववेद के मन्त्रों के विनियोग का वर्णन इसमें है, इसीके दुष्प्रभाव से अथर्ववेद जादू टोने का वेद है यह मिथ्या विचारधारा प्रचलित हो गयी, जिसकी समीक्षा पूर्व पृष्ठों में की जा चुकी है।

अथर्ववेद के भाष्य :- आचार्य सायण ने अथर्ववेद का भाष्य किया। मध्यकालीन वेदभाष्यकारों में सायण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने चारों वेदों का भाष्य किया, वेदों के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों का भी भाष्य किया। सायणाचार्य का समय चौदहवीं शताब्दि माना जाता है। आचार्य सायण ने वेदभाष्य में याज्ञिक प्रक्रिया को अपनाया। मन्त्रों की व्याख्या से पहले सायण ने कौशिक सूत्र के विनियोगों का उल्लेख किया। कौशिक के विनियोगों के प्रभाव के कारण सायण ने अपने भाष्य में जादू टोना, मारण, वशीकरण, पशु हिंसादि का वर्णन किया है। जो अथर्ववेद की यथार्थता को स्पष्ट नहीं करता है। सायण भाष्य का कितना दुष्प्रभाव आधुनिक भारतीय और पाश्चात्त्य विद्वानों पर पड़ा इसका उल्लेख इससे पहले किया जा चुका है।

आर्य विद्वानों के भाष्य :- महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद (सात मण्डल पर्यंत) और यजुर्वेद का भाष्य किया। सामवेद और अथर्ववेद का भाष्य ऋषि ने नहीं किया। महर्षि ने अपने वेदभाष्य में ब्राह्मण ग्रन्थों और निरुक्त में निर्दिष्ट त्रिविध (आधिदैविक आध्यात्मिक आधियाज्ञिक) प्रक्रिया के अनुसार मन्त्रों की व्याख्या की। महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार ही अनेक आर्यविद्वानों ने अथर्ववेद का भाष्य किया।

१. पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी :- पं. क्षेमकरणदासजी त्रिवेदी रेल्वे में नौकरी करते थे, सेवानिवृत्त होने के बाद महात्मा मुंशीरामजी (स्वामी श्रद्धानन्दजी) की प्रेरणा से संस्कृत और वेदों का अध्ययन प्रारंभ किया, ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का अध्ययन करके बड़ौदा से परीक्षा उत्तीर्ण की तथा 'त्रिवेदी' की उपाधि प्राप्त की। आपने सन् १९१२ से १९२१ तक दस वर्ष तक अथक परिश्रम करके अथर्ववेद का भाष्य ऋषि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट शैली के अनुसार प्रकाशित किया। आर्य समाज स्थापना शताब्दी (१९७५) के अवसर पर सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा दिल्ली

द्वारा द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। डा. प्रज्ञादेवी जी ने व्याकरण विषयक टिप्पणियों के साथ सम्पादित कर प्रकाशित किया।

२. गुरुकुल कांगड़ी के प्रसिद्ध स्नातक चतुर्वेद भाष्यकार पं. जयदेवजी विद्यालंकार ने अथर्ववेद का भाष्य किया जो सन् १९४० में प्रकाशित हुआ तथा सायणाचार्य द्वारा फैलायी गयी भ्रान्ति अथर्ववेद में जादू टोने का अपने भाष्य में तर्क और प्रमाणपूर्वक निराकरण किया।

३. गुरुकुल कांगड़ी के यशस्वी स्थानक प्रो. विश्वनाथजी विद्यालंकार ने अथर्ववेद का भाष्य किया, जिसमें मन्त्रों की विशद एवं प्रामाणिक व्याख्या की।

४. पं. राजाराम शास्त्री प्रोफेसर संस्कृत विभाग डी. ए. वी. कालेज लाहौर ने अथर्ववेद का हिन्दी में भाष्य किया जो सन् १९२१ में प्रकाशित हुआ था।

५. स्वामी ब्रह्ममुनिजी, पं. सातवलेकरजी आदि अनेक विद्वानों ने अथर्ववेद का भाष्य किया। पं. सातवलेकरजीने अथर्ववेद को पांच भागों में विभक्त किया। १. ब्रह्मविद्या २. स्वराज्य शासन ३. गृहस्थाश्रम ४. दीर्घजीवन और आरोग्य ५. मेधाजनन, संगठन और विजय।

अन्य भाषाओं में अनुवाद :- आचार्य वैद्यनाथजी शास्त्री ने अथर्ववेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया जो सन १९८४ में सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित हुआ। पं. सत्यकामजी विद्यालंकार ने भी इसका अंग्रेजी में भाष्य किया। पं. दीनबन्धु वेदशास्त्री ने अथर्ववेद के प्रथम काण्ड का बंगला में अनुवाद किया। पं. सातवलेकरजी ने गुजराती में अथर्ववेद का भाष्य किया। एम. आर. जम्बुनाथन ने तामिल भाषा में अथर्ववेद का अनुवाद किया।

अथर्ववेद और पाश्चात्त्य विद्वान् :- पाश्चात्त्य विद्वानों ने अथर्ववेद का अध्ययन करके इसका अनुवाद करके इसे प्रकाशित किया। एम. विक्टर हैनरी ने अथर्ववेद के सातवें काण्ड से तेरहवें काण्ड तक फ्रेन्च भाषा में अनुवाद किया जो सन् १८९६ में पेरिस से प्रकाशित हुआ। ग्रिफिथ ने अथर्ववेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया जो सन् १८९४ में लाजरस एण्ड कम्पनी से प्रकाशित हुआ जिसका दूसरा संस्करण १९१६ में प्रकाशित हुआ। ग्रिफिथ का अनुवाद छन्दोबद्ध भी है। ग्रिफिथ के अतिरिक्त वेबर म्युर लुडविग ह्विटने ब्लूम फिल्ड आदि अनेक विद्वानों ने अथर्ववेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया।

प्रकाशन :- शंकर पाण्डुरंग ने वेदपाठी ब्राह्मणों की सहायता से ह्विटने द्वारा सम्पादित संस्करण को संशोधित करके सम्पादित किया जो निर्णय सागर प्रेस मुंबई से प्रकाशित हुआ। सेवकलाल कृष्णदास ने मुंबई से १८९३ में अथर्ववेद संहिता को प्रकाशित किया गया। चिरञ्जीव यन्त्रालय लाहौर से अथर्ववेद संहिता का प्रकाशन

हुआ। सन् १९०० में वैदिक यन्त्रालय से अथर्ववेद का प्रकाशन हुआ सन् १९४४ में श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी ने अथर्ववेद संहिता का सम्पादित कर प्रकाशित किया। सायण भाष्य सहित अथर्ववेद सन् १९६५ में विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान होशियारपुर (पंजाब) से प्रकाशित हुआ।

अथर्ववेद पर रचित ग्रन्थ :- पं. विश्वनाथजी विद्यामार्तण्ड ने 'अथर्ववेद परिचय' पुस्तक लिखी। स्वामी ब्रह्ममुनिजी ने ''अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र'' ग्रन्थ लिखा। ''अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या'' श्री प्रियरत्नजी आर्ष ने लिखी जिसमें जादू टोने मन्त्र तन्त्रादि की यथार्थता का वर्णन आचार्य प्रियव्रतजी ने ''वैदिक राष्ट्रीय गीत'' पुस्तक में अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त की व्याख्या की। इसी सूक्त की व्याख्या डा. भवानी लालजी भारतीय ने भी की।

प्रमाण :-

१. *येऽथर्वाणस्तद् भेषजम्। यद् भेषजं तदमृतम्। यदमृतं तद् ब्रह्म।* गोपथ ब्राह्मण ३-४
२. *थर्वतिश्चरति कर्मा तथा प्रतिषेधः* (निरुक्त ११-४) *चर संशये (चुरादि) संशयराहित्यं सम्पाद्यते येनेत्यर्थ कथनम्....*
३. *यथार्वाङेनमेतास्वेवाप्स्वन्विच्छेति तद्यदब्रवीदथर्वाङ्ङे नमेतास्वेवाप्स्वहन्विच्छेति तदार्थाऽभवत्* (गो. ब्रा. १-४)
४. *ऋचां गायत्रं छन्दः। यजुषां त्रैष्टुभं छन्दः। साम्नां.... जागतं छन्दः। अथर्वणां......सर्वाणि छन्दासि* (गो. ब्रा.१-१-२९)
६. *अथर्वणो वेदोऽभवत्....* (गोपथ ब्राह्मण ११-५)
७. *अंगिरसो वेदोऽभवत्.....*(गोपथ ब्राह्मण ११-१८)
८. *अग्निर्वायुरविभ्यस्तु त्रयो ब्रह्म सनातनम्।*
दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्॥ (मनु. १-२३)
अग्ने ऋग्वेदो वायो यजुर्वेदःसूर्यात् सामवेदः। (शत ब्रा.११-५-८)
९. *तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था। गीतिषु सामाख्या, शेषे यजुः ....*(मिमांसा दर्शन....)
१०. *विनियोक्तव्यरूपश्च त्रिविधः सम्प्रदर्श्यते।*
ऋग्यजुःसामरूपेण मन्त्रो वेदचतुष्टये॥ (भूमिका भास्कर भाग १ पुष्ठ ३१५)
११. *चत्वारो वेदाः सांगा सरहस्याः....* (महाभाष्य पस्पशा)
चत्वरि श्रृंगा श्चत्वारो वेदा एव.... (महाभाष्य पस्पशा)
१२. *तत्र वेदाश्चत्वारः प्रथमोऽथर्व वेद...* (न्यायमंजरी पृ. २३७-२३८)
१३. *चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः* (गोपथ ब्राह्मण २-१६)
१४. *ऋग्वेदेन होता करोति यजुर्वेदेनाध्वर्युः सामवेदेनोद्गाता अथर्वैर्वा ब्रह्मा*
(भूमिका भास्कर पृ. भाग १ पृ.३१५)
अथर्वाङ्गिरोमि ब्रह्मत्वम् (गो. ब्रा. ३-२५)
अथर्वाङ्गिरोविद् ब्राह्मणम् (गो. ब्रा. ९-२-२४)
१५. *यज्ञैरथर्वा प्रथमपथस्तते* (ऋग्वेद १-८३-५)
१६. *तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्प* (मुण्डकोपनिषद् १-१-५)
१७. *एवं वा अरे महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदःसामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः*
(शत. ब्रा. १४-५-४-१०)
१८. *ऋग्वेदःसामवेदश्च यजुर्वेदोऽप्यथर्वणः* (महा वनपर्व १-८७-१४)
१९. *ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणं चतुर्थम्।* (छान्दोग्य ७-१-२)

२०. चत्वारि श्रृंगेति वेदा वा एत उक्ता (निरुक्त १-३-७)
तस्माद यज्ञात् सर्वहुतःऋचःसामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्माद जायत ॥(यजु ३-१-७)
२१. श्रैष्ठो ह वेदस्तपसोऽधिजातो ब्रह्मज्ञानां हृदये संबभूव ॥ (गोपथ ब्राह्मण १-९)
२२. अथर्वमन्त्र सम्प्राप्त्या सर्वसिद्धि र्भविष्यति। (अथर्व परि. २-५)
२३. यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारगः।
निवसत्यपि तद् राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम् ॥(अथर्व परिशिष्ट २-५)
२४. वेदशास्त्रार्थ तत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ (मनु १२ -१०२)
२५. बुद्धिपूर्वा वाक्यकृति र्वेदे (वैशेषिक दर्शन ६-१-१)
२६. सर्वज्ञानमयो हि सः..... । (मनुस्मृति)
२७. धमार्थकाममोक्षाणामारोग्यमूलत्तमम्।
२८. तत्र भिषजा पृष्टेनैव चतुर्णामृक्सामयजुरथर्व....वेदो ह्याथर्वणः ....चिकित्सां प्राह ॥
(चरक सूत्र स्थान अ. ३०)
२९. इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपांगमथर्व वेदस्य (सुश्रुत सूत्र १-३)
३०. भेषजं वा अथर्वाणि (ताण्ड्य महा ब्रा.१२-९-१२)
३१. येऽथर्वणस्तद् भेषजम्। (गोपथ ब्रा. १-३ ४)
३२. ऋचः सामानि भेषजा यजुंषि (अथर्व ११-६-१४)
३३. थर्वतिश्चरति कर्मा तत् प्रतिषेधः (निरुक्त ११-१-९)
३४. उषदाहे इत्यस्मादोषः ओषं दाहं दुःखं वा धयन्ति नाशयन्ति इति ओषधयः (निरुक्त)
३५. सर्वेषां च कृमीणां दहाम्यग्निनामुखम् (अथर्व ५-२३-१३)
३६. आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीमनुष्यजा उत।
ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥ (अथर्व ११-४-१६)
३७. अयं दर्भो विमन्यकः (अथर्व ६-४३-१)
३८. अग्नेरिवास्य दहतो... ईर्ष्यामुद्नाग्निमिवशमय ॥ (अथर्व ७-४५-२)
३९. यज्जाग्रतो दूरमुदैति... तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु (यजर्वेद)
४०. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः...... (मैत्रायणी उप. ४-११)
४१. प्राणो वा अथर्वा (शत. ब्राह्मण ६-४-२-१) येऽथर्वाणस्तद् भेषजम्) ॥
(गोपथ ब्राह्मण१-३-४)
४२. सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यो रसोऽक्षरत् सोऽङ्गरसोऽभवत् तं वा।
एतम् अंगरसं सन्तम् अंगिरा इत्याचक्षते (गोपथ ब्राह्मण पू. १-७) अंङ्गिरसोऽङ्गानां हि रसः (शत. १४४-१-९)
४३. अथर्व वेद के दूसरे काण्ड का तीसरा सूक्त तथा उन्नीसवें काण्ड का सूक्त ३४ और ३५
४४. सूर्य एति .... दृष्टान् .... अदृष्टांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् .... (अथर्व ५-२३-४)
उद्यन् आदित्य क्रिमीन् हन्तु रश्मिभिः (अथर्व २-३२-१)
४५. एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः (अथर्व. ५-२९-१४)
४६. गुल्गुलूः रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय (अथर्व. ४-३७-३)
क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि (अथर्व. २-३१-२)
४७. आर्ष ज्योति (पं. रामनाथजी वेदालंकारकृत) पृष्ठ ८१
४८. वेन स्तत् पश्यत् परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकनीड़म्...:
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने... (अथर्व. २-१-१ से ५ मन्त्र)
४९. आर्ष ज्योति पृष्ठ ८५
५०. "वेद और उसकी वैज्ञानिकता" (पृष्ठ ६३) आचार्य प्रियव्रतजी द्वारा रचित
५१. रक्षो रक्षितव्यमस्मात् (निरुक्त ४-१८)

५२. सूर्यो हि... राक्षसामपहन्ता (शत. ब्रा. १-३-४८) अग्नि वै ज्योति रक्षोहा... (शत. ब्रा. ७-४-१-३४) आपो वै रक्षोघ्नी (तैति. ३-२-३-१२)
५३. हिंगु रक्षोघ्नम् (राज. निघण्टु) हिंगु जन्तुघ्नम् धन्वन्तरि (निघण्टु)
५४. पिशितं मांसमश्नातीति पिशाचः। (शब्द कल्प द्रुम)
पिशितं मांसमाचमतीति पिशाचः (वाचस्पत्य कोषः)
५५. दुर्णामा क्रिमिर्भवति पापनामा। क्रिमि क्रव्ये मेद्यति॥ (निरु. ६-१२)
५६. परोऽपेहि मनस्पाप... अथर्व. ६-४५-१
५७. क्रतुमयः पुरुष... (छान्दोग्योपनिषद)
५८. अयं मे हस्तो... विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः (अथर्व. ४-१३-६)
५९. पानीयं श्रमनाशनम्-क्लमहरम्-मूर्छादिपासाहरम् (भावप्रकाशनिघण्टु)
६०. मुक्ताविद्रु.... चक्षुण्यामणयः शीता.... विष सूदना (सुश्रु.सू.स्थान ४६-१८)
६१. उग्र इत ते वनस्पत... अमीवा... रक्षांस्योषधे। (अथर्व. ९-३४-९)
६२. अयं नो विश्व भेषजो जंगिडः पात्वंहसः। (अथर्व. २-४-३)
६३. हिरण्यश्रृंग ऋषभः शातवारो अयं मणि... रक्षास्यक्रमीत्। (अथर्व. १९-३६-५)
६४. पुरोहितपुरुषाः कृत्याभिचारं ब्रूयुः (कौटिल्य अर्थशास्त्र १५०-१५२)
६५. ते मे देवा पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्या... (अथर्व. ८-५-५)
६६. उन्मुञ्चन्ती..... कृत्यादूषणोश्च.... ओषधी... (अथर्व. ८-५-५)
६७. अभिचारः आभिमुख्येन शत्रुवधार्थं चारः कार्यकारणम्
६८. परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात्... (अथर्व. ८-२-२६)
६९. अभिचारादयो भयात् मृत्योः.... (अथर्व. १-३-७)
७०. आदौ हृदयं रक्ष्यं तस्यावरणं पिबेद् यथाबलम् (चरकविष चिकित्सा २३-४४)

अथर्व - संदेश

प्रथम-काण्ड

अथर्ववेद के प्रथम काण्ड में ६ अनुवाक ३५ सूक्त तथा १५३ मन्त्र हैं। इस काण्ड में परमात्मा से प्रार्थना, उसकी न्याय व्यवस्था, जल की महत्ता, राजा के द्वारा दुष्टों का दमन, शरीर की नाड़ियों का वर्णन, चिकित्सा कार्य, अविवाह योग्य स्त्री, उत्तम सन्तति, हृदय रोग-त्वचा रोग, ज्वर की चिकित्सा, वाणी की मधुरता, ब्रह्म का स्वरूप, दीर्घ जीवन के उपायादि विविध विषयों का उपदेश दिया गया है।

परमात्मा से प्रार्थना :- अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र[1] में परमात्मा को 'वाचस्पति' अर्थात् वेद वाणी का उपदेष्टा अथवा समस्त जगत् का रचयिता कहा गया है[2]। परमात्मा ने सृष्टि की रचना की और वेदों का ज्ञान दिया। परमात्मा के बनाये हुए पदार्थों का वर्णन करते हुए उन्हें वेदमन्त्र में (त्रिषप्ता) तीन गुणा सात अर्थात् इक्कीस लिखा है। हमारे शरीर में पांच महाभूत+पांच प्राण+पांच ज्ञानेन्द्रियां+पांच कर्मेन्द्रियां तथा एक अन्तःकरणं ये इक्कीस पदार्थ विद्यमान हैं। जो जीवात्मा के कर्म और भोग के लिये (शरीर के रूप में) विद्यमान हैं। ये इक्कीस तत्त्व सभी (विश्वा) प्राणी रूपों (शरीरों) को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (परियन्ति) सब ओर से व्याप्त हो रहे हैं। अर्थात् सभी प्राणियों में ये इक्कीस तत्व विद्यमान हैं। उन (तेषाम्) इक्कीस तत्वों से बने हुए मेरे शरीर (मे तन्वः) में परमात्मा आज (अद्य) बल (बला दधातु) धारण करावे अर्थात् परमात्मा मेरे शरीर को बलवान्-स्वस्थ-नीरोग रखे यह प्रार्थना इस मन्त्र से की गयी है। इस मन्त्र के बाद अगले तीन मन्त्रों में भी परमात्मा को 'वाचस्पति' कहकर सम्बोधित किया गया है। परमात्मा से प्रार्थना करते हुए निवेदन किया हैं कि हे परमेश्वर आप हमारे समीप हो, हम सदा आपको अपने समीप मानते हुए वेदों के उपदेश के अनुसार जीवन व्यतीत करें, वेदों के विपरीत आचरण न करें[3]।

चिकित्सा और चिकित्सक :- मूत्रचिकित्सा का वर्णन करते हुए वेदमन्त्र में उपदेश दिया है कि मूत्राशय में मूत्र के एकत्रित होने पर, जिन नाड़ियों के द्वारा मूत्र शरीर से बाहर नहीं निकलता हो तो रोगी को बहुत कष्ट होता है। रोगी के मूत्रावरोध को हटाता हुआ चिकित्सक उससे कहता है कि मैं तुम्हारी मूत्रवहा नाड़ी को शलाका (औजार) से वैसे ही खोलता हूँ जैसे जल से भरे हुए स्थान (नदी-जलाशयादि) के अवरोध-रुकावट को छेदकर या तोड़कर जल को निकाला जाता है वैसे ही तुम्हारे शरीर से बाहर न जानेवाले एकत्रित हुए मूत्र को शरीर से बाहर निकालकर तुम्हारी

पीड़ा को दूर करता हूँ। इस मन्त्र से यह भी स्पष्ट होता है कि चिकित्सक को शल्यक्रिया (सर्जरी-आपरेशन) में निपुण होना चाहिये जिससे ओषधि के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर रोगी की शल्यक्रिया करके उसके कष्ट को दूर किया जा सके। शरीर का विकार शरीर में रहने पर मनुष्य को कष्ट होता है वैसे ही मानसिक विकार (ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध-अहंकारादि) भी मनुष्य को कष्ट देते हैं उनको भी निकालने का मनुष्य को यत्न करना चाहिये, इसी प्रकार सामाजिक रोग (कुरीतियों) से पूरा समाज दुःखी हो जाता है राष्ट्रीय रोग (राष्ट्र के आन्तरिक शत्रु आतंकवादी) और बाह्य शत्रुओं से भी राष्ट्र कमजोर और नष्ट हो जाता है। इसलिये सामाजिक एवं राष्ट्रीय रोगों को भी दूर करने का कार्य चिकित्सकों अर्थात् राष्ट्र हितैषियों को सदा तत्परता से करना चाहिये।

जल का महत्व :- वेदों में जल की महत्ता का बहुत अधिक वर्णन है, जल को 'अमृत' अर्थात् कभी नष्ट न होने वाला कहा गया है क्योंकि जल को गरम किया जाय तो उसकी वाष्प (भाप) बन जाती है, कभी जमाया जाय तो उसकी बर्फ बन जाती है, सामान्यतया वह द्रव रूप में रहता है इस प्रकार यह कभी मरता-नष्ट नहीं होता है इसलिये इसे अमृत कहा जाता है। यहां इस सूक्त[६] के प्रथम मन्त्र में जल को मयोभुव=सुख देनेवाला कहा गया है। गर्मी से संतप्त व्यक्ति स्नान करके, प्यासा व्यक्ति पानी पीकर तथा क्रोधी व्यक्ति को पानी पिलाकर उसके क्रोध को शान्त किया जाता है, गर्मी से जलती हुई आंखों पर शीतल जल के छीटें देने से सुख (शान्ति) की प्राप्ति होती है। जल से शरीर और वस्त्रों का मैल दूर हो जाता है, जल से अन्न की प्राप्ति होती है इस प्रकार जल को शिवतम अत्यन्त कल्याणकारक कहा गया है। वेदमन्त्र[६] में उपमा देते हुए समझाया गया है कि जैसे माता अपनी सन्तान का सदा कल्याण चाहती (उशतीरिव) है और कल्याण करती है वैसे जल हमारा कल्याण करे। जल में अनेक दिव्य गुण (देवीः) होते हैं वह सब जगह फैल जाता है (आपः) व्याप्त हो जाता है, बिखरे हुए को एकत्रित (इकट्ठा) कर देता है जैसे आटे में पानी डालने से आटे की लोई बन जाती है, आटा इकट्ठा हो जाता है वैसे ही जल हमारे अभीष्ट (अभिष्टये) सिद्धि के लिये, सफलता के लिये (शं भवन्तु) कल्याणकारी होवे।[७] जल के समान मनुष्य को भी दूसरों का कल्याण करना चाहिये। दूसरों को सुख देना चाहिये।

राजा का कर्तव्य :- राजा और राजपुरुषों के कर्तव्यों का उपदेश वेदमन्त्र में दिया है[८] कि जो लोग प्रजा को पीड़ा-कष्ट देते हैं (यातुधानः) तथा जो चोर या डाकू (दस्योः) हैं तथा जो लोग चुगलखोर हैं (किमीदिनम्) ऐसे व्यक्तियों को राजा अपने अधीन रखें और उन्हें दण्ड दें जिससे प्रजा सुखपूर्वक रह सके। यदि राजा अपने राज्य में चोर-डाकुओं और चुगलखोरों-चापलूसों को दण्ड देता है और प्रजा की उनसे रक्षा

करता है तो प्रजा ऐसे राजा और राजपुरुषों की प्रशंसा गुणगान (स्तुवानम्) करती है। जब राजा प्रजा की रक्षा करने और प्रजा को सुखी रखने के लिये चोर-डाकुओं (यातुधाना) को और चुगलखोरों-चापलूसों (किमीदिनः) को कठोर दण्ड देता है उस दण्ड को प्राप्त करके दुष्ट लोग विलाप करते हैं (विलपन्तु) रोते हैं, दुःखी होते हुए पुनः अपराध न करने की सोचते हैं, ऐसे कठोर दण्ड व्यवस्थापक राजा के राज्य में सुख शान्ति रहती है[९]। परमात्मा को सबसे बड़ा राजा कहा है, वह दुष्कर्म करनेवालों को दण्ड देकर उन्हें रुलाता है इसीलिये उसे 'रुद्र' कहा जाता है। इस वेदमन्त्र[१०] में उपदेश दिया गया है कि मनुष्य को परमात्मा के क्रोध (मन्यु) से बचकर पापकर्म से दूर रहना चाहिये क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है, कोई भी दुष्कर्म करनेवाला उसकी दृष्टि से बच नहीं सकता है, उसे वह दण्ड अवश्य देता है, इसलिये मनुष्य को पाप से सदा दूर रहना चाहिये।

प्रसवक्रिया में सतर्कता :- वेदों में सभी विषयों का ज्ञान विद्यमान है, इसलिये सन्तान के जन्म के समय चिकित्सक और परिजनों को कितनी सावधानी रखनी चाहिये जिससे प्रसूता (मां) तथा प्रसव (सन्तान) दोनों ही स्वस्थ तथा सुरक्षित रहें यह उपदेश ग्यारहवें सूक्त में दिया गया है। प्रथम मन्त्र में (सूतवै) सन्तान को जन्म देने के लिये प्रसूता के सभी अंग (विजिहताम्) विशेष रूप से ढीले हो जायं, प्रसवक्रिया का विशेषज्ञ चिकित्सक (वेधाः) ऐसा प्रयत्न करे जिससे प्रसूता सुखपूर्वक सन्तान को जन्म दे सके[११]। सन्तान को जन्म देनेवाली प्रसूता शरीर से स्वस्थ और मन से प्रसन्न रहे (त्वं श्रधय) ऐसा ध्यान परिजनों को रखना चाहिये[१२]। जरायु (जेर) अर्थात् गर्भाशय में बालक जिस थैली में सुरक्षित रहता है उसे 'जरायु' कहते हैं। यह भी परमात्मा की अद्भुत रचना है। यह जरायु बालक के जन्म के समय फट जाती है और कुछ समय के पश्चात् वह भी प्रसूता के शरीर से बाहर निकल जाती है उसके विषय में वेदमन्त्र में उल्लेख है कि वह मां के शरीर में, मांसादि से चिपकी हुई अन्दर न रह जाय, जिससे प्रसूता के जीवन को खतरा हो सकता है इसलिये चिकित्सक को इस विषय में विशेष ध्यान रखना चाहिये[१३]।

शिरपीड़ा (सिरदर्द) और खांसी :- स्वस्थ मनुष्य धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष को प्राप्त करने में सफल होता है। इसलिये स्वास्थ्य का बहुत महत्व है[१४]। मनुष्य को वर्षा में भीगने से या अधिक शीतल (ठंडी) वायु में रहने से सर्दी होने की संभावना रहती है, सर्दी में कफ की वृद्धि होने के कारण खांसी और उससे सिरदर्द हो सकता है इसलिये वेदमन्त्र में उपदेश दिया गया है[१५] कि सर्दी ने इस रोगी के (परुः परुः) प्रत्येक जोड़ में (आविवेश) घर कर लिया है। यह खांसी (यः कासः) और

शिर की पीड़ा-दर्द से (शीर्षक्त्या) बहुत कष्ट पा रहा है। यह खांसी और सिर दर्द इसको (शुष्मः) सुखा देनेवाले हैं, नष्ट कर देनेवाले हैं, क्योंकि प्रसिद्ध है "रोग का घर खांसी" इसलिये हे चिकित्सक ! इसे (वनस्पतीन् पर्वतान्) वनस्पति-ओषधी (काष्ठौषधि) द्वारा स्वस्थ करो या पहाड़ी क्षेत्र में ले जाकर स्वस्थ वायुमण्डल में रहकर यह श्वास-कास-का रोगी ठीक हो जाय यह सन्देश वेदमन्त्र में दिया है[१६]। मनुष्य शरीर के उत्तमांग (शिर) (परस्मै गात्राय) तथा दोनों हाथों और पैरों से स्वस्थ रहे। शरीर के सभी अंग उसके लिये (शम् अस्तु) सुखदायक हों यह प्रार्थना स्वस्थ जीवन के लिये परमात्मा से की है।

दुष्टों का विनाश :- जो लोग अपना पेट भरने के लिये (अत्रिण), अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये अमावस्या की रात्री में (अमावास्याम्) घने अन्धकार में लोगों का धन चुरा लेते हैं या दूसरों का प्राण हरण कर लेते हैं ऐसे राक्षसों को राजा दण्ड देवे[१७]। इतना ही नहीं आगे वेद मन्त्र में लिखा है कि जो हमारी गाय को मारे (यदि नो गां हंसि) यदि हमारे घोड़े को मारे, यदि हमारे किसी आदमी (पुरुषम्) को मारे तो हे राजन् ! तुम उसे सीसे (शीशे) की गोली से मार डालो जिससे वह किसी की कोई हत्या न करें[१८]। राजा गो हत्यारे या पशु हत्या करनेवाले को अथवा किसी मनुष्य की हत्या करनेवाले को मृत्यु दण्ड की कठोर सजा दे जिससे राज्य के सभी मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदि सुरक्षित रहें। एक हिंसक पर दया करने या उसे छोड़ने से हजारों सज्जन कष्ट पाते हैं अतः हिंसक को दण्ड देना ही राज धर्म है।

विवाह के योग्य और अयोग्य स्त्री :- किस स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये इसका उपदेश देते हुए लिखा है[१९] कि जो स्त्री सन्तान के निर्माण में योग्य एवं कल्याणकारिणी (भद्रा) है जो सुन्दर और लक्ष्मी रूप है (लक्ष्यम्-ललाम्यम्) ऐसी स्त्री के साथ पुरुष विवाह करे। घर को सुन्दर व्यवस्थित रख सके, धन की व्यय व्यवस्था ऐसी सुचारू रूप से रखे जिससे दरिद्रता का कष्ट न भोगना पड़े अर्थात् आय (आमदनी) से व्यय (खर्चा) कम करनेवाली, स्त्री पति-सन्तान और परिवार का कल्याण करनेवाली होती है तथा जो स्त्री चंचल (रिश्यपदीम्) है हमेशा इधर-उधर घूमती रहती है, जो सदा क्रोध करती रहती (विद्यमाम्) है, तथा चटोरी है (विलढ़याम्), स्वादिष्ट खाने के लिये प्रयत्नशील ऐसी स्त्री के साथ विवाह नहीं करना चाहिये[२०]। स्त्री के वे अवगुण परिवार और सन्तान को नष्ट कर देते हैं।

विविध रोग :- सूक्त २० और २१ में राजा के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। राजा सदा प्रजा का (स्वस्तिदा) कल्याण करनेवाला होता है (२१-१)। बाइसवें सूक्त में हृदयरोग (२२-१) पाण्डुरोग (कामला) का वर्णन (२२-२) में करके इनकी

चिकित्सा का वर्णन (२२-३ तथा ४) मन्त्र में किया है। सूक्त २३ में कुष्ठरोग का, सूक्त २४ में त्वचा के रोगों का वर्णन तथा २५वें सूक्त में ज्वर तथा उसकी चिकित्सा का वर्णन है। ज्वर के लिये 'तक्मन्' शब्द का प्रयोग करके वेदमन्त्र (२५-१) में स्पष्ट किया है कि यह शरीर को कष्ट देनेवाला ज्वर है, शरीर के अंगों में प्रविष्ट होकर उन्हें तपा देता है, इसलिये ज्वर के कारणों को जाननेवाले विद्वान् वैद्य (विद्वान्) से निवेदन किया है आप ऐसे ज्वर को हम से (नः) दूर कीजिये अर्थात् ज्वर की चिकित्सा कर उससे हमको मुक्त कीजिये[२१]।

सुख और दीर्घायु के साधन :- जो मनुष्य दूसरों का कल्याण करता है वह सदा सुखी रहता है यह उपदेश देते हुए वेदमन्त्र में लिखा है[२२] कि जो पुरुष (मात्रे-पित्रे स्वस्ति) माता-पिता और परिवार में विद्यमान दादा-दादी, नाना-नानी आदि सभी पुरुषों (पुरुषेभ्यः) तथा गौ आदि पशुओं (गोभ्य) के प्रति कल्याणकारी कार्य और व्यवहार करता है वह मनुष्य संसार में (विश्वं सुभूतम्) सर्व प्रकार का सुख-ऐश्वर्य प्राप्त करता है तथा बहुत लम्बे समय तक (ज्योक्) सूर्य को (सूर्यम् दृशेम) देखता है अर्थात् दीर्घायु होता है। अर्थात् माता पिता और वयोवृद्धों, ज्ञानवृद्धों की सेवा करनेवाला मनुष्य उनका आशीर्वाद प्राप्त करता है उनके आशीर्वाद से ज्ञान-सुख, ऐश्वर्य और दीर्घायु की प्राप्ति होती है गाय के घी-दूध-दही-छाछादि सभी पदार्थ लाभदायक हैं इसलिये ऐसे उपकारी पशुओं की रक्षा करनेवाले का सदा कल्याण होता है इसलिये माता पितादि की सेवा तथा गौ सेवा की प्रवृत्ति हमारे में हो यह सन्देश वेदमन्त्र से प्राप्त होता है[२२]।

ब्रह्म का स्वरूप :- परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए उपदेश दिया है कि वह ब्रह्म बहुत महान् है (महत् ब्रह्म) वह सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक है वह कहीं एक स्थान पर नहीं रहता है न तो वह केवल पृथिवी पर (न पृथिव्याम्) ही रहता है न केवल (न दिवि) द्युलोक में ही रहता है अपितु वह समस्त ब्रह्माण्ड में रहता है ऐसे महान् ब्रह्म को मनुष्यों को (जनासः विदथ) जानना चाहिये। उसी ब्रह्म के कारण ये सभी वनस्पतियां (विरुधः) ओषधियां जड़ी-बूटी आदि (प्राणन्ति) श्वास ले रही हैं अर्थात् विकसित हो रही हैं, बढ़ रही हैं। सृष्टि का समस्त जड़-चेतन जगत् उसकी व्यवस्था में चल रहा है यह संकेत वेदमन्त्र ने दिया है[२३]। केवल पेड़ पौधे, ओषधियां, वनस्पतियां ही नहीं अपितु अन्तरिक्ष में विद्यमान अनेक लोक लोकान्तर अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड उस परमेश्वर की व्यवस्था में चल रहा है[२४]।

वाणी की मधुरता :- वाणी की मधुरता का बहुत महत्त्व है, मधुरता के कारण शत्रु भी मित्र बन जाते हैं और वाणी की कटुता से मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

इसलिये मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिये यह उपदेश देते हुए वेदमन्त्र में लिखा है कि मेरी जिह्वा के अग्रभाग में मधु (शंहद) जैसी मधुरता रहे[२५] जिह्वा के मूल में भी मधुरता रहे, मेरे कर्म में, मेरे विचारों में मधुरता हो, कटुता के कारण मनुष्य सदा दुःख ही प्राप्त करता है। मधुर व्यवहार से मनुष्य का जीवन सुखदायी हो जाता है इसलिये वेद में लिखा है कि वाणी की मधुरता (मिठास) से मैं जीवन के प्रत्येक व्यवहार में मधुरता को प्राप्त करूं। सभी के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करता हुआ सभी का प्रिय बन जाऊं[२६]।

सज्जनों का संग (सत्संग) :- जो माता-पिता और गुरुजनों के सानिध्य में रहता है उनके उपदेशों को सुनता है उनके आदर्शों का अनुकरण करता है तथा श्रेष्ठ (सज्जनों) के साथ रहता है, दुर्जनों से दूर रहता है, उनके दोषों से प्रभावित नहीं होता है ऐसे व्यक्तियों का राक्षस-पिशाच आदि कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है यह सन्देश इस मंत्र में दिया गया है[२७]। माता-पितादि गुरुजनों से परिपक्व किये हुए सुदृढ़ विचारों के व्यक्ति को (न रक्षांसि) न तो राक्षस और न पिशाच (न पिशाचाः) दबा सकते हैं अर्थात् उसे प्रभावित नहीं कर सकते हैं। गुणीजनों के संग में रहनेवाले व्यक्ति सुख सम्पदा तथा जीवन में दक्षता ओज-तेज तथा दीर्घायु को प्राप्त करते हैं। इसलिये मनुष्य को सदा दुष्टों से दूर और सज्जनों का सत्संग करना चाहिये। इन विविध विषयों का उपदेश प्रथम काण्ड में दिया गया है।

प्रमाण :-

१. ***ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।***
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥ (अथर्व १-१-१)
२. ***वाचस्पति-वाचःपाता वा पालयिता वा*** (निरुक्त-१०-१७)
यो वै वाचोऽध्यक्षः स वाचस्पति (मैत्रा. २२-५)
वाक्-इतीमे लोका इमे वेदा अथो वाग् इति ब्रूयात् (ऐ-६-१५)
वाग्वै विराट् (शत.ब्रा.३-५-१-१४)
३. ***सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि॥*** (अथर्व. १-१-४)
४. ***प्रते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव।***
एवा त मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥ (अथर्व. १-३-७)
५. ***आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥*** (अथर्व. १-५-१)
६. ***यो वः शिवतमो रसस्तस्य... उशतीरिव मातरः*** (अथर्व. १-५-२)
७. ***शन्नो देवीरभिष्टय.... शंयोरभिस्रवन्तु नः॥*** (अथर्व. १-६-१)
८. ***स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम्....*** (अथर्व. १-७-१)
९. ***विलपन्तु यातुधाना अत्रिणो ये किमीदिन....*** (अथर्व.१-७-३)
१०. ***अयं देवानामसुरो विराजति...मन्योरुदिमं नयामि*** (अथर्व. १-१०-१)
११. ***वषट् ते पूषन्... वेधाः.... जिहतां सूतवा उ*** (अथर्व. १-११-१)
१२. ***सूषा व्यू... अथया सूषणे त्वमव त्वं विष्कले सृज*** (अथर्व. १-११-३)
१३. ***नेव मांसे न पीवसि... जरायु पद्यताम्*** (अथर्व. १-११-४)

१४. धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्... (आयुर्वेद)
१५. मुंच शीर्षक्त्या उत कास एनं.. पर्वतांश्च (अथर्व. १-१२-३)
१६. शं मे परस्मै गात्राय... शमस्तु तन्वे मम (अथर्व. १-१२-४)
१७. येऽमावस्यां रात्रि... अस्मभ्यमधि ब्रवत् (अथर्व. १-१६-१)
१८. यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
त्वं त्वा सीसेन विध्यासो यथा नोऽसो अवीरहा ॥ (अथर्व. १-१६-४)
१९. निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं... भद्रा...नयामसि (अथर्व. १-१८-१)
२०. रिश्यपदीं वृषदतीं.... विघ्नमामुत विलीढ्यं... मसि (अथर्व. १-१८-४)
२१. यदग्निरापो अदहत्... तक्मन् (अथर्व. १-२५-१)
२२. स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु... दृशेम सूर्यम्। (अथर्व. १-३१-४)
२३. इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥ (अथर्व. १-३२-१)
२४. अन्तरिक्ष आसां... वेधसो न वा ॥ (अथर्व. १-३२-२)
२५. जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूलेमधूलकम्... (अथर्व. १-३४-२)
२६. मधोरस्मि मधुतरो मदुधान् मधुमत्तरः..... (अथर्व. १-३४-४)
२७. नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते... दीर्घमायुः (अथर्व. १-३५-२)

द्वितीय काण्ड

काण्ड परिचय :- अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड में ६ अनुवाक ३६ सूक्त तथा २०७ मन्त्र हैं। इस काण्ड में परमात्मा और उसकी शक्तियां, राजा को उपदेश, राजा का कर्तव्य, सहन शीलता और आत्मज्ञान का उपदेश, आरोग्य, दीर्घायु, स्वयंवर विवाह, रोगोत्पादक क्रिमियों के विनाश का उपाय, मोक्षमार्ग का उपदेश, विवाह योग्य पति-पत्नी आदि विविध विषयों का वर्णन किया गया है।

ब्रह्म का उपदेश :- ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह परम ब्रह्म समस्त विश्व में विद्यमान है। ब्रह्मज्ञानी (वेनः) उस ब्रह्म का दर्शन (अनुभव) अपने हृदय (गुहा) में करते हैं[१]। परमात्मा का साक्षात्कार हृदय में ही होता है ऐसा अनेक स्थलों पर लिखा है[२]। ब्रह्मज्ञानी परमात्मा का अनुभव ही न करे अपितु उसके स्वरूप का उपदेश भी देते रहें यह उपदेश देते हुए लिखा है कि वेद शास्त्रों का ज्ञाता (गन्धर्वः) विद्वान्, हृदय गुहा (गुफा) में विद्यमान ब्रह्म का जन सामान्य को उपदेश (प्रवोचेद्) भी देता रहे[३]। इस वेदमन्त्र में यहां तक लिखा है कि जो ब्रह्म के स्वरूप को यथार्थ रूप से जान लेता है वह पिता का भी पिता (स पितुः पिता असत्) हो जाता है अर्थात् ब्रह्मज्ञानी सबका सम्माननीय और श्रद्धेय हो जाता है। महर्षि मनु ने लिखा है अज्ञानी व्यक्ति आयु में कितना ही बड़ा हो वह बालक ही है और छोटी आयुवाला ज्ञानी भी पिता के समान है[४]। परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए अगले मन्त्र में लिखा है कि परमात्मा हमारा माता-पिता और बन्धु है। वह सब लोक लोकान्तरों को जानता है[५]। वह परमात्मा सारे ब्रह्माण्ड का (भुवनस्य) एक ही स्वामी (एक एव पतिः) है। वह परमेश्वर नमस्कार (नमस्यः) और स्तुति (इड्यः) के योग्य है (२-२-१) यह उपदेश दिया गया है।

रोगनिवारक ओषधियां :- इसी काण्ड में रोगों की निवृत्ति के लिये विविध ओषधियों का वर्णन किया गया है। शुद्ध-पवित्र जल का भी ओषधि रूप में वर्णन करते हुए लिखा है कि रोगरक्षक (अवत्कम्) वह जल (अदः) जो पहाड़ों से नीचे की ओर आ रहा है, उसे परमात्मा ने ओषधि के रूप में बनाया है ऐसा जल हमारे लिये (सुभेषजम्) उत्तम ओषधि का कार्य करे[६]। जल रोगों को दूर करता है यह संकेत इस मन्त्र में दिया है, "जल चिकित्सा" का उल्लेख मूल रूप में वेदों में है, इससे यह भी स्पष्ट होता है। परमात्मा ने सैकड़ों ओषधियों (शतं भेषजानि) का निर्माण रोगों को दूर करने के लिये किया है यह भी वेदमन्त्र में लिखा है[७]। परमात्मा के आश्रय में रहनेवाले व्यक्ति रोगनाशक ओषधियों को प्राप्त करते हैं। ओषधियों का वर्णन करते हुए जंगिड़

मणि (ओषधि) का वर्णन करते हुए उसे रोगनाशक लिखा है[९]। जंगिड़मणि-राक्षसीय भावों (कृत्या दूषिः) को नष्ट करनेवाली तथा साहस प्रदान करनेवाली (सहस्वान्) है। (अथर्व २-४-६) ऐसा विवेचन अथर्ववेद भाष्य में पं. जयदेवजी शर्मा ने किया है।

राजधर्म का उपदेश :- अथर्ववेद में राजधर्म का उपदेश भी अनेक मन्त्रों में किया गया है। द्वितीय काण्ड में लिखा है कि प्रजा को कष्ट देनेवाले (निहः) शत्रुओं को राजा अपने अधीन कर ले, उन पर विजय प्राप्त करले (सृघः) कुत्सित आचरण करनेवाले दुष्टों पर भी विजय प्राप्त कर के अपने अधीन रखे, जिससे प्रजा सुखी रहे[१०]। जिस प्रकार ओषधि के सेवन करने से रोग समाप्त हो जाता है, पानी से मलिन वस्त्र शुद्ध हो जाता है, पापी और क्रोधी व्यक्ति ब्रह्म के ज्ञान और धर्म का आचरण करने से शुद्ध-पवित्र और धर्मात्मा हो जाता है उसी प्रकार राजा को भी धर्म का आचरण करना चाहिये[११]। राजा प्रजा की और प्रजा के धन की रक्षा करके अन्याय करनेवालों को दण्ड देकर सदा सुखपूर्वक रहे, यह सन्देश वेदमन्त्र में दिया गया है[१२]। पुरुषार्थ राजा को ही नहीं अपितु प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए इसका उपदेश देते हुए वेद में लिखा है कि जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा के उदय होने पर अन्धकार दूर हो जाता है वैसे ही मनुष्य विविध विघ्न-बाधाओं को हटाकर सदा अपनी उन्नति करने के लिए पुरुषार्थ करता है[१४]।

मोक्ष प्राप्ति का सन्देश :- मनुष्य को पुरुषार्थ लौकिक सुखों की प्राप्ति के लिये ही नहीं करना चाहिये अपितु पारलौकिक सुख (मोक्ष) को प्राप्त करने के लिये करना चाहिये यह उपदेश देते हुए लिखा है कि मनुष्य वेदों का ज्ञान प्राप्त करे, ज्ञान प्राप्त करके दुष्ट आचरण से अपने को पृथक् रखे तथा कभी भी पाप कर्म न करे जिससे परमात्मा या राज्य व्यवस्थानुसार वह दण्डित हो सके, मनुष्य शारीरिक और मानसिक रोगों से अपने को सुरक्षित रखकर सदा धर्म का आचरण करता हुआ मोक्ष प्राप्त करने में सफल हों[१५]। परमात्मा ने मनुष्य को सभी प्राणियों में श्रेष्ठ बनाया है अतः पुरुषार्थ करके अमरता को प्राप्त करे[१६]। जो मनुष्य पुरुषार्थी (स्त्रव्रत्यः) निरन्तर गतिशील (प्रतिसरः असि) है, परिश्रम करता है तथा दुष्ट कर्मों से सदा दूर रहता है, निष्कपट और सरल स्वभाववाला है ऐसा व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त करता है[१७]। पुरुषार्थी व्यक्ति हर क्षेत्र में सफल होता है।

दण्ड व्यवस्था :- राजकीय दण्ड व्यवस्था किस प्रकार की होनी चाहिये इसका उपदेश देते हुए वेद में लिखा है कि जो मनुष्य वेदों की उपकारक आज्ञाओं का उल्लंघन करता है, शूरवीर पुरुष उसको दण्ड देवे। ऐसे पापकर्म करनेवाले दुष्टात्मा को परमात्मा भी दण्ड देता है। परमात्मा की दण्ड व्यवस्था से पापी व्यक्ति कष्ट भोगता

है[१८] । दुराचारी व्यक्ति राजा की दण्ड व्यवस्था और परमात्मा की न्याय व्यवस्था से शारीरिक और मानसिक कष्ट प्राप्त करता है जैसे जलती हुई अग्नि से कोई जलकर कष्ट पाता है[१९] ।

दण्ड व्यवस्था का उपदेश देने के बाद तेरहवें सूक्त में ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन किया गया है । ब्रह्मचर्य का पालन करने से शरीर सुदृढ़ होता है, बुद्धि तीक्ष्ण होती है । शरीर की सुदृढ़ता का वर्णन करते हुए लिखा है कि तुम्हारा शरीर पत्थर के समान सुदृढ़ हो । (अश्मा भवतु ते तनुः २-१३-४) ब्रह्मचारी व्यक्ति स्वस्थ और बलवान् ही नहीं रहता अपितु उसकी आयु १०० वर्ष और उससे भी अधिक होती है (आयुष्ट शरदः शतम्) इस मंत्र में यह सन्देश दिया है ।

निर्धनता के कष्ट :- दरिद्रता बहुत ही कष्टदायक अवस्था होती है । दरिद्र व्यक्ति का कोई सम्मान नहीं करता है, परिचित जन उससे मुंह फेर लेते हैं मनुष्य की दरिद्रावस्था न रहे ऐसी प्रेरणा वेद में दी गयी है । दरिद्रता से होनेवाली हानियों का वर्णन करते हुए लिखा है कि धन न रहने पर मनुष्य घर से निकल जाता है, दीनता भरे शब्द बोलने लगता है, उसकी सुन्दरता समाप्त हो जाती है, मति भ्रष्ट हो जाती है, वह बुद्धिविरुद्ध कार्य सोचने और करने लग जाता है, क्रोधादि अवगुण उसमें आ जाते हैं । इसलिये मनुष्य को पुरुषार्थ करके निर्धनता के कष्ट से स्वयं को बचाना चाहिये अर्थात् धनैश्वर्य से सम्पन्न होकर सुखी रहना चाहिये[२०] । अतः मनुष्य को प्रयत्न करके दरिद्रता को दूर करके, दुःखदायी रोगों को समाप्त करके सुखपूर्वक रहना चाहिये[२१] ।

निर्भयता :- मनुष्य को सदा सत्कर्म करते हुए निर्भय (भयरहित) रहना चाहिये इस विषय में उपदेश दिया है कि जैसे सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश देते हैं और किसी को दुःख नहीं देते (न रिष्यत) हैं तथा डरते भी नहीं हैं (न बिभीतः) । इसी प्रकार मनुष्य को किसी को कष्ट न देते हुए डरना नहीं चाहिये । (मा बिभे) अर्थात् जो मनुष्य दूसरों को कष्ट नहीं देता, दूसरों के जीवन में बाधा नहीं डालता है ऐसा व्यक्ति कभी भयभीत नहीं होता है[२२] । इस पूरे (पन्द्रहवें) सूक्त में विविध उदाहरणों के द्वारा निर्भयता का उपदेश दिया गया है । सत्य का उपदेष्टा ब्राह्मण तथा न्यायकर्ता क्षत्रिय जैसे भयभीत नहीं होते हैं वैसे ही सत्य और न्याय का पालन करता हुआ मनुष्य अपने को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि हे मेरे प्राणो (मे प्राण) तुम्हें डरना नहीं चाहिये (मा बिभे)[२३] । इसके पश्चात् सोलहवें सूक्त में (मृत्योः मा पातम् २-१६-१) मृत्यु से रक्षा करने का वर्णन किया गया है । तथा सतरहवें सूक्त में ओज-(ओजोऽसि मेदाः २-१७-१) सहनशीलता-तेज-बल-आयु आदि की प्राप्ति की प्रार्थना की गयी है । सूक्त १८ में शत्रुओं से रक्षा करनी चाहिये (भ्रातृव्यचातनं मेदाः २-१८-१) यह उपदेश दिया है ।

सूक्त १९-२३ में द्वेष करनेवालों के विषय में उपदेश दिया गया है। सूक्त २४ में वासनाओं का नाश सूक्त २५ में शत्रुओं के नाश के उपायों का वर्णन है। मनुष्य को सदा गौओं की रक्षा करके उनके दूध, घी आदि का सेवन करके स्वस्थ और बलवान् रहना चाहिये (अथर्व. २-२६-५)। जैसे औषधि के द्वारा रोग नष्ट होते हैं वैसे ही बुद्धि से मनुष्य को आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं का विनाश करना चाहिये (अथर्व २-२७-१)।

यशस्वी जीवन :- मनुष्य अपने जीवन में स्वस्थ कैसे रहे, पूर्ण आयु का भोग किस प्रकार करे तथा उसका जीवन यशस्वी कैसे बने ? इसका उपदेश देते हुए लिखा है कि जो मनुष्य परमात्मा के शासन (जरिमन् तुभ्यम्) में रहते हैं। उसके अनुशासन का पालन करते हैं। ऐसे मनुष्य को परमात्मा पाप से (अंहसः पातु) बचाता है, उनकी रक्षा करता है[२४]। जो मनुष्य दिन रात के समान नियमित जीवन व्यतीत करते हैं, परिश्रम करते हैं तथा परमेश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं वे यशस्वी होते हैं[२५]। जैसे माता-पिता सन्तान के साथ प्रीति रखते हैं वैसे ही पुरुषार्थी व्यक्ति पर माता-पिता के समान परमात्मा कृपादृष्टि रखता है जिससे मनुष्य यशस्वी होकर पूर्ण आयु (शतं हिमाः) का भोग करता है[२६]। मनुष्य को दीर्घ आयु और यशस्वी जीवन के लिये स्वयं प्रयत्न करना चाहिये यह उपदेश सूक्त २९ में दिया गया है। वर और कन्या माता पिता की अनुमति से विवाह करें। (२-३०-२) अर्थात् स्वयंवर विवाह में स्वेच्छाचारिता नहीं अपितु माता-पितादि की उपस्थिति अनुमति आदि होनी चाहिये (२-३०-२) यह उपदेश दिया है। वर-वधू दोनों रोगरहित (अनमीवाः) हों जिससे स्वस्थ सन्तान को जन्म दे सकें (२-३०-३) और श्रेष्ठ सन्तान से उनका जीवन यशस्वी हो यह सन्देश इस मन्त्र में दिया है।

रोग कीटाणु :- मनुष्य अचानक रोगी नहीं होता है, अन्न-जल-वायु आदि के द्वारा रोग के कीटाणु उसके शरीर में प्रविष्ट होकर मनुष्य को रोगी बना देते हैं इसलिये रोग कीटाणुओं को नष्ट करने का उपदेश सूक्त ३१तथा ३२ में दिया गया है। रोग कीटाणु बहुत सूक्ष्म होते हैं वेदमन्त्र[२७] में उन्हें दृष्ट और अदृष्ट लिखा है। बहुत से कीटाणु दीख जाते हैं किन्तु बहुत से कीटाणु (क्रिमि) बहुत सूक्ष्म होते हैं, दीखते नहीं हैं। ऐसे क्रिमियों से हमारे जीवन की रक्षा हो। सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के द्वारा रोग के कीटाणु नष्ट होते हैं, यह उल्लेख वेदमन्त्र में किया गया है[२८]। रोग के कीटाणु नेत्रों में (२-३३-१) ग्रीवा में, धमनियों में, हड्डियों में, आतों में, हृदय में शरीर के सब अंगों में प्रविष्ट होकर शरीर को रोगी कर देते हैं उनसे रक्षा के उपाय सूक्त ३३ में बताये गये

हैं। जो व्यक्ति रोग और दुःखों से दुःखी है तथा उनके दुःखों और रोगों को जो दूर करता है ऐसे व्यक्तियों का परमात्मा सदा सहायक होता है (२-३४-३)।

श्रेष्ठ पत्नी :- जो मनुष्य स्वार्थी होते हैं केवल अपना ही पेट भरते रहते हैं (भक्षयन्तः)। जो केवल धन इकट्ठा करके दूसरों का कल्याण नहीं करते हैं ऐसे व्यक्तियों से किसी का कल्याण नहीं होता है, बुद्धिमान् लोकोपकारक ऐसे व्यक्तियों को सन्मार्ग में लाने का, दूसरों के कल्याण करने का उपदेश दें, परमात्मा की कृपा से वे स्वार्थ और कृपंणता (कंजूसी) का मार्ग छोड़ दें जिससे उनका कल्याण हो। यह उपदेश इस मंत्र में दिया है[२९]। सूक्त ३६ में स्वयंवर विवाह के विषय में वर्णन किया गया है। राजकीय व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि योग्य गुणवती कन्या (इमां सुमतिं कुमारीम्) का विवाह योग्य गुणवान् वर (वरेषु) के साथ माता पिता को कर देना चाहिये (२-३६-१) पति-पत्नी सफलता पूर्वक गृहकार्यों को सम्पन्न करें यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है[३०]। पत्नी सदा पति के धन की रक्षा करे। जब पत्नी पति के धन का दुरुपयोग न करके धन को सुरक्षित रखती है तब वह पति से सदा सम्मान प्राप्त करती है। जैसे मनुष्य बायें हाथ की अपेक्षा दाहिने हाथ सेअधिक कार्य करता है, दाहिना हाथ अधिक सहायक होता है वैसे ही पत्नी भी पति की सहायक होती है और उससे अधिक सम्मान प्राप्त करती है[३१]। इसलिये पति-पत्नी को अपनी दाहिनी ओर (प्रदक्षिणम्) बिठाता है, अतः पत्नी को पति के धन की सदा रक्षा करनी चाहिये।

प्रमाण :-

१. *वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा ....* (अथर्व २-१-१)
२. *ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।*
   ..... तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ॥ (गीता १८)
३. *प्रतद् वोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत्।*
   त्रीणि पदानि निहता .... सपितुष्पिता सत् ॥ (अथर्व. २-१-२)
४. *अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।* (मनु. २-१५३)
५. *स नः पिता जनिता स उतबन्धु धामानि वेद भुवनानि विश्वा।*
   यो देवानां नामध एक एव .... भुवना यन्ति सर्वा ॥ (अथर्व. २-१-३)
६. *अदो यदवधावत्यवत् ... सुभेषजं यथाससि ॥* (अथर्व. २-३-१)
७. *आदङ्गा कुविदंगा शतं या भेषजानि ते ....।* (अथर्व. २-३-२)
८. *उपजीकाः उद्भरन्ति .... भेषजं तदु रोगमशीशमत् ॥* (अथर्व. २-३-३)
९. *दीर्घायुत्वाय बृहते रणाय ... मणिं .... जंगिड़ं विभृमो वयम् ॥* (अथर्व. २-४-१)
१०. *अति निहो अति सृधो ....।* (अथर्व. २-६-५)
११. *अघद्विष्टा देवजाता ... मच्छपथाँ अधि ॥* (अथर्व. २-७-१)
१२. *परि मां परि मे प्रजां ... रभिभातयः।* (अथर्व. २-७-४)
१३. *उदगातां भागवती विचृतौ ... पाशमुत्तमम् ॥* (अथर्व. २-८-१)
१४. *दक्षपृक्ष मुंचेमं रक्षसो .... जीवानां लोकमुन्नय ॥* (अथर्व. २-९-१)
१५. *क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या ... ते द्यावा पृथिवी उभे स्ताम्।* (अथर्व. २-१०-१)

१६. तासु .... द्यावा पृथिवी उभे स्ताम् ॥ (अथर्व. २-१०-५)
१७. स्त्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि .... आप्नुहि श्रेयांसम् .. । (अथर्व. २-११-२)
१८. अतीव यो मरुतो मन्यते ... द्यौरभि संतपाति । (अथर्व. २-१२-६)
१९. आ दधामि ते पदं ... अग्नि शरीरं ... वागपि गच्छतु । (अथर्व. २-१२-८)
२०. निः सालां धृष्णुं ... नाशयामः सदान्वाः ॥ (अथर्व. २-१४-१)
२१. असौ यो अधराद् गृहस्तत्र .... यातधान्यः । (अथर्व. २-१४-३)
२२. यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥(अथर्व. २-१५-३)
२३. यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न .... प्राण मा बिभेः । (अथर्व. २-१५-४)
२४. तुभ्यमेव जरिमन् ... मातेव पुत्रं ... पात्वंहसः । (अथर्व. २-२८-१)
२५. मित्र एनं वरुणो वा रिशादा ... जनिमा विवक्ति । (अथर्व. २-२८-२)
२६. द्यौष्ट्वां पिता पृथिवी माता .... शतं हिमाः । (अथर्व. २-२८-४)
२७. दृष्टम दृष्टम तृहमथो ... क्रिमीन् ... जम्भयामसि । (अथर्व. २-३१-२)
२८. उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु .... क्रिमयो गवि ॥ (अथर्व. २-३२-१)
२९. ये भक्षयन्तो न वसून्या ... विश्वकर्मा । (अथर्व. २-३५-१)
३०. इयमग्ने नारी पतिं .... सुभगा वि राजतु । (अथर्व. २-३६-१)

तृतीय काण्ड

काण्ड परिचय :- तृतीय काण्ड में ६ अनुवाक ३१ सूक्त २३० मन्त्र हैं। इस काण्ड में सेनापति और राजा के कर्तव्य, राज्याभिषेक, आरोग्य और दीर्घायु के उपाय, व्यापार कर्म, ईश्वर की स्तुति, उत्तम सन्तान, स्वयंवर विवाह, अविद्या का नाश, तेजस्विता, ओषधि संग्रह, परस्पर मिलकर रहने का उपदेश, पाप से मुक्ति आदि विविध विषयों का उपदेश इस मंत्र में दिया गया है।

राजा के गुण और कर्तव्य :- राजा के गुणों का वर्णन करते हुए मन्त्र में उसे अग्नि के समान तेजस्वी होना चाहिये, जैसे अग्नि पदार्थों को भस्मसात् कर देता है वैसे ही राजा भी शत्रुओं को नष्ट करनेवाला होना चाहिए। राजा पढ़ा लिखा अर्थात् विद्वान् हो, राजा प्रजा के विषय में पूरी जानकारी रखनेवाला (जातवेदाः) हो, ऐसा राजा शत्रुओं पर आक्रमण कर उनकी सेना को नष्ट कर दे। जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देता है[२], वैसे ही जो लोग प्रजा में अशान्ति फैलाते हैं ऐसे दुष्टों को भी राजा दण्ड दे, यह सन्देश दिया गया है। सेनापति के कर्तव्यों का उपदेश देते हुए लिखा है कि सेनापति अपनी सेना को इस प्रकार खड़ी करे कि आती हुई शत्रु सेना को रोककर उसे नष्ट कर दे[३]। अर्थात् शत्रु को मार्ग में ही नष्ट कर देना चाहिए। राजा के कर्तव्य का उपदेश देते हुए लिखा है कि वह अपने पराये का विचार छोड़कर अर्थात् पक्षपात रहित होकर धर्म विरुद्ध आचरण करनेवाले व्यक्ति को अपने राज्य से बाहर निकाल दे तथा इस दण्ड व्यवस्था को प्रचारित भी कर दे, जिससे राज्य की प्रजा धर्म के विरुद्ध आचरण न करे और राजकीय दण्ड से भयभीत रहे[४]। राजा के कर्तव्यों का उल्लेख करने के बाद चौथे सूक्त में राज्याभिषेक के विषय में उपदेश दिया गया है।

पर्णमणि और अश्वत्थ :- पर्णमणि का वर्णन पांचवें सूक्त में तथा अश्वत्थ का वर्णन छठे सूक्त में है। पर्णमणि कोई मणि विशेष नहीं है अपितु पालन करनेवालों में श्रेष्ठ राजा या परमेश्वर का वर्णन है। मणि शब्द मन धातु से इन् प्रत्यय होकर बनता है[५]। (मन ज्ञाने) जो ज्ञानवान हो (मन स्तम्भे) जो शत्रुओं और रोगों को रोके तथा (मनु अवबोधने)। जो दूसरों को ज्ञान देता है उसे मणि कहते हैं। मण् शब्दे धातु से भी मणि शब्द बनता है अर्थात् जो श्रेष्ठ वक्ता होता है ऐसे नेता को भी 'मणि' कहते हैं। इस प्रकार विद्वान् नेता राजा-परमात्मा और ओषधि आदि के लिये मणि शब्द का प्रयोग होता है। जैसे यह (अयम्) बलवान् (बली) पर्णमधि अर्थात् पालन करनेवालों में श्रेष्ठ परमात्मा अपने सामर्थ्य से हमारे शत्रुओं (सपत्नान्) को हटाकर अन्नादि पदार्थों को प्रदान कर हमारे पर उपकार करता है वैसे ही बलवान् राजा हमारे शत्रुओं को नष्ट करके हमारे पर उपकार करे[६]।

अश्वत्थ :- अश्वत्थ शब्द पीपल के लिये प्रयुक्त होता है, यह वृक्षों में श्रेष्ठ पवित्र और गुणकारक माना जाता है। इसकी समिधा (लकड़ी) यज्ञ में प्रयुक्त होती है। इसके दूध, पत्ते, फल, लकड़ी आदि की ओषधि बनती है। इसको मधुर-कसैला-शीतल-कफ और पित्तनाशक बताया गया है। इसे दांतों के लिये लाभदायक, कृमिनाशक कहा गया है। इन गुंणों के कारण इस वृक्ष की बहुत प्रशंसा की गयी है। इसी प्रकार जो पुरुष अश्वत्थ के सदृश अर्थात् अश्व के समान बलवानों में ठहरनेवाला अर्थात् सबसे अधिक बलवान् है, ऐसा बलवान् पुरुष सर्वशक्तिमान् परमात्मा का चिन्तन करते हुए अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाता है। वह संसार में (शत्रून् हन्तु) शत्रुओं को मारकर संसार में यश को प्राप्त करता है[७]। जैसे शक्तिशाली व्यक्ति शत्रुओं से रक्षा करता है वैसे पीपल (अश्वत्थ) पापकर्मों से रक्षा करता है।

ओषधि और राज धर्म :- सातवें सूक्त में रोग और रोगनाशक ओषधियों का वर्णन है। हिरण के सींग (हरिण, विषाणे) को रोगनाशक कहा गया है[८]। यह क्षेत्रिय अर्थात् शरीर अथवा वंश के रोग (वंशानुगत रोग) का नाश करनेवाला है। पानी भी रोग कीटाणुओं को (आपः अमीव चातनी) नष्ट करनेवाला है। जल की प्रशंसा करते हुए वेदमन्त्र में उसे (विश्वस्य भेषजी)समस्त रोगों को नष्ट करनेवाला लिखा है[९]। जैसे सूर्य के उदय होने पर तारे छिप जाते हैं वैसे ही परिश्रमी व्यक्ति परिश्रम करके अपने अनिष्ट अथवा रोगों (दुर्भूतम्) को नष्ट कर देता है[१०]। राजा को शूरवीरों का सम्मान करना चाहिये। जो राजा सज्जनों, सत्य बोलनेवालों का सम्मान करता है वह संसार में कीर्ति को प्राप्त करता है (३-८-३)। राजा अपने राज्य की वृद्धि के लिये प्रजा को नगरों में बसावे (३-८-४)। राजा अपने शुभ विचारों से सभासदों तथा प्रजा को धर्म के मार्ग पर चलाकर उन्हें साहसी और उत्साही बनावे (३-८-६)।

उन्नति और सुख :- परमेश्वर जिस प्रकार संसार का भरण-पोषण और धारण कर रहा है उसी प्रकार से धर्मात्मा व्यक्ति को भी किसी के साथ पक्षपात न करके जगत् का कल्याण करना चाहिए। विघ्न और बाधाओं को दूर करके उन्नति करनी चाहिये[११]। जिस प्रकार किसान बैलों को असह्य बल से हीन करके हल में चलने के योग्य करके उनसे कृषि करके उन्नति करता है वैसे ही मनुष्य को उन्नति करनी चाहिये। मनुष्य को बुद्धिपूर्वक कार्य करते हुए शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके निर्भय रहकर उन्नति करनी चाहिये। जिस प्रकार बन्दर (कपिःइव) वृक्ष पर चढ़कर कुत्तों से सुरक्षित और भयरहित रहता है, वैसे ही मनुष्य शत्रुओं से निर्भय रहे। यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है[१२]। जो विद्वान् सृष्टि विद्या को जानते हैं, ज्ञान विज्ञान में निपुण हैं ऐसे विद्वान् विज्ञान के द्वारा संसार के पदार्थों का सदुपयोग करते हुए उन्नत होते हैं और सुख प्राप्त करते हैं। यह इस मंत्र में उपदेश दिया है[१३]।

रोग निवृत्ति :- ग्यारहवें सूक्त में रोगों को दूर करने का उपदेश दिया गया है। कुशल वैद्य गुप्त और प्रकट हुए रोगों से रोगी को छुड़ाता है (३-११-१)। सुशिक्षित वैद्य को प्रयत्न करके रोगियों की चिकित्सा करके उनको ठीक करना चाहिये (३-११-२) प्राण वायु और अपान वायु का संचार ठीक से होना चाहिये। यदि प्राणापान का ठीक तरह से शरीर में संचरण नहीं होता है तो रुधिर को शरीर के अंगों में प्रवाहित होने में बाधा उत्पन्न होती है, जिससे रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) हृदयाघातादि रोगों की सम्भावना हो जाती है (३-११-६)। इसलिये मनुष्य को आसन, प्राणायाम-व्यायामादि के द्वारा प्राण अपान की गति को ठीक रखना चाहिये[१४]।

गृहनिर्माण और गो महिमा :- बारहवें सूक्त में गृहनिर्माण के विषय में उपदेश दिया है कि घर मजबूत (ध्रुवां शालाम्) सुदृढ़ हो, भूकम्प, तूफानादि से भवनों की कुछ भी हानि न हो (३-१२-१)। तेरहवें सूक्त में जल की महत्ता का वर्णन किया गया है। पानी से अन्न-वृक्ष-वनस्पति ओषधि आदि पैदा होते हैं। चौदहवें सूक्त में गौ की महिमा का वर्णन करते हुए उपदेश दिया है कि जैसे गृहपत्नी सबको प्रसन्न रखती है, गौवें अपने दूध, दही, घी आदि से सभी को पुष्ट और स्वस्थ रखती हैं मनुष्य गौवों का पालन करे और वंश की वृद्धि करे[१५]।

व्यापार और कृषि :- वाणिज्य कर्म-व्यापार करने का उपदेश देते हुए लिखा है कि विमान-नौका (नाव), रथ आदि विविध गमनागमन के साधनों के द्वारा व्यापारियों को देश विदेश में जाकर व्यापार करना चाहिये और धन धान्य की वृद्धि करनी चाहिये[१६]। मनुष्य को प्रातःकाल सूर्योदय से पहले उठ जाना चाहिये। यह उपदेश सूक्त १६ में दिया गया है। व्यापार के अतिरिक्त मनुष्य को कृषि खेती भी करनी चाहिये। इस विषय में उपदेश देते हुए लिखा है कि कृषक लोग खेती करके अन्नादि खाद्यपदार्थों की पूर्ति करके दूसरों को सुख प्रदान करते हैं और स्वयं भी सुख प्राप्त करते हैं[१७]। मनुष्य को उत्तम साधनों से खेती करके अधिक अन्न उत्पन्न करना चाहिये (३-१७-३) मनुष्य को मन लगाकर और सावधान होकर खेती करनी चाहिये जिससे वह अन्नवान् और धनवान् होवे (३-१७-८)। इस के पश्चात् अविद्या को दूर करने के उपाय सूक्त १८ में बताये हैं। युद्ध करने का प्रशिक्षण १९ सूक्त में दिया गया है।

ब्रह्मविद्या :- ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हुए सूक्त २० में लिखा है कि परमात्मा की कृपा से मनुष्य को मानव शरीर प्राप्त हुआ है। मानव शरीर को प्राप्त करके मनुष्य को उन्नति करते हुए अपना ऐश्वर्य बढ़ाना चाहिये[१८]। मनुष्य विद्वानों से विद्या ग्रहण करके संसार में ऐश्वर्य प्राप्त करें (३-२०-२) मनुष्य अपनी कर्म कुशलता से दूसरों को सहायक बनावें और दूसरों के सहायक बनें (३-२०-५)। मनुष्य ब्रह्म को ध्यान में

रख कर सत्य बोले और सत्य का आचरण करे (३-२०-१०)। परमेश्वर के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि सूर्य और चन्द्रमा में जो प्रकाश (अग्नि) है वह परमात्मा के कारण है। ऐसे परमात्मा को नमस्कार है (३-२१-२)। मनुष्य ईश्वर के अनुपम गुणों को धारण करके पुरुषार्थी बनें और दुःखों का नाश करे[१९]। यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है। सभी स्त्री पुरुष परमेश्वर की महिमा को जानें (३-२२-२)

सन्तान प्राप्तिः- सन्तानोत्पत्ति विषयक वर्णन करते हुए लिखा है कि कुशल चिकित्सक वन्ध्या स्त्री को समझाते हुए उपदेश देता है कि जिस कारण से (वेहद्) वन्ध्या (बांझ) हुई है उस कारण को ओषधि का प्रयोग करके (नाशयामि) नष्ट कर देता हूँ अर्थात् तू सन्तान को जन्म देने योग्य हो जायगी[२०]। पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा सन्तानोत्पत्ति का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। इसलिये पति-पत्नी युक्ताहार विहार पूर्वक गर्भ स्थिर रखें, पूर्ण रूप से सुरक्षित रहकर गर्भ दसवें मास गर्भाशय में रहकर वीर सन्तान के रूप में उत्पन्न हो[२१]। अर्थात् दस चान्द्रमास तक जीवात्मा मां के शरीर (गर्भाशय) में रहता है और उसके बाद उसका जन्म होता है यह सन्देश वेद ने दिया है। गृहस्थ पति-पत्नी ब्रह्मचर्य, विद्या और ओषधि के प्रयोग से ज्ञानी, बलवान् और धर्मात्मा (भद्राणि) सन्तान प्राप्त करे (३-२३-४)।

मनसा परिक्रमा :- मनुष्य को धन धान्य की वृद्धि करने का उपदेश सूक्त २४ में दिया है। दान की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है कि सौ हाथों से कमाओ और हजार हाथों से बांटो[२२]। दान करो, वितरित करो, विद्या की प्राप्ति का तथा अविद्या को हटाने का उपदेश सूक्त २५ में दिया है। विद्या की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है कि जैसे गुणवती स्त्री मन-वचन-कर्म से पति की सेवा करती है वैसे ही विद्या मनुष्य की हितकारिणी है[२३]। सेना की व्यूह रचना के विषय में सूक्त २६ में उपदेश दिया है। सूक्त २७ में परमेश्वर पूर्व (आगे) पश्चिम (पीछे) उत्तर (बायें) दक्षिण (दाहिनी) सभी ओर तथा नीचे (ध्रुवा) ऊपर (ऊर्ध्वा) सब ओर है। उसे क्रमशः अग्नि- इन्द्र-वरुण-सोम-विष्णु-बृहस्पति आदि नामों से सम्बोधित करके उसे नमस्कार किया गया है तथा दूसरों से ईर्ष्या-द्वेषादि न करने का संकल्प लिया गया है। यह मनसा परिक्रमा के ६ मन्त्रों का वर्णन है[२४]।

पारिवारिक जीवन :- जिस परिवार के सभी सदस्यों का हृदय एक दूसरे के प्रति हितकारी होता है, जो सत्कर्म करते हैं, जो स्वस्थ रहते हैं ऐसे व्यक्ति सुख और ऐश्वर्य का भोग करते है। यह इस मन्त्र में सन्देश दिया है[२५]। जो मनुष्य परमात्मा की सत्ता का सदा अपने में अनुभव करता है वह व्यक्ति सन्मार्ग पर चलता हुआ सदा आनन्द प्राप्त करता है[२६]। सूक्त ३० में पारिवारिक जीवन का सुन्दर विश्लेषण करते हुए लिखा है कि पुत्र पिता के व्रतों का अनुसरण करनेवाला हो, माता के प्रति अच्छे

विचार रखे, पत्नी पति से मधुरता से बोले जो शान्ति और सुखकारक हो[२७]। भाई-भाई से द्वेष न करे[२८]। सबके हृदय, मन सब एक हों[२९]। वेद मार्ग पर चलकर घर के सब सदस्य सुख प्राप्त करें (३-३०-४) सूक्त ३१ में आयु की वृद्धि के लिये पुरुषार्थ-ब्रह्मचर्य का सेवन, शारीरिक और मानसिक पाप के त्याग तथा रोगों से निवृत्ति होने पर तथा सद्गुणों का सेवन करने से बल-आयु की वृद्धि करके जीवन को सफल करना चाहिये यह उपदेश इस मन्त्र में दिया गया है।

प्रमाण :-

१. *अग्नि र्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान्.... कृणवज्जातवेदाः।* (अथर्व. ३-१-१)
२. *अमित्रसेनां मघवन्... अग्निश्च दहतं प्रति॥* (अथर्व. ३-१-३)
३. *असौ या सेना मरुतः....... अन्यं न जानात्॥* (अथर्व. ३-२-६)
४. *यस्ते हवं विवदत् सजातो... इहाव गमय॥* (अथर्व. ३-३-६)
५. *सर्वधातुभ्यः इन्* (उणादिकोष ४-११-८) सूत्र से इन प्रत्यय होकर मणि शब्द बनता है
६. *आयमगन् पर्णमणिर्बली... प्रयावन्॥* (अथर्व. ३-५-१)
७. *पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वत्थः.... ये च माम्॥* (अथर्व. ३-६-१)
८. *अनु त्वा हरिणो.... विषाणे.... क्षेत्रियं हृदि॥* (अथर्व. ३-७-२)
९. *आप इद् वा उ भेषजी रापो अमीव चातनीः।*
   आपो विश्वस्य भेषजी.... क्षेत्रियात्॥ (अथर्व. ३-७-५)
१०. *अपवासे नक्षत्राणामपवास.... क्षेत्रियमुच्छतु॥* (अथर्व. ३-७-७)
११. *अश्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम्।*
   कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्कबर्हो गवामिव॥ (अथर्व. ३-९-२)
१२. *येना श्रवस्यवश्चरथ देवा... शुनां कपिरिव...* (अथर्व. ३-९-४)
१३. *इडयास्पदं घृतवत् सरीसृपं जातवेद... अस्तु॥* (अथर्व. ३-१०-६)
१४. *प्रविशतं प्राणापान... शतम्।* (अथर्व. ३-११-५)
१५. *इहैव गाव एतनेहो..... संज्ञानमस्तुवः।* (अथर्व. ३-१४-४)
१६. *ये पन्थानो देवयाना..... क्रीत्वा धनमाहराणि।* (अथर्व. ३-१५-२)
१७. *सीरा युञ्जन्ति कवयो.... धीरादेवेषु सुम्नयौ* (अथर्व. ३-१७-१)
१८. *अयं ते योनिर्ऋत्वियो.... वर्धयारयिम्।* (अथर्व. ३-२०-१)
१९. *हिरण्यपार्णि सवितारमिन्द्रं..... शमयन्त्वग्निम्।* (अथर्व. ३-२१-८)
२०. *येन वेहद् बभूविथ... नि दध्मसि।* (अथर्व. ३-२३-१)
२१. *आते योनिं गर्भ एतु पुमान्... जायतांमपुत्रस्तेदशमास्यः।* (अथर्व. ३-२३-२)
२२. *शत हस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर.....।* (अथर्व. ३-२४-५)
२३. *शुचा विद्धा व्योषया... प्रियवादिन्यनुव्रता* (अथर्व. ३-२५-४)
२४. *प्राची दिगग्नि... दक्षिणा दिगिन्द्रो.... प्रतीची दिग्वरुणो.... उदीची दिक् सोमो... ध्रुवा दिग्विष्णु.... ऊर्ध्वादिग्बृहस्पति... मन्त्र* (अथर्व. ३-२७-१ से ६)
२५. *यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति... पुरुषान् पशुश्च।* (अथर्व. ३-२८-५)
२६. *यो ददाति शितिपादम... बलीयसे।* (अथर्व. ३-२९-३)
२७. *अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमना....* (अथर्व. ३-३०-२)
२८. *मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्.... वदत भद्रया* (अथर्व. ३-३०-२)
२९. *सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः........* (अथर्व. ३-३०-१)

चतुर्थ काण्ड

काण्ड परिचय :- चतुर्थ काण्ड में ८ अनुवाक, ४० सूक्त तथा ३२४ मन्त्र हैं। इस काण्ड में ब्रह्म की महिमा, बल की वृद्धि, विष दूर करने के उपाय, राज्याभिषेक, विघ्नों को दूर करने के उपाय, पुरुषार्थ, स्वास्थ्य रक्षा, वृष्टियज्ञ, ब्रह्म की प्राप्ति, राजा के लक्षण, राजा का धर्म, ब्रह्म की उपासना, विद्या की विशेषता, सूर्य और वायु के गुण, शत्रु का विनाश इत्यादि विषयों का वर्णन है।

ब्रह्म महिमा :- ब्रह्म की महिमा का वर्णन करते हुए उपदेश दिया गया है कि परमात्मा पृथिवी सूर्यादि का भी कारण अर्थात् सभी लोक लोकान्तरों का निर्माता है। परमेश्वर ने सूर्य, पृथिवी, मंगल, चन्द्रादि, ग्रह, उपग्रहों में गुरुत्वाकर्षण शक्ति प्रदान की है जिसके फलस्वरूप सभी ग्रह-उपग्रह ब्रह्माण्ड में व्यवस्थित रूप से गति कर रहे हैं[१]। परमात्मा इस संसार के बनने के (अग्रम्) पूर्व (पहले) भी विद्यमान था तथा जगत् के प्रलय के पश्चात् भी वह विद्यमान रहता है[२]। परमात्मा, शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेवाला है। उसके अनुशासन को सारा संसार स्वीकार करता हैं[३]। परमात्मा अपनी महिमा से इस जगत् का राजा है[४]। समुद्र, नदी, नाले, बड़े बड़े पहाड़ उस परमात्मा की महिमा का गान कर रहे हैं[५]। सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि सभी लोक लोकान्तर उस परमात्मा के (गर्भ) अन्दर समाये हुये हैं, वही पृथिवी और द्युलोक को धारण कर रहा है वह परमात्मा एक है[६]।

ओषधि और शल्य क्रिया :- मनुष्य को सदा प्रातःकाल सूर्योदय से पहले उठकर ईश्वर चिन्तन करना चाहिये, वेदों का स्वाध्याय करके, बलवर्धक ओषधियों (वृषा) को जानकर उनका सेवन करके अपने बल की वृद्धि करनी चाहिये और सुखी रहना चाहिये, यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है[७]। चिकित्सक को भी (शुष्मा ओषधिनाम्) बलवर्धक ओषधियों का सेवन करने के लिये मनुष्यों को उपदेश देना चाहिये जिससे मनुष्य का स्वास्थ्य उत्तम रहे (४-४-४)। मनुष्य अन्य ओषधियों और वनस्पतियों (वनस्पतीनाम्) का सेवन करके बल, सुख, ऐश्वर्य प्राप्त करता है (४-४-५)। मनुष्य को स्वस्थ रहते हुए शान्त चित्त होकर रात्री में शयन करना चाहिये (४-५-४) अर्थात् शान्त चित्त होने से मनुष्य को गहरी निद्रा (गाढ़ निद्रा) आती है, जिससे मनुष्य की थकान दूर हो जाती है और मनुष्य प्रातःकाल उठते ही कार्य करने के लिये सक्रिय हो जाता है। चिकित्सक को शल्य क्रिया का विशेषज्ञ भी होना चाहिये। जिससे मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट विष को शरीर से बाहर निकाल सके। इसका उपदेश सूक्त ६ और ७ में दिया गया है। चिकित्सक को निर्देश देते हुए वेद मन्त्र

में लिखा है कि शरीर के जिस भाग में विषैले बाण के द्वारा घाव हो गया हो तो बुद्धिमान् चिकित्सक सावधानी से विष को निकालकर विष से प्रभावित घायल व्यक्ति को स्वस्थ कर दे[८] ।

पुरुषार्थ और स्वास्थ्य का उपदेश :- सूक्त ८ में राज्याभिषेक का वर्णन करके नवें सूक्त में ब्रह्म के विषय में वर्णन किया है । परमात्मा संसार का रचयिता, पालन करनेवाला है । परमात्मा के उपकारों को स्मरण करके मनुष्य को सदा सत्प्रयत्न लोकोपकार मोक्षप्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये, यह उपदेश दिया हैं[९] । जो परमात्मा के आदेश का पालन करता है वह सुख प्राप्त करता है तथा जो दुष्कर्म करता है वह परमात्मा की व्यवस्था से कष्ट प्राप्त करता है, यह भी सन्देश दिया है[१०] । सूक्त दस में विघ्न बाधाओं को दूर करने के उपाय बताये गये हैं तथा सूक्त ग्यारह में पुरुषार्थ करने का उपदेश दिया गया है । उद्योगी और परिश्रमी व्यक्ति सब जगह परिश्रम करते हुए अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करके सुख को प्राप्त करें[११] । पुरुषार्थी व्यक्ति ही परमेश्वर के स्वरूप को जानकर उन्नति करता है (४-११-११) । सूक्त बारह में मनुष्य को स्वयं अपने दोषों को दूर करने का यत्न करना चाहिये यह उपदेश दिया है । मनुष्य अपने दोषों को जानकर उनको दूर करे, जैसे चिकित्सक दोषों(रोगों के कारण) को जानकर उन्हें दूर करके रोगी को स्वस्थ करता है वैसे ही मनुष्य स्वयं अपनी चिकित्सा करे[१२] । मनुष्य को शुद्ध वायु का सेवन से अपने स्वास्थ्य को ठीक रखना चाहिये यह उपदेश देते हुए शुद्ध (ओषधयुक्त) वायु की महत्ता का वर्णन किया गया है[१३] ।

वृष्टि यज्ञ :- ब्रह्म की प्राप्ति का उपदेश सूक्त चौदह में दिया गया है तथा सूक्त पन्द्रह में वृष्टि यज्ञ का विवेचन किया गया है । वर्षा के महत्त्व का वर्णन इस सूक्त में किया गया है। वर्षा से अन्न, फल, ओषधि, जलादि सभी की प्राप्ति होती है, प्राणियों का जीवन सुरक्षित रहता है। सूर्य अपनी किरणों के द्वारा जल को वाष्प के रूप में ऊपर खींचता है तथा अन्तरिक्ष से वापस जल को बरसा देता है । मनुष्य को वृष्टि विज्ञान को जानना चाहिये[१४] । वर्षा के लाभ का वर्णन करते हुए लिखा है कि वर्षा होने से मेंढ़कों में पुनःप्राण आ जाते हैं (४-१५-१२) वर्षा ऋतु में वर्षा होने पर मेंढ़क वर्षा से सन्तुष्ट होकर बोलने अर्थात् टर्र टर्र करने लगते हैं, वेदपाठी ब्राह्मण को वेदों का उच्चारण ठीक प्रकार से करना चाहिये[१५] । वर्षा होने पर वर्षा के जल में जिस प्रकार मेंढ़की तैरती रहती है उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी लोग ब्रह्मज्ञानरूपी विद्या के सागर में तैरते रहते हैं ब्रह्मविद्या के चिन्तन में लगे रहें । (४-१५-१४) सूक्त १६ में परमात्मा का वर्णन वरुण के रूप में करके उसकी सर्वव्यापकता का वर्णन किया गया है । सूक्त १७ में राजा की योग्यता और उसके गुणों का वर्णन विद्यमान है । सूक्त १८ और १९ में राजा के कर्तव्य अर्थात राजधर्म का उपदेश दिया है ।

ब्रह्म की उपासना :- परमात्मा सर्वज्ञ है, वह सूर्य पृथिवी अन्तरिक्षादि सभी लोक लोकान्तरों को यर्थाथता से देखता है, अर्थात् जो जैसा है परमात्मा वैसा ही उसको जानता है। इसलिये सब मनुष्यों को परमात्मा की सर्वज्ञता को ध्यान में रखकर दुष्कर्म (पाप) से बचना चाहिये और पुण्य कर्म को करना चाहिये (४-२०-१)। यह उपदेश देकर अगले मन्त्रों में उपासना की उपलब्धियों का वर्णन करते हुए उपदेश दिया है कि समाधि लगाने वाला योगी अपने हृदय में परमात्मा की सत्ता और महिमा का अनुभव करता है (४-२०-३)। मनुष्य की कुचेष्टाएं और बुरी वासनाएं साधना में उन्नति में बाधक होती हैं इसलिये इनको दूर करके मनुष्य को अपने लक्ष्य (मोक्ष) की ओर अग्रसर होना चाहिये (४-२०-६)। मन में विकार (दुर्विचार) आने पर मनुष्य कुकर्म करने लगता है इसलिये ईश्वर उपासना करते हुए अपने अशुभ विचारों को दूर करके अविद्यादि दोषों को छोड़कर मनुष्य को सुखी होना चाहिये (४-२०-९)। यह उपदेश दिया है।

सूक्त २१ में विद्या के क्या गुण हैं तथा विद्या से क्या प्राप्त होता है? यह उपदेश दिया है। सूक्त २२ में विजय प्राप्ति के उपाय बताये हैं। सूक्त २३ के सात मन्त्रों में **"नो मुञ्चत्वंहसः"** वाक्य का प्रयोग हुआ है जिसके द्वारा प्रार्थना की गयी है कि (नः) हमको (अंहसः) पाप से (मुञ्चतु) हटाओ मुक्त करो। यदि मनुष्य पाप कर्म नहीं करेगा, पाप से दूर हो जायेगा तो कष्ट से भी बच जायेगा क्योंकि पापी व्यक्ति ही कष्ट पाता है, दुःख भोगता है। यह परमात्मा की महिमा है कि पाप कर्म करनेवाला व्यक्ति उसके फल से कभी वंचित नहीं हो पाता क्योंकि परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। जो मनुष्य पुण्य कर्म करते हैं परमात्मा उन्हें सुख प्रदान करता है (४-२४-६)। परमात्मा शारीरिक और आत्मिक बल प्रदाता है उसकी उपासना करता हुआ मनुष्य सुख को प्राप्त करता है, पाप कर्म से परमात्मा उसे हटाता है (४-२४-७)।

सूर्य और वायु के गुण :- सूर्य और वायु के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि सूर्य और वायु के प्रभाव से जल पृथिवी से ऊपर आकाश में और आकाश से नीचे पृथिवी पर आता है। सूर्य और वायु के विषय में मनुष्य जितना अधिक ज्ञान प्राप्त करते हैं उतना ही अधिक सूर्य और वायु के गुणों के विषय में जानकारी प्राप्त करके उनसे लाभ उठा सकते हैं[२६]। वायु और सूर्य के ज्ञान से ही मनुष्य (सुशेवम्) सुख (रयिम्) धन (दक्षम्) बल और निरोगता प्राप्त करता है[२७]। सूर्य की किरणें जब शरीर पर पड़ती हैं और शुद्ध वायु का सेवन मनुष्य करता है तो शरीर से स्वस्थ और बलवान् रहता है और वह परिश्रम करके धन को प्राप्त करने में भी सफल होता है। सूर्य और पृथिवी के परस्पर आकर्षण के कारण अन्न, जलादि, वृक्ष, वनस्पति, प्राणियों का

जीवन आदि सभी सुरक्षित और व्यवस्थित रहते हैं[१८]। यदि पृथिवी सूर्य के थोड़ी पास में हो जाय तो सब कुछ जलकर नष्ट हो जायेगा, यदि सूर्य से थोड़ी दूर हो जाय तों सब कुछ बर्फ के समान हो जायेगा। यह परमेश्वर की ही महिमा है कि पृथिवी न तो अधिक दूर है न अधिक समीप है। मनुष्य को सूर्य और पृथिवी के गुण तथा परस्पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति के विषय में जानकारी करनी चाहिये यह उपदेश सूक्त २६ के मन्त्रों में दिया है। वायु की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है कि मनुष्य प्राण अपान व्यान आदि का सेवन करता हुआ प्राणायाम के द्वारा अपने बल को बढ़ावे तथा अपनी रक्षा करे[१९]। वायु के गुणों को जानकर मनुष्य सदा सुख पूर्वक रहे[२०]। प्राण, अपानादि प्राणों द्वारा ही शक्ति प्राप्त होती है[२१]।

सृष्टि रचयिता और आनन्द प्रदाता :- सूक्त २८ में परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हुए उसे सर्वद्रष्टा (सहस्राक्ष) कहा है वह सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है (४-२८-३)। परमात्मा दुष्टों का विनाश करनेवाला और सज्जनों का रक्षक है (४-२८-६)। जो मनुष्य प्राणायाम करते हैं, सत्कार्य करते हैं, अपने दोषों का त्याग करते हैं, वे सदा सुख पाते हैं (४-२९-१)। जो मनुष्य उद्योगी-परिश्रमी हैं वे सुखी रहते हैं (४-२९-६)। परमात्मा ही सबको अनुशासन में रखनेवाला है (४-३०-१)। परमात्मा सभी लोक लोकान्तरों को धारण करता है (४-३०-८)। सूक्त ३१-३२ में विजय प्राप्त करने का उपदेश है। मनुष्य पाप से दूर रहकर धन, विद्या, सुख, ऐश्वर्य प्राप्त करें (४-३३-१) यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है। जिस प्रकार मनुष्य नौका (नाव-जहाज) आदि से समुद्र को पार करता है वैसे ही ईश्वर की श्रद्धापूर्वक उपासना और पुरुषार्थ करके दुःखों के सागर को पार कर लेता है[२२]। सूक्त ३४ में ब्रह्म का उपदेश देते हुए लिखा है कि जो शुद्ध पवित्र और जितेन्द्रिय हैं वे ब्रह्म को प्राप्त करते हैं (४-३४-२)। उसी ने दिन और रात का काल चक्र बनाया है (४-३५-४)। मनुष्य परमात्मा की भक्ति करके आनन्द को प्राप्त करे यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है[२३]।

राजधर्म और पुरुषार्थ :- राजा का क्या कर्तव्य है ? इसका उपदेश देते हुए लिखा है कि रात्री में सिंह आदि हिंसक पशु मनुष्य को खा न जाय ऐसा प्रबन्ध राजा करे[२४]। राजा दुष्टों को दण्ड देकर सज्जनों की रक्षा करे (४-३६-१०)। सूक्त ३७ में विविध ओषधियों के गुणधर्मों का उल्लेख किया गया है। सूक्त ३८-३९ में परमेश्वर के गुणों का वर्णन है। परमात्मा न्यायस्वरूप है (४-३८-४)। परमात्मा अपनी शक्ति से सर्वत्र व्याप्त है, वैसे ही अग्नि (भौतिक) विद्या के द्वारा पृथिवी के पदार्थों से विविध कला कौशल सिद्ध करके मनुष्य सफलता प्राप्त करें (४-३९-२)।

मनुष्य को चन्द्रमा के गुणों से लाभ उठाना चाहिये (४-३९-७)। मनुष्य पुरुषार्थ करके अपने (आन्तरिक या शारीरीक) शत्रुओं को समाप्त करे। परमात्मा की भक्ति करके आन्तरिक शत्रु राग, द्वेष, ईर्ष्या, अहंकार आदि को नष्ट कर दे यह उपदेश दिया गया है[२५]। जो दुश्मन हमारे दायें-बायें, आगे-पीछे आदि किसी भी ओर से आक्रमण करे उन्हें हम नष्ट कर दें, ऐसी सतर्कता और सावधानी रखें तथा अपनी सुरक्षा का पूरा ध्यान रखें (४-४०-२)। यह उपदेश इस मन्त्र में दिया गया है।

प्रमाण :

१. *स हि दिवः स पृथिव्या......पार्थिवं च रजः।* (अ. ४-१-४)
२. *नूनं तदस्य काव्यो हिनोति....विषिते ससन् नु।* (अ.४-१-६)
३. *आत्मदा बलदा ......हविषा विधेम।* (अ. ४-२-१)
४. *य प्रोणतो निमिषतो......।* (अ.४-२-२)
५. *यस्य विश्वे हिमवन्तो....कस्मै देवाय हविषाविधेम* (अ.४-२-५)
६. *हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे.....हविषा विधेम।* (अ.४-२-७)
७. *उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः।*
उदेजतु प्रजापति वृषा शुष्मेण वाजिना। (अ. ४-२-२)
८. *शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधे।*
अपाष्ठाद् श्रृंगात् कुल्मलान्निरवोचदमहं विषम्। (अ.४-६-५)
९. *उतासि परिपाण....हरित भेषजम्।* (४-९-३)
१०. *त्रयो दासा आंजनस्य ...नाम ते पिता।* (४-९-८)
११. *पद्भिः सेदिमवक्राम...चाभि गच्छतः।* (४-११-१०)
१२. *यत् ते शिष्टं यत् ते....संदधत् परुषापरुः।* (४-१२-२)
१३. *आ वात वाहि भेषजं..देवानां दूत ईयसे।* (४-१३-३)
१४. *अपामग्निस्तनूभिः....अमृतं दिवस्परि।* (४-१५-१०)
१५. *संवत्सरं राशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।*
वाचं पर्जन्य जिन्वतां प्रमण्डूका अवादिषु। (४१-५-१३)
१६. *ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि....अंहसः।* (४-२५-२)
१७. *रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू ....अंहसः।* (४-२५-५)
१८. *मन्वे वां द्यावा पृथिवी.... अंहसः।* (४-२६-१)
१९. *मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु....अंहसः।* (४-२७-१)
२०. *उत्समक्षितं व्यचन्ति...अंहसः।* (४-२७-२)
२१. *पयो धेनूनां रसभोषधीनां......अंहसः।* (४-२७-३)
२२. *स नः सिन्धुमिव नावाति.....अघम्।* (४-३३-८)
२३. *अव बाधे द्विषन्तं.....श्रद्दधानस्य देवाः।* (४-३५-७)
२४. *य आगरे मृगयन्ते....सहसा सहे।* (४-३६-१)
२५. *ये पुरस्ताज्जुह्वति....प्रतिसरेण हन्मि।* (४-४०-१)

पंचम काण्ड

काण्ड परिचय :- पाचवें काण्ड में ६ अनुवाक ३१ सूक्त ३७६ मन्त्र हैं। इस काण्ड में ब्रह्म विद्या, रक्षा के उपाय, राजधर्म, लाक्षा ओषधि, सुख प्राप्ति के उपाय, पुरुषार्थ, आत्मिक उन्नति, सर्प विष चिकित्सा, दोष निवारण, शत्रु विनाश, विघ्ननाश, ब्रह्मशक्ति, विजय की प्राप्ति, रोग दूर करने के उपाय, गर्भाधान विषयक ज्ञान, जन्तु नाश, ज्वर चिकित्सा, आदि विविध ओषधि विषयों का वर्णन है।

ब्रह्म और सप्त मर्यादा :- परमात्मा का वर्णन करते हुए उपदेश दिया है कि उसने सृष्टि की रचना की है, उसके सृष्टि विषयक नियम व्यवस्थित और अपरिवर्तनीय हैं, वह सभी के अन्दर विद्यमान है, अन्तर्यामी है, वह सभी को यथावत् जानता है[१]। परमेश्वर की कर्मफल व्यवस्था को ध्यान में रखकर ऋषि मुनियों ने मर्यादा का पालन करने का उपदेश दिया है। वेदों में सात मर्यादाओं का उल्लेख है[२]। उन सात मर्यादाओं का वर्णन करते हुए महर्षि यास्क ने निरुक्त ६-२७ में लिखा है कि चोरी, व्यभिचार, ब्रह्महत्या, भ्रूण(गर्भ) हत्या, सुरापान, दुष्कर्म का सेवन, पापकर्म हेतु झूठ बोलना, जो इन सातों में से किसी एक का भी आचरण करता है। तो वह मनुष्य (अहस्वान्) पापी होता है, पापी होकर मनुष्य दुःख भोगता है तथा इनको छोड़कर सत्कर्म करनेवाला मनुष्य सुख प्राप्त करता है। परमात्मा की व्यवस्था और गुणों को जानकर मनुष्य को अपना बल बढ़ाना चाहिये[३]।

सुख एवं रोगनाश के उपाय :- मनुष्य पुरुषार्थ करके सूर्य, अग्नि, वायु आदि पदार्थों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके, उनसे यथोचित लाभ उठावे। भौतिक उन्नति करके सुख को प्राप्त करे[४]। शिल्प आदि विविध कार्यों के द्वारा धन को प्राप्त कर, रोग एवं दुःख से रहित होकर शरीर से स्वस्थ बलवान रहते हुए अपनी सन्तान को भी योग्य बनावे, यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है[५]। जो मनुष्य परमात्मा की उपासना करके परिश्रम पूर्वक अन्नादि प्राप्त करते हैं वे सदा प्रसन्न रहते हैं तथा कभी दुःखी नहीं होते हैं। परमेश्वर की महिमा को जानकर विद्वानों का सत्संग करके सब पदार्थों से लाभ उठाते हुए सुखी रहना चाहिये यह उपदेश भी दिया है[७]। परमात्मा रोगनाशक साधनों ओषधियों में सबसे अधिक बलवान् ओषध (विरुधाँ बलवत्तमः) है तक्म अर्थात् ज्वर का नाश करने वाला है(५-४-१) राजकीय व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये जिससे राज्य की प्रजा (अगदम्) शारीरिक और मानसिक रोगों से रहित हो, राजा इन दोनों प्रकार के रोगों को दूर करे[८]। पाचवें सूक्त में पं. जयदेवजी विद्यालंकार के अनुसार सिलाची (लाक्षा) नाम की ओषधि का वर्णन करते हुए लिखा है कि जो इसका पान करता (यःत्वापिबति) है वह (जीवति) दीर्घकाल तक लम्बे समय तक जीवित रहता

है। यह ओषधि मनुष्य की मृत्यु से रक्षा करती है, यह मनुष्यों का भरण पोषण करनेवाली तथा (नि अञ्चनी) रोगों को दबानेवाली है[९]। सिलाची नाम की ओषधि रात्री में बढ़ती है (रात्री माता) रोगियों को सुख देने में सहायक (स्वसा) है (५-५-१) यह उल्लेख इस मन्त्र में किया गया है।

स्वार्थ और दरिद्रता :- सूक्त ६ में सुख के उपायों का वर्णन किया गया है। परमात्मा ने सभी प्राणियों के कल्याण के लिये अन्नादि पदार्थ तथा समस्त पदार्थों के भण्डार पृथिवी आकाशादि की रचना की[१०]। मनुष्य को संसार का कल्याण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषों का अनुकरण करके दुष्ट कर्मों का परित्याग कर देना चाहिये (५-६-२)। क्योंकि परमात्मा दुष्ट कर्म करनेवालों को (पदे-पदे) सब स्थानों पर सदा दण्ड देता हैं (५-६-३)। परमात्मा ने अधर्म का आचरण करने वालों को (अव आरात्सीः) निर्धन बनाया है। अतः राजा का कर्तव्य है कि धर्मात्माओं को सुख देता रहे और स्वयं भी धर्म का आचरण करे (५-६-६)। यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है। सातवें सूक्त में (अ राते) अर्थात् दूसरों को सहायता न देनेवाली स्वार्थ तथा कंजूसी की भावना न रखने का उपदेश दिया है (५-७-१ पं. जयदेवजी का भाष्य) जो मनुष्य परमेश्वर में श्रद्धा रखकर परिश्रम करता है वह अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सफल होता है[११]। मनुष्य को अपनी निर्धनता दरिद्रता को दूर करने का सदा प्रयत्न करना चाहिये[१२]। निर्धनता के कारण मनुष्य लज्जित होता है यह उल्लेख भी (५-७-८ में) किया गया है। राजा विविध ज्ञान विज्ञान के द्वारा प्रजा के दुःखों को दूर करने का यत्न करे (५-८-१)। जो लोग प्रजा की हानि करते हैं राजा उन्हें दण्ड देकर प्रजा की रक्षा करें (५-८-६)। जो माता पिता उत्तम हों तथा सन्तान को अच्छे संस्कार देते हैं तो माता पिता के दिये हुए उत्तम संस्कारों के द्वारा उत्तम तथा विविध विद्याओं (ज्ञान विज्ञान) और पुरुषार्थ के द्वारा मनुष्य संसार में सुख प्राप्त करते हैं[१३]।

ब्रह्म साधक :- परमात्मा सभी दिशाओं में अर्थात् सर्वव्यापक है पाप कर्म करने वालों को दण्ड देकर सज्जनों की रक्षा करता है यह उपदेश दसवें सूक्त में दिया है। धैर्यशाली विद्वान् जब आध्यात्मिक पथ पर चलते हैं तो मूर्ख व्यक्ति उनके मार्ग में बाधा नहीं डाल सकते हैं उसके व्रत (न व्रतम्) दृढ़ निश्चय को अनार्य लोग बदल नहीं सकते हैं[१४]। ईश्वर की उपासना करनेवाले साधक को जो आत्मिक बल प्राप्त होता है वह अन्य व्यक्ति को नहीं प्राप्त होता है (५-११-४)। जो मनुष्य धर्मात्मा होता है उसके कुल का गौरव बढ़ता है और ऐसा धर्मात्मा पुरुष संसार का उपकार करता है। यह संकेत इस मन्त्र में किया है[१५]। मनुष्य को दिन रात (उषासानक्ता) परिश्रम करके विद्या और धन को प्राप्त करना चाहिये यह उपदेश भी इस मन्त्र में दिया है[१६]।

सर्पविष चिकित्सा:- सर्पविष चिकित्सा का वर्णन तेरहवें सूक्त में किया गया है। इस चिकित्सा का चिकित्सक रोगी से कहता है कि तेरे शरीर में प्रविष्ट विष को (विषं निरिणाति) निकालता हूँ, दूर करता हूँ। जिस प्रकार मरुस्थलः (रेगिस्तान) में जल नष्ट हो जाता है वैसे ही उपचार से शरीर में प्रविष्ट हुए विष को नष्ट करता हूँ[१७]। जल से रहित (अपः उदकम्) रक्त को सुखाने वाली नस नाड़ियों में प्रविष्ट विष को पकड़ कर उसको भी वश में कर लूं अर्थात् उसे भी नष्ट कर डालूँ यह सन्देश एक चिकित्सक के द्वारा रोगी को वेद मन्त्र (५-१३-२) में दिया गया है। हे (अहे) सर्प ! मैं विष के बल से तेरे विष को नष्ट करता हूँ। (विषेण ते विषम् हन्मि) तू मर जा (म्रियस्व) अब तू जीवित (मा जीवीः) नहीं रह सकता है[१८]।

हिंसक प्राणियों को मारने का निर्देश देते हुए लिखा है कि जो जीवों को पीड़ा देते हैं उनको (यातु धानान्) मार डालो (अव जहि) अर्थात् उन्हें नष्ट कर देना चाहिये[१९]। जो कोई पुरुष या स्त्री पाप कर्म करते हैं या दूसरों को कष्ट देते हैं उनको भी दण्ड देना चाहिये (५-१४-६)। मनुष्य के जीवन में विविध प्रकार के विघ्न आते हैं उनको दूर करने का आदेश पन्द्रहवें सूक्त में दिया है। इसके पश्चात् अगले सूक्त में पुरुषार्थ करने का उल्लेख किया है।

ब्रह्म विद्या :- ब्रह्म द्वारा प्रदत्त ज्ञान (वेद विद्या) के द्वारा सृष्टि के पदार्थों को जानकर मनुष्य सुख को प्राप्त करे (५-१७-१)। जो लोग ब्रह्म(वेद विद्या) का आदर करते हैं वे सुख को प्राप्त करतें हैं, अर्थात् वेदों को पढ़कर उनके अनुसार आचरण करने से मनुष्य सुख प्राप्त करता है[२०]। वेदों के पठन पाठन की परम्परा के नष्ट होने के कारण रोग, पारिवारिक कष्ट, गर्भपात (गर्भाः अवपद्यन्ते), राज्य में विद्रोहादि फैलते हैं[२१]। वेद विद्या के विना खेती व्यापारादि कार्य राष्ट्र में अच्छी तरह से नहीं हो सकते हैं (५-१७-१६) जिस देश में ब्राह्मण विद्याभ्यास नहीं करते हैं उस राष्ट्र में गाय बैलादि बलवान् पशुओं का अभाव हो जाता है (५-१७-१८)।

विद्वानों की वाणी (ब्रह्मगवी):- सूक्त १८-१९ में ब्रह्मगवी अर्थात् ब्राह्मण की गौ (वाणी) के विषय में वर्णन है। ब्राह्मण अर्थात् वेदों के विद्वान् की गौ (वाणी) के अनुसार जो राजा आचरण करता है उसके राज्य में सुख शान्ति रहती है (५-१८-१)। वेदविद्या के अनुसार आचरण न करने के कारण अजितेन्द्रिय होकर मनुष्य कष्ट प्राप्त करता है (५-१८-२)। जो व्यक्ति वेदों के विद्वान् पर अत्याचार करता है वह व्यक्ति अनेक आपत्तियों (कष्टों) से घिर जाता है[२२]। दुष्टात्मा व्यक्ति कितनी भी उन्नति कर ले किन्तु अंत में धर्मात्मा व्यक्ति से वह पराजित ही होता है (५-१९-१)। जिस राष्ट्र में वेद विद्या का निरादर होता है वह राष्ट्र नष्ट हो जाता है (५-

१९-४)। जो व्यक्ति ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन करता है वह दण्डित होकर सदा रोता रहता है (५-१९-१३)। संग्राम में विजय प्राप्त करने का उपदेश सूक्त २०-२१ में दिया है।

ज्वर चिकित्सा :- सूक्त २२ में ज्वर (रोग) चिकित्सा रोग कारक जन्तुओं को नष्ट करने के उपायों का वर्णन है। ज्वर का वर्णन करते हुए दूसरे मन्त्र की व्याख्या करते हुए पं. जयदेवजी विद्यालंकार ने लिखा है कि ज्वर (तक्मन्) मनुष्य को अग्नि के समान तपा तपा कर कष्ट देता है और रोगी को पीला कर देता है (हरितान् कृणोषि) इसलिये हे ज्वर (तक्मन्) अब तू (अरस) रसहीन बलहीन हो अर्थात् उतर जा, रोगी को मुक्त कर दे[२३]। यह सन्देश चिकित्सक रोगी की चिकित्सा करते हुए देता है। ओषधियों के द्वारा चिकित्सक ज्वर को दूर भगा दे (५-२२-३)। वर्षा ऋतु में (महावृषाः) ज्वर का आक्रमण अधिक होता है (५-२२-४)। ज्वर की समय पर उचित चिकित्सा न की जाये तो सर्प के विष के समान शरीर में फैलकर शरीर को विकृत कर देता है, विषम ज्वर से रोगी आक्रान्त हो जाता है इसलिये जिस कारण से ज्वर आता है अर्थात् ज्वर के कारण (कृमि कीटाणुओं) को नष्ट कर देना चाहिये (३-२३-५) यह उपदेश दिया है[२४]। मनुष्य को अपनी रक्षा के लिये सदा प्रयत्न करना चाहिये यह उपदेश सूक्त २४ में दिया है।

गर्भाधान :- वेदों में सभी विद्याएं हैं सन्तान का जन्म कैसे होता है? गर्भ को धारण करना, कितने समय तक गर्भ में सन्तान का रहना ? इसका विवेचन सूक्त २५ में किया गया है। इस विषयक उपदेश देते हुए इस वेद मन्त्र में लिखा है कि जैसे विशाल पृथिवी अपने गर्भ में समस्त प्राणियों को धारण करती है उसी प्रकार पत्नी गर्भ को धारण करती है। पत्नी को गर्भस्थ शिशु की रक्षा पृथिवी के समान धैर्य धारण करते हुए करनी चाहिये[२५]। पत्नी अन्नवाली (सिनीवाली) और ज्ञानशालिनी (सरस्वती) होनी चाहिये[२६]। अर्थात् शरीर से पुष्ट स्वस्थ अन्नादि खाद्य पदार्थों को अपने शरीर का हिस्सा बनानेवाली और पढ़ी लिखी सन्तान निर्माण की प्रक्रिया को जाननेवाली विदुषी होनी चाहिये यह निर्देश वेद मन्त्र में दिया है। दस (चान्द्र) मास पर्यंत शिशु गर्भ में रहता है यह सन्देश भी इस मन्त्र में दिया है (५-२५-१२)।

मनुष्य को पुरुषार्थ करके अपनी उन्नति के साथ साथ दूसरों की उन्नति के लिये प्रयास करना चाहिये (५-२६-७)। वेदों के ज्ञान के आधार पर सामाजिक उन्नति का प्रयत्न करना चाहिये (५-२६-१२)। सूक्त २७ में पुरुषार्थ करने का उपदेश दिया है। सूक्त २८ में रक्षा करने तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति और वृद्धि करने का निर्देश दिया है। सूक्त २९ में रोग नाश करने का उपदेश दिया है। चिकित्सक को रोगों को नष्ट करने

वाला तथा ओषधियों का निर्माण करनेवाला (भिषक् भेषजस्यादि कर्ता) (५-२९-१) लिखा है। जो कीटाणु मांस भोजी (पिशाचः) हैं जो भोजन में (कृमिरूप में) प्रविष्ट होकर हमारे शरीर को हानि करते हैं ऐसे समस्त जन्तु (कीटाणु) नष्ट हो जायं[२७]। इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गयी है। सूक्त ३० में आरोग्य और सुख की प्राप्ति, आत्मिक उन्नति का उपदेश दिया गया है। जिस प्रकार वैद्य यक्ष्मा ज्वर और हृदय रोग को दूर करता है उसी प्रकार वेदों के ज्ञान के द्वारा मनुष्य अपने दोषों को त्यागकर सुखी होवे[२८]। यह उपदेश दिया है।

सूक्त ३१ में कृत्या अर्थात् गुप्त हिंसा के प्रयोग करने वालों का दमन करना चाहिये। राजा का क्या कर्तव्य है ? यह उपदेश दिया गया है। जिस आपत्तिजनक कार्य को तेरे शत्रु कच्चे बर्तनों में प्रयोग करते हैं और जिस दुष्प्रयोग से मिले हुए अन्न में कच्चे मांस में या फल के गूदे में प्रयोग कर दुःखी करते हैं उसी (तां) दुःख दायक प्रयोग (कृत्या) को मैं शत्रुओं के साथ करके उन्हें दण्डित कर दूँ[२९]। शत्रु जैसा दुष्प्रयोग करता है राजा उसका प्रतिकार करके शत्रुओं के साथ दण्ड के रूप में वैसा ही प्रयोग करे। राजा का कर्तव्य है कि दुष्कर्म करने वालों को दण्ड दे। अर्थात् जो हिंसा करता है(मूलीनं) विषैली जड़ों के आधार पर दूसरों की हत्या करता है राजा उसे कठोर दण्ड दे[३०]।

प्रमाण :-

१. *आ यो धर्माणि प्रथमः....चिकेत।* (अथर्व ५-१-२)
२. *सप्त मर्यादाः कवयस्तत क्षुस्तासाम्....धरुणेषु तस्थौ।* (अथर्व ५-१-६)
३. *इमा ब्रह्म ब्रहद्दिवः....तपस्वान्॥* (अथर्व ५-२-८)
४. *मम देवा विश्वे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो....कामायास्मै।* (अथर्व ५-३-३)
५. *मयि देवा द्रविणमा यजन्तां....तन्वा सुवीराः।* (अथर्व ५-३-५)
६. *उरुव्यचां नो महिषः...रीरिषो मा परा दाः।* (अथर्व ५-३-८)
७. *धाता विधाता भुवनस्य....यजमानं निर्ऋथात्।* (अथर्व ५-३-९)
८. *इमं में कुष्ठ पुरुषं तमा वह...अंगद कृधि।* (अथर्व५-४-६)
९. *यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम्।*
भर्त्री हि शश्वतामसि जनांना च न्यञ्चना। (अथर्व ५-५-२)
१०. *ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्...योनिमसतश्च वि वः।* (अथर्व ५-६-१)
११. *यं याचाम्यहं.....श्रद्धा तमद्य...सोमेन बभ्रुणा।* (अथर्व५-७-७)
१२. *परोऽपेह्य समृद्धे.....अराते।* (अथर्व५-७-७)
१३. *आयुष्कृदायुष्पत्नि ....मा मा हिंसिष्टम्।* (अथर्व५-९-८)
१४. *सत्यमहं गंभीरः....व्रतं भीमाय यदहं धरिष्ये।* (अथर्व ५-११-३)
१५. *समिद्धो अद्य मनुषो...कविरसि प्रचेताः।* (अथर्व५-१२-६)
१६. *आ सुष्वयन्ती यजते उपांक...शुक्रपिशं दधाने।* (अथर्व ५-१२-६)
१७. *ददिर्हि मह्यं.....जजास ते विषम्।* (अथर्व५-१३-१)(पं. जयदेव कृतभान)
१९. *अवजहि यातुधानानव कृत्या...जह्योषधे।* (अथर्व५-१३-४) (पं.जयदेव कृतभान)

२०. हस्तैनैव ग्राह्य अधिरस्या...गुपितं क्षत्रियस्य। (अथर्व५-१७-३)
२१. ये गर्भा अवपद्यन्ते...हिनस्ति तान्। (अथर्व ५-१७-७)
२२. शतापाष्ठां नि गिरति तां न....मन्यते। (अथर्व५-१८-७)
२३. अयं या विश्वान् हरितान्...वा परेहि। (अथर्व५-२२-२)
२४. ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिवाहवः।
ये के च विश्वरूपास्तान् क्रिमिन् जम्भयामसि। (अथर्व ५-२३-३)
२५. यथेयं पृथिवि मही भूतानां...अवसे हुवे। (अथर्व ५-२५-७)
२६. गर्भं धेहि सिनीवलि गर्भं धेहि सरस्वति। (अथर्व५-२५-३)
२७. आमे सुपक्वे ....यो मा पिशाचो..,अस्तु। (अथर्व५-२९-६)
२८. अंगभेदो अंगज्वरो यश्च ते हृदयामयः।
यक्ष्मः श्येन इन प्रापप्तद् वाचा साढ़ परस्तराम्। (अथर्व५-३०-९)
२९. यां ते चकुरामे पात्रे यां चकुर्मिश्रधान्ये।
आमे मां से कृत्यां यां चकुःपुनः प्रतिहरामिताम्। (अथर्व५-३१-१)
३०. कृत्याकृत्यं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम्।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधे केनाग्निर्विध्यत्वस्तया। (अथर्व५-३१-१२)

षष्ठ काण्ड

काण्ड परिचय :- छठे काण्ड में १३ अनुवाक १४२ सूक्त तथा ४५४ मन्त्र हैं। इस काण्ड में ऐश्वर्य की प्राप्ति, सबकी रक्षा के उपाय, धन और जीवन की वृद्धि, शत्रु का नाश, सुख और विद्या की प्राप्ति, गृहस्थ जीवन, स्वास्थ्य रक्षा, पाप दूर करने का उपदेश, मृत्यु की प्रबलता, रोग दूर करने के साधन, उत्तम गुणों की प्राप्ति, ब्रह्म का स्वरूप, गर्भाधान, गृहस्थ जीवन, ईर्ष्या निवारण, पवित्र आचरण, ब्रह्म के गुण, वृष्टि विद्या, कर्म करना, विद्वानों के गुण, विद्या के गुण, राक्षसों का विनाश, यश की प्राप्ति, आत्मिक उन्नति, क्रोध की शान्ति, मानसिक पाप की निवृत्ति, स्वप्नावस्था, प्रलय और सृष्टि विद्या आदि विविध विषयों का वर्णन है।

सुखी जीवन :- परमात्मा सत्य की प्रेरणा देनेवाला (सत्यस्य सूनुः) तथा अत्यन्त सुख (सुशेवम्) देनेवाला है उसकी स्तुति (स्तुहि) करनी चाहिये (६-१-२) परमात्मा की स्तुति करते हुए (पातु) बल प्राप्त करके अपने पारिवारिक जनों की रक्षा करनी चाहिये (६-४-१)। जो मनुष्य सभी का हित करता है परमात्मा की कृपा से वह उन्नति करता है (६-५-३)। मनुष्यों को वेद में निर्दिष्ट आदेशों का पालन करते हुए, सत्य का आचरण करना चाहिये तथा परस्पर एक दूसरे की रक्षा करनी चाहिये। जिस प्रकार सूर्यादि सभी लोक लोकान्तर एक दूसरे का आकर्षण करते हुए ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते हुए सभी प्राणियों का उपकार कर रहे हैं वैसे ही मनुष्यों को करना चाहिये[१]। परमात्मा अपनी सनातन वेदविद्या से सदा हमारी रक्षा कर रहा है[२]। विद्यार्थी को एकाग्र मन से वेद विद्या को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करना चाहिये (६-८-२)। जिस प्रकार सूर्य नियमित गति करता है समय पर उदय और अस्त होता है वैसे जो व्यक्ति नियमित रूप से परिश्रम करता है, नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। वह विद्या को प्राप्त करके सुखी रहता है (६-८-३)। जब पति-पत्नी आपस में प्रेमपूर्वक रहते हैं तब परिवार में सुख-शान्ति-दूध घृतादि सभी पदार्थ तथा ऐश्वर्य रहता है[३]।

श्रेष्ठ सन्तान-पुरुषार्थ और उन्नति :- सूक्त १० में स्वास्थ्य रक्षा का उपदेश दिया है। सन्तान प्राप्ति के विषय में उपदेश देते हुए लिखा है कि पति बलवान्-वीर्यवान् हो तथा पत्नी शान्त स्वभाववाली हो (६-११-१)। जब दोनों इन गुणों से सम्पन्न युवावस्था में सन्तान प्राप्त करते हैं तो वह सन्तान उत्तम होती है (६-११-२)। मृत्यु बहुत प्रबल होती है सभी उसके वश में होते हैं फिर भी रोगी की चिकित्सा करनी चाहिये (६-१३-३) तथा रोगों को दूर करने का सदा प्रयत्न करना चाहिये (सूक्त १४)। परमात्मा की महिमा को ध्यान में रखते हुए मनुष्य को पुरुषार्थ करना चाहिये

(६-१६-४) पृथिवी जैसे अपने गर्भ में (अपने अन्दर) बीज को धारण करके अन्न-वृक्ष-वनस्पति आदि को उत्पन्न करती है वैसे ही स्त्री को गर्भधारण कर योग्य और श्रेष्ठ सन्तान को जन्म देना चाहिये[४]। मनुष्य को दूसरों की उन्नति देखकर ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये अपितु दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। यह इस मन्त्र में उपदेश दिया है[५]। रोगनाश करने के उपाय (सूक्त २०) तथा ब्रह्म के गुणों का वर्णन (सूक्त २१ में) करके वृष्टिविद्या का उपदेश (सूक्त २२ में) दिया है। मनुष्य को वेदों में उपदिष्ट शुभ कर्मों को करते हुए अन्नादि सांसारिक पदार्थों को प्राप्त करना चाहिये[६]। श्रम करके ही मनुष्य उसका फल प्राप्त करे यह उपदेश दिया गया है। पुरुषार्थ से मनुष्य विघ्न-बाधाओं को दूर करके सुख प्राप्त करता है और उन्नति करता है (२६ सूक्त)।

यश की प्राप्ति :- विद्वानों के गुणों का निर्देश सूक्त २७ और २८ में देते हुए लिखा है कि विद्वान् संसार का उपकार करता है लोगों को सन्मार्ग पर ले जाता है (६-२८-३)। जहाँ विद्वान् अधिकारी होते हैं वहाँ मूर्खों और शत्रुओं के कर्म निष्फल हो जाते हैं[७]। जो राक्षस पिशाच अर्थात् रोगोत्पादक कीटाणु हैं या शत्रु हैं जो पीड़ा (कष्ट) देते हैं उनको नष्ट कर देने का उपदेश देते हुए लिखा है कि जो विद्वान् लोग परमेश्वर के गुणों को जानकर पुरुषार्थ करते हैं वे संसार में यश प्राप्त करके आनन्द प्राप्त करते हैं[८]। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए प्राणायाम और योगाभ्यास करता हुआ अपने आत्मिक बल को बढ़ाता है वह संसार का उपकार करके संसार में यश को प्राप्त करता है[९]। क्रोध से मनुष्य की बहुत हानि होती है इसलिये क्रोध को दूर करने के उपायों का उपदेश (सूक्त ४२-४३ में) दिया है। किसी कारण मनुष्य अस्वस्थ हो जाय तो उसके लिये परमात्मा ने (शतं भेषजानि) सैकड़ों ओषधियों का निर्माण किया है जो मनुष्य परमात्मा की आज्ञापालन करते हुए स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हैं वे स्वस्थ और सुखी रहते हैं यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है[१०]।

मानसिक पाप :- मनुष्य मानसिक रूप से पाप में पहले प्रवृत्त होता है शरीर से तो बाद में पाप कर्म करता है। लड़ाई-झगड़ा पहले मन में करता है बाद में बाह्य रूप में शरीर से करता है इसलिये वेद में पाप को मन से ही दूर करने की प्रार्थना की गयी है कि हे मानसिक पाप (मनस्पाप) दूर हो जा (परोऽपेहि) जिससे हमारा जीवन सुखी रहे[११]। जो मनुष्य सदा धर्म में प्रवृत्त रहते हैं उनके मन में स्वप्न में भी कु (पाप के) विचार नहीं आते हैं (६-५०-३) जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है वैसे ही विद्वानों को मनुष्यों के दोषों को दूर करना चाहिये[१२]।

सम्पत्ति की प्राप्ति :- सम्पत्ति की प्राप्ति व्यापार-पशुपालन कृषि आदि से होती है। इस विषय में सूक्त ५५ में उपदेश दिया है कि विविध यानों से दूर देशों में

गमनागमन करके, वाणिज्य कर्म करके, धन प्राप्ति का प्रयास करना चाहिये[१३]। वेदों में निर्दिष्ट वाणिज्य-शिल्पादि कर्म करके मनुष्य को धन ऐश्वर्य सुख सम्पदा प्राप्त करनी चाहिये यह उपदेश सूक्त ६२ में दिया है। मनुष्य को धन ऐश्वर्य के साथ मोक्ष प्राप्ति का भी यत्न करना चाहिये (सूक्त ६३)। सभी मनुष्यों को परस्पर मिलकर रहने का उपदेश सूक्त ६४ में दिया है[१४]।

मुण्डन और सुख सम्पदा :- सेनापति के लक्षणों का वर्णन (सूक्त ६५-६६-६७ में) करके बच्चे के जन्म के बालों को काटना चाहिये। मुण्डन करने से बालक की आयु दीर्घ होती है। बालक रोगरहित रहता है। यह उपदेश इस मंत्र में दिया है[१५]। आयु की वृद्धि के लिये विस्तृत उपदेश (सूक्त ७६ में) दिया है। जिस घर में स्त्री-पुरुष प्रसन्न रहते हुए, परस्पर सहयोग करते हुए, पुरुषार्थ करते हैं, वहाँ सब प्रकार की सम्पदा रहती है[१६]। परमात्मा की महिमा (सूक्त ८०) में विवाह संस्कार का उपदेश (सूक्त ८२ में), रोग दूर करने का उपदेश (सूक्त ८३ में), देकर पाप से दूर रहने का उपदेश देते हुए लिखा है कि पाप को छोड़कर मनुष्य को धर्म का आचरण करना चाहिये। परमात्मा पापियों को सदा दण्ड देता है, यह ध्यान में रखते हुए मनुष्य को पाप कर्म नहीं करना चाहिये[१७]। राज्याभिषेक का वर्णन (सूक्त ८६-८७-८८ में) किया गया है। मनुष्य को कर्म का फल प्राप्त होता है (सूक्त ९०)। मनुष्य को विद्वानों का सत्संग करके सत्कर्म करते हुए सुख प्राप्त करना चाहिये (सूक्त ९३)।

ओषधियों के गुण :- ओषधियों के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि ओषधियां (शत विचक्षणा) सैकड़ों गुणोंवाली (अंहसः) रोगों को नाश करनेवाली होती हैं[१८]। ओषधियों से विष दूर करके मनुष्यों का स्वस्थ किया जाता है (सूक्त १००)। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का सन्देश (सूक्त १०३-१०४ में) देते हुए लिखा है कि विविध अस्त्र शस्त्रों से आक्रमण करके शत्रुओं को पराजित करना चाहिये[१९]। जिस प्रकार अच्छा सधा हुआ तीक्ष्ण बाण आगे बढ़ता है उसी प्रकार मनुष्य को अपने जीवन को साधते हुए अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ना चाहिये[२०]। सुख और धन की प्राप्ति (सूक्त १०७-१०८ में), रोग नाश करने के उपाय का वर्णन करते हुए लिखा है कि पिप्पली ओषधि विशेष है, उसके सेवन से अनेक रोगों की निवृत्ति होती है (६-१०९-१)। कुल की रक्षा का उपदेश (सूक्त ११२ में) दिया है। विद्वानों का संग करने, सदाचार का पालन करने, वेदों में निर्दिष्ट उपदेशों के अनुसार कर्म करने से मनुष्य पाप कर्म से निवृत्त हो जाता है। यह सन्देश सूक्त ११३-११४-११५-११६ में दिया है।

ऋण से मुक्ति :- मनुष्य ज्ञानपूर्वक कर्म करता हुआ, पुरुषार्थपूर्वक माता-पिता-आचार्यादि की सेवा करके मनुष्य, ऋषि ऋण-देवऋण और पितृ ऋण से मुक्त

हो सकता है। अपने जीवन में सेवा करके, चारों आश्रमों का सेवन करके, प्रत्येक आश्रम में अपने कर्तव्य का पालन करके मनुष्य तीनों ऋणों से मुक्त हो सकता है[२१]।

परिवार में सुख :- पारिवारिक जीवन सुखमय कैसे रहता है? इसका उपदेश देते हुए लिखा है कि जिस घर में सभी सदस्य एक दूसरे के प्रति (सुहृदः) अच्छा हृदय-मन रखते हैं अर्थात् एक दूसरे के प्रति अच्छा सोचते हैं, सुकर्म (सुकृतः) करनेवाले होते हैं जो अपने शरीर को स्वस्थ रखते हैं, जिनके शरीर में शारीरिक अंगों की न्यूनाधिकता नहीं होती है, जिस घर में माता पितादि वयोवृद्धों की सेवा होती हैं और सन्तानों को संस्कारित करने की ओर ध्यान दिया जाता है उस घर में स्वर्ग जैसा सुख रहता है[२२]। जिस घर में स्त्रियों का जीवन (शुद्धाः पूताः यज्ञियाः) शुद्ध, पवित्र और यज्ञमय होता है उस घर में स्वर्ग जैसा सुख होता है। विद्वानों के सत्संग और योगाभ्यास करके, परमेश्वर का साक्षात्कार करके, मनुष्य आनन्द का अनुभव करता है (६-१२३-२)। सूक्त १२४ में आत्मा की शुद्धि का उपदेश दिया गया है।

सेना और सेनापति :- सेना और सेनापति के कर्तव्यों का उपदेश सूक्त १२५-१२६ में देकर वैद्य प्रकट और अप्रकट सभी रोगों को जानकर उनकी यथोचित चिकित्सा करे (६-१२७-२)। मनुष्य को बुद्धिपूर्वक उत्साह से अपने कार्य करते हुए विद्या और धन की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये (सूक्त १३१)

मेखला का महत्व :- ब्रह्मचारी को मेखला बांधनी चाहिये अर्थात् विद्याध्ययन के लिये हमेशा कमर कसकर तैय्यार रहना चाहिये। इसलिये मेखला के विषय में लिखा है कि जो मनुष्य मेखला से कटि (कमर) कसकर कर्म करते हैं वे वीर (बहादुर) होते हैं (६-१३३-२)। जो ब्रह्मचारी मेखला से कमर को कसकर रखते हैं वे सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्वों को सहन करते हुए आलस्य को हटाकर मृत्यु को भी हटा देते हैं और ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं[२४]।

अन्न और अन्नप्राशन :- मनुष्य को अपने खान-पान का भी ध्यान रखना चाहिये इस विषय में उपदेश देते हुए लिखा है जो मनुष्य आलस्य रहित होकर विचारपूर्वक भोजन करते हैं, वे बलवान् रहते हैं (६-१३५-३)। बालों के रोगों को दूर करनेवाली ओषधियों और बाल (केश) बढ़ाने के उपायों का उपदेश सूक्त १३६-१३७ में दिया है तथा उत्तम ओषधियों के द्वारा चिकित्सक बलहीन पुरुषों को बलवान् बनावें[२५]। विविध रोगों की चिकित्सा कुशल वैद्य कैसे करे? यह विवेचन सूक्त १३८ में किया है। जो स्त्री पुरुष पूर्ण विद्वान् होकर गृहस्थी बनते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं। इस प्रकार गृहस्थ जीवन के विषय में (१३९ सूक्त में) उपदेश दिया है। बच्चे का पेट जब माँ के दूध से नहीं भरता है, बच्चा भूखा रहने लगता है, उसके दांत निकलने

लगते हैं, तब उसका अन्न प्राशन संस्कार करना चाहिये (१४० सूक्त)। बालक को माता-पिता और आचार्य सद्गुणों से सम्पन्न करें। यह उपदेश सूक्त १४१ में दिया है।

अन्नोत्पादन :- अन्न का उत्पादन अधिक से अधिक कैसे हो ? किसान को किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिये, बीज-खाद-पानी आदि साधनों से अन्न का उत्पादन अधिक होता है, अन्न के व्यापार से किसान धनवान् होते हैं, पुष्टिकारक अन्न का भोजन करने से मनुष्य बलवान् होते हैं इत्यादि विषयो का उपदेश सूक्त-१४२ में दिया है।

प्रमाण :-

१. *येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः । तेना नोऽवसा गहि ॥* (अथर्व. ६-७-१)
२. *येन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयांसि नः । तेना नो अधि वोचत ॥* (अथर्व. ६-७-२)
३. *यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम् ।*
गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं वानयन्तु मे ॥ (अथर्व. ६-९-३)
४. *यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।*
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सुतुं संवितले ॥ (अथर्व. ६-१७-१)
५. *ईर्ष्याया ध्राजिंप्रथमस्या-निर्वापयामसि ॥* (अथर्व. ६-१८-१)
६. *देवस्य सवितुः सर्व कर्म कृण्वन्तु..... शिवाः ॥* (अथर्व. ६-२३-३)
७. *अमून् हेतिः पतत्रिणी.... पदमग्नौकृणोति ॥* (अथर्व. ६-२९-१)
८. *वैश्वानरोऽगिरसां........... द्युम्नं स्वर्यमत् ॥* (अथर्व. ६-३५-२)
९. *मा नो हासिषु ऋषयो.......... प्रतरं जीवसे नः ॥* (अथर्व. ६-४१-३)
१०. *शतं या भेषजानि........ वसिष्ठ रोगनाशनम् ॥* (अथर्व. ६-४४-२)
११. *परोऽपेहि मनस्पाप........ मे मनः ॥* (अथर्व. ६-४५-१)
१२. *उत् सूर्यो दिव एति..... विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥* (अथर्व. ६-५२-१)
१३. *ये पन्थानो बहवो देवयाना...... परिधत्तेह सर्वे ॥* (अथर्व. ६-५५-१)
१४. *समानो मन्त्रः समिति समानी.... ॥* (अथर्व. ६-६४-२)
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि व.... ॥ (अथर्व. ६-६४-३)
१५. *अदितिः श्मश्रु...... दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥* (अथर्व. ६-६८-२)
१६. *अभि वर्धतां पयसाभि..... स्तामनुपक्षितौ ॥* (अथर्व. ६-७-२)
१७. *एवो ष्वस्मिन्........ नमो अस्तु मृत्यवे ॥* (अथर्व. ६-८४-३)
१८. *या ओषधयः.......... मुञ्चन्त्वंहसः ॥* (अथर्व. ६-९६-१)
१९. *आदानेन सं दानेनामित्राना.... समच्छिदन् ॥* (अथर्व. ६-१०४-१)
२०. *यथा बाणः सुसंशितः..... अनु संवतम् ॥* (अथर्व. ६-१०५-२)
२१. *अनृणा अस्मिन्नृणः........ अनृणा आ क्षियेम ॥* (अथर्व. ६-११७-३)
२२. *यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति..... पितरौ च पुत्रान् ॥* (अथर्व. ६-१२०-३)
२३. *शुद्धाः पूताः योषितो यज्ञिया...... तन्मे ॥* (अथर्व. ६-१२२-५)
२४. *मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि..... मेखलयास्निामि ॥* (अथर्व. ६-१३३-३)
२५. *त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभि...... कृधि ॥* (अथर्व. ६-१३८-१)

सप्तम काण्ड

काण्ड परिचय :- सातवें काण्ड में दस अनुवाक, १८८ सूक्त तथा २८६ मन्त्र हैं। इस काण्ड में ब्रह्मविद्या, प्रकृति का स्वरूप, विद्वानों के गुण, आत्मा की उन्नति, परमेश्वर की उपासना, अन्न की रक्षा, राजा के कर्तव्य, गृहस्थ के कर्तव्य, दूरदर्शिता, मनुष्य के कर्तव्य, विज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्ति के उपाय, सर्वव्यापक (विष्णु) परमात्मा के गुण, यज्ञ, शुभ कार्य, परस्पर मित्रता, विवाह में प्रतिज्ञा, ईर्ष्या द्वेष का निवारण, स्त्रियों के गुण और कर्तव्य, एकता, वेदविद्या का ग्रहण, विष नाश के उपाय, वैद्य के कर्मों का उपदेश, सुख प्राप्ति के साधन, शारीरिक और मानसिक रोगों को दूर करने के उपाय इत्यादि विविध विषयों पर सारगर्भित उपदेश दिया है।

ब्रह्म विद्या :- ब्रह्म के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि परमात्मा सूर्य पृथिवी आदि सभी लोक लोकान्तरों में व्याप्त होकर सब को धारण कर रहा है[1]। जिन महर्षियों ने सर्व नियन्ता परमेश्वर के गुणों को जान लिया है वे उन गुणों का चिन्तन करते हुए आनन्द को प्राप्त करते हैं[2]। परमात्मा ने अपनी शक्ति से (स्वया तन्वा) विस्तृत सृष्टि को (तन्वम् ऐरयत) प्रकट किया है (७-३-१)। अर्थात् विशाल ब्रह्माण्ड की रचना की है। परमात्मा ने गणित विषयक संख्यावाचक शब्दों का भी ज्ञान दिया है[3]। परमात्मा ने प्रकृति से सृष्टि की रचना की है, प्रकृति सृष्टि का 'उपादान कारण' है, जैसे मिट्टी से घड़ा बनता है(मिट्टी घड़े का उपादान कारण है) वैसे ही प्रकृति से संसार बनता है, संसार को बनाने वाला परमात्मा है इसलिये प्रकृति 'उपादान' और परमात्मा 'सृष्टि' का निमित्त कारण हैं। प्रकृति को वेद मन्त्र में 'अदिति' कहा जो अखण्डित है इसी से सारा जगत् परमात्मा ने बनाया है[4]। परमात्मा हमारा (पूषा) भरण पोषण करने वाला है जो पुरुषार्थ करनेवाले व्यक्ति पर कृपा करके उसका भरण-पोषण-पालन करता है। (अ.७-९-४)

यशस्विता और प्रातःजागरण :- विद्वान् व्यक्ति वेदों का ज्ञान प्राप्त करके यशस्वी होता है (अथर्व ७-१०-१)। मनुष्य को ज्ञान प्राप्त करके ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि वह अतिवृष्टि और अनावृष्टि से प्रभावित न हो और अन्नादि खाद्य पदार्थ उसे उपलब्ध होते रहें और सुरक्षित रहें[5]। प्रातःकाल मनुष्य को सूर्य उदय होने से पहले उठ जाना चाहिये, इस विषयक उपदेश इस मन्त्र में देते हुए लिखा है कि जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर तारे निस्तेज हो जाते हैं वैसे ही सूर्योदय होने तक जो आलसी व्यक्ति सोता रहता है उसके तेज बल को सूर्य हरण कर लेता है अर्थात् उनका बल तेज पराक्रमादि गुण धीरे धीरे क्षीण हो जाते हैं[6]। जो मनुष्य विद्वानों की सेवा करते

हैं वे ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हुए आनन्द को प्राप्त करते हैं (७-१४-४)। गृहस्थ स्त्री-पुरुष को उपदेश देते हुए लिखा है कि गृहस्थ लोग परमेश्वर की उपासना, विद्वानों की संगति और उत्तम गुणों की प्राप्ति करके संसार में उन्नति करते हुए सुखों को प्राप्त करें[७]।

विद्वान् राजा और मन्त्री :- विद्वान् मनुष्य को दूरदर्शिता रखनी चाहिये और उसे ऐसे उपाय करने चाहियें कि जिनसे अतिवृष्टि का कष्ट मनुष्यों को भोगना न पड़े यह उपदेश सूक्त १८ में दिया है। जो मनुष्य प्रतिकूलता को त्याग देते हैं और अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, वे परमात्मा के कृपापात्र होते हैं[८]। यह उपदेश देकर आगे लिखा है कि पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाशादि पंच भूतों से बने हुए संसार में परमात्मा की महिमा को देखकर विद्वानों को विज्ञान और शिल्प आदि के द्वारा नये नये आविष्कार करके उन्नति करनी चाहिये[९]।

राजा और मन्त्री के गुणों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि जिस देश में राजा और मन्त्री बलवान् और धर्मात्मा होते हैं। उस राजा और मन्त्री का सम्मान उस देश की प्रजा सदा करती है (७-२५-१)। राजा को अपना राजप्रबन्ध ऐसा रखना चाहिये जिससे प्रजा की सारी सम्पत्ति सुरक्षित रहे (७-२५-२)।

विष्णु (सर्वव्यापक) के गुण :- परमात्मा (विष्णु) सर्वव्यापक है वही परमाणुओं को गति देकर सभी लोक लोकान्तरों को बनाता है, धारण करता है और प्रलय भी करता है[१०]। जैसे सिंह के पराक्रम को जंगली पशु जानते हैं वैसे ही पापियों को सर्वव्यापक परमात्मा भी दण्डव्यवस्था का ज्ञान है[११]। सर्वव्यापक परमात्मा के कर्मों (प्राणियों के कल्याण के लिये बनाये हुए संसार) को देखकर मनुष्य को उसके सत्कर्मों का अनुसरण करते हुए सेवा उपकार आदि कार्यों को करते हुए उसे प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये[१२]। परमात्मा के परम पद (स्वरूप) का बुद्धिमान् योगसाधना में संलग्न व्यक्ति सदा देखते अर्थात् अनुभव करते हैं। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश को नेत्रों से सांसारिक पदार्थों को सामान्यजन देखते हैं वैसे ही परमात्मा की सत्ता का अनुभव किया जाता है[१३]। इस सूक्त में परमात्मा को सर्वव्यापक तथा उसके गुणों का अत्युत्तम उपदेश दिया है।

वर वधू की प्रतिज्ञा :- सूर्य और विद्युत् के कारण मेघ (बादल) बनते हैं जिससे वर्षा होती है (७-२९)। इसका उपदेश देने के बाद मनुष्य को सत्कर्म करने का निर्देश (७-३०में) दिया है मनुष्य को आपस में प्रेमपूर्वक रहना चाहिये (७-३६-१) गृहस्थ में प्रवेश करते समय पति और पत्नी को पतिव्रत और पत्नीव्रत का पालन करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिये[१४]। अर्थात् पति और पत्नी को अपने जीवन साथी पति

या पत्नी के अलावा किसी भी अन्य स्त्री पुरुष विषयक विचार मन में नहीं लाना चाहिये। वेद बहू पत्नी प्रथा का सर्वथा निषेध करता है। वर वधू दोनों प्रतिज्ञा करें कि सदाचार का पालन करते हुए धर्म का आचरण करेंगे (७-३८-४)।

वैद्य तथा स्त्री के गुण :- वैद्य के गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जैसे वैद्य रोग के कारण को जानकर उसको दूर करके रोग को नष्ट कर देता है वैसे ही राजा भी प्रजा के दुःख का कारण जानकर प्रजा के दुःख को दूर करके प्रजा को सुखी करे[१५]। वैद्य के गुणों का वर्णन करके स्त्रियों के विषय में उपदेश दिया है कि जिस घर में प्रेमयुक्त व्यवहार करनेवाली सुशिक्षित, व्यवहार कुशल स्त्रियां रहती हैं उस घर में उत्तम सन्तान पैदा होती है[१६]। स्त्री के कर्तव्यों को उपदेश दिया है कि गुणवती समझदार स्त्री, गृहकार्य में परिमित व्यय करके धनवती होकर अपनी सन्तानों को उत्तम योग्य बनाना चाहिये (७-४७-१)। स्त्री को घर के सभी सदस्यों की देखभाल करनी चाहिये तथा व्यय परिमित (सन्तुलित) करना चाहिये (७-४७-२)। पत्नी घर को कैसे सुखी बनाती है ? इस विषय में लिखा है कि विदुषी, सुलक्षणा, विचारशील, प्रसन्नचित्त रहनेवाली पत्नी धन और सम्पत्ति की रक्षा करती हुई पति प्रिया होकर घर में सुख ऐश्वर्य की वृद्धि करती है[१७]। स्त्रियों को स्त्रियों की न्याय सभा की अधिकारिणी बनाकर घर के तथा बाहर के झगड़ों का निर्णय करना चाहिये (७-४९-२)।

मनुष्य का कर्तव्य :- मनुष्य के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए उपदेश दिया है जो चोर, लुटेरे या जुआरी हैं उनको दण्ड देकर समाप्त करना चाहियें (७-५०-१)। वे दुष्ट, विघ्नकारी होते हैं अतः उन्हें दण्ड देना चाहिये (७-५०-५)। जीवन के लिये जो हानिकारक पदार्थ हैं उनका सेवन नहीं करना चाहिये। शरीर की जठराग्नि को ठीक रखने वाले पदार्थों का सेवन करते हुए शरीर से स्वस्थ और बलवान् रहते हुए पूर्ण आयु का भोग करना चाहिये[१८]। वेदों का अनुसरण करते हुए शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करनी चाहिये (७-५५-१)।

विष और दोषों का नाश :- वैद्य को ओषधियों, जड़ी, बूटियों से सर्पादि विषैले प्राणियों के विष का नाश करना चाहिये, वैद्य के समान विद्वान् मनुष्य के मानसिक दोषों को दूर करे[१९]। उत्तम ओषधि से विष का नाश और ब्रह्म विद्या से आन्तरिक दोषों का नाश होता है (७-५६-२)। बिच्छु के विष को ओषधि से दूर करके विषैले जन्तु को भी मार देना चाहिये (७-५६-५)। बिच्छु के मुख में नहीं अपितु उसकी पूंछ में विष होता है (७-५६-८)। वैद्य अपामार्ग ओषधि से रोगों को दूर करता है वैसे ही विद्वान् मनुष्यों के आन्तरिक दोषों को दूर करें (७-६५-१)।

गृहस्थ को अतिथियों का स्वागत सत्कार (अतिथि यज्ञ) करना चाहिये[२०]। सत्कर्म करके लौकिक और पारलौकिक सुखों को मनुष्य प्राप्त करता है (७-६७-१)। जो

प्रजा को मन वचन कर्म से सताते हैं राजा उन शत्रुओं को दण्ड देकर प्रजा की रक्षा करे यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है (७-७०-१)। मनुष्य को सदा पुरुषार्थ करना चाहिये (७-७-२-२)। मनुष्यों को विद्वानों का सत्संग करके उनसे लाभ उठाना चाहिये यह उपदेश सूक्त ७ में दिया है। जिस प्रकार गाय थोड़ा घास खाकर और पानी पीकर दूध देती है वैसे ही मनुष्य को थोड़ा भोग का उपभोग करके लोगों का सदा उपकार करना चाहिये[२१]। सूक्त ७४ में शारीरिक और मानसिक रोगों को दूर करने के उपायों का वर्णन है। शूरवीर पुरुष दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों का पालन करे (७-७-७-२)। परमात्मा के गुणों का वर्णन सूक्त ८० में, सूर्य और चन्द्रमा के विषय में सूक्त ८१ में वर्णन किया गया है।

कुसंस्कार का प्रभाव :- मनुष्य को कुसंस्कारों को नष्ट करने के लिये सदा प्रयत्न करना चाहिये इस विषय में उपदेश देते हुए लिखा है कि जैसे विष में विष मिलाकर विष अधिक प्रचण्ड तेज हो जाता है उसी प्रकार असंस्कारित मन और इन्द्रियां थोड़े से कुसंग से और अधिक पाप की ओर से प्रवृत्त हो जाते हैं। अतः मन में थोड़े से अशुभ विचार के आने पर तुरन्त उसे समाप्त करने का यत्न करना चाहिये अन्यथा बड़े पाप कर्म की ओर मन प्रवृत्त हो जाता है[२२]।

काम क्रोधादि से हानि :- मनुष्य को विद्वानों के संग में रहकर शुद्ध आचरण करना चाहिये, अपने जीवन में उन्नति करते हुए तेजस्वी होना चाहिये (सूक्त ८९)। काम क्रोधादि दुर्गुणों के कारण मनुष्य बहुत दुःखी रहता है इसलिये उनको दूर करने का उपदेश देते हुए लिखा है कि जो स्त्री पुरुष काम क्रोध में फंस जाते हैं। वे पाप के बन्धनों में पड़कर शक्तिहीन हो जाते हैं, उनकी उन्नत्ति नहीं होती और वे कष्ट प्राप्त करते हैं[२३]। इसलिये काम, क्रोधादि को विद्या से शान्त करके प्रसन्न रहना चाहिये (७-९६-१) इसके पश्चात् अविद्या को दूर करने का उपदेश सूक्त १० में दिया है। पवित्र जीवन जीने का उपदेश (सूक्त१०५) दिया है। मनुष्य विद्वानों की संगति में रहकर सुसंगति, ब्रह्मचर्य का सेवन और उत्तम व्यवहार करके सुखी होवे, यह उपदेश दिया है। मनुष्य को इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सब प्रकार के दोषों से बचना चाहिये (७-११२-२)।

तृष्णा का विनाश :- मनुष्य के सत्कर्म और उन्नति में तृष्णा बाधक होती है। मनुष्य बूढ़ा हो जाता है किन्तु तृष्णा वासना कभी बूढ़ी नहीं होती है सदा जवान (युवा) बनी रहती है, (तृष्णैका तरुणायते भर्तृहरि) ऐसा भर्तृहरि ने लिखा है। वेद मन्त्र (७-११३-१) में तृष्णा को पीड़ा देनेवाली लिखा है। मनुष्य को इधर उधर भटकानेवाली तृष्णा को छोड़ देना चाहिये जिससे मनुष्य चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है[२५]। मनुष्य को पाप कर्म में प्रवृत्त कराने वाली (पापी लक्ष्मी) प्रवृतियों को दूर करना

चाहिये (७-११५-१)। ऐसा धन लक्ष्मी पतन की ओर (पतयालु) प्रवृत्त करने वाला हो उसका त्याग कर देना चाहिये (७-११५-२)।

मनुष्य अपने पूर्व जन्म के कर्मों के कारण शुभ अशुभ फल प्राप्त करने के लिये जन्म पाता है। जो मनुष्य परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करके अविद्यादि क्लेशों को दूर कर लेता है और उपासना करता है वह मोक्ष को प्राप्त करने में सफल होता है[२६]। ज्वरादि रोगों को दूर करना चाहिये (७-११६-२)। राजा प्रजा की रक्षा वैज्ञानिक उपकरणों (साधनों) से करे (७-११७-१)। सेनापति अपने अधिकारियों और योद्धाओं को उत्साहित करे जिससे सेना शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे[२७]। यह उपदेश इस काण्ड के अन्तिम सूक्त में दिया गया है।

प्रमाण :-

१. *स वेद पुत्रः पितरं स मातर....स आभवत्।* (अथर्व.७-१-२)
२. *अथर्वाणं पितरं देवबन्धुम्...तमिहेह ब्रवः।* (अथर्व.७-२-१)
३. *एकया च दशभिश्चा.....ता वि मुञ्च।* (अथर्व.७-४-१)
४. *अदिति र्द्यौ रदितिरन्तरिक्षम्....अदिति र्जनित्वम्।* (अथर्व.७-६-१)
५. *यस्ते पृथु स्तनयित्नु र्य....रश्मिभिः सूर्यस्य।* (अथर्व.७-११-१)
६. *यथा सूर्यो नक्षत्राणाम्....वर्च आ ददे।* (अथर्व.७-१३-१)
यावन्तोमा...उद्यन् सूर्य इवसुप्तानां...आ ददे। (अथर्व.७-१३-२)
७. *धाता विश्वा....देवा अदिति सजोषाः।* (अथर्व.७-१७-३)
८. *अनुमतिः सर्वमिदं...अनु हि मंससे नः।* (अथर्व.७-२०-६)
९. *अयं सहस्त्रमा नो दृशे कवी....विधर्मणि।* (अथर्व.७-२२-१)
१०. *विष्णो र्नु कंप्रा वोचं वीर्याणि..उरुगाय।* (अथर्व.७-२६-१)
११. *प्रतद् विष्णु स्तवते..जगम्यात् परस्याः।* (अथर्व.७-२६-२)
१२. *विष्णोः कर्माणि पश्यत...युज्यःसखा।* (अथर्व.७-२६-६)
१३. *तद् विष्णोःपरमं पदं सदापश्यन्तिसूरय।* (अथर्व.७-२६-७)
१४. *अभि त्वा मनुजातेन....नान्यासां कीर्तयाश्चन।* (अथर्व.७-३७-१)
१५. *सोमा रुद्रा वि वृहतं...प्रमुमुक्तमस्मत्।* (अथर्व.७-४२-१)
१६. *सिनीवालि पृथुष्टके...देवि...नः।* (अथर्व.७-४६-१)
१७. *यास्ते राके सुमतयःसुपेशसे..सुभगे रराणा।* (अथर्व.७-४८-२)
१८. *आयु र्यत् ते अतिहितं:..वेशयामि ते।* (अथर्व.७-५३-३)
१९. *तिरश्चिराजे रसितात्...वीरुदनीनशत्।* (अथर्व.७-५६-१)
२०. *इमे गृहा मयोभुव...जानन्तवायतः।* (अथर्व.७-६०-२)
२१. *सू यवसाद भगवती...उदकमा चरन्ती।* (अथर्व.७-७३-११)
२२. *अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि...तं जहि।* (अथर्व.७-८८-१)
२३. *अतोदिनौ नितोदिना...स्त्री पुमान् जभिरे।* (अथर्व.७-९५-३)
२४. *देवान् यन्नाथितो...त्वीहशे।* (अथर्व.७-१०९-७)
२५. *तृष्टासि तृष्टिका विषा...वशेव।* (अथर्व.७-११३-२)
२६. *एक शतं लक्ष्म्यो...जातवेदो नि यच्छ।* (अथर्व.७-११५-२)
२७. *मर्माणि ते वर्मणा छादयामि....देवामदन्तु।* (अथर्व.७-११८-१)

अष्टम काण्ड

अष्टम काण्ड में पांच अनुवाक दस सूक्त तथा २९३ मन्त्र हैं। इस काण्ड में मनुष्य के कर्तव्य, कल्याण की प्राप्ति का उपदेश, राजा के कर्तव्य, राजा और मन्त्री का उत्तरदायित्व, हिंसा को समाप्त करने का निर्देश, गर्भ रक्षा के उपाय, रोग विनाश के उपाय, शत्रु का विनाश, ब्रह्म के गुण-कर्म-स्वभावादि विषयों का वर्णन इस काण्ड में किया गया है।

मनुष्य के कर्तव्य :- मनुष्य को परमात्मा के गुणों का चिन्तन करते हुए अपने मन-इन्द्रिय-प्राण शरीरादि से ऐसे कर्म करने चाहियें कि जन्म और मृत्यु के बन्धन से छुट जाये[१]। जो मनुष्य पुरुषार्थ करता है उसको जल-वायु आदि पदार्थ सुख देते हैं अर्थात् इन भौतिक पदार्थों का सदुपयोग करके वह उन्नति करके सुखी रहता है[२]। वेद मन्त्र में यह भी सन्देश दिया गया है कि हे मनुष्य ! तुझे परिश्रम करके (उद्यानम्) सदा उन्नति करनी चाहिये, तेरे कदम उन्नति की ओर हों, अवनति (पतन) की ओर न हों[३]। मनुष्य को अधर्म का आचरण नहीं करना चाहिये (८-१-१०)। मनुष्य सूर्य पृथिवी आदि के विषय में गम्भीर ज्ञान प्राप्त करके अन्नादि खाद्य पदार्थों को तथा रोगनाशक ओषधियों को प्राप्त करके स्वस्थ और सुखी रहे (८-१-१७)।

सात्विकता :- सत्वगुण की प्रबलता के कारण मनुष्य सत्यासत्य का ज्ञान प्राप्त करके संसार की यथार्थता का अनुभव करके, सात्विक जीवन व्यतीत करता है इसलिये रजोगुण और तमोगुण उसे प्रभावित न करें यह उपदेश दिया है[४]। मनुष्य को जीवनदायिनी (जीवलाम्) अर्थात् जीवन को सुरक्षित रखनेवाली ओषधियों का सेवन करके स्वस्थ रहना चाहियें[५] तथा पूर्ण साहस के साथ शारीरिक आत्मिक बल से विघ्नों को हटाकर यशस्वी होना चाहिये (८-२-७)। सामान्य जन मृत्यु से नहीं बचते हैं किन्तु ब्रह्मज्ञानी योगी मृत्यु के बन्धन से बच जाते हैं[६]। मनुष्य को हिंसक रोगों, रोग जन्तुओं (क्रव्यादः पिशाचान्) से सुरक्षित रहकर सुखी रहना चाहिये (८-२-१२)। सात्विक जीवन के लिये मनुष्य का भोजन भी सात्विक होना चाहिये, सात्विक भोजन के विषय में लिखा है कि चावल और जौ (व्रीहियवौ) सात्विक मंगलकारक (शिवौ) शक्तिदायक, बल को बढ़ानेवाले (अबलासौ) प्रसन्नता प्रदान करनेवाले (अदोमद्यौ) तथा राजयक्ष्मा (यक्ष्मम्) तपेदिक (टी.बी.) आदि रोग को नष्ट करनेवाले हैं ये दोनों (अंहसः) कष्ट से छुड़ाते है[७]। जो मनुष्य खाद्यपदार्थों के गुण दोषों का विचार करके भोजन करते हैं वे स्वस्थ रहते हैं (८-२-१९)।

सृष्टि काल :- सृष्टि का काल कितना है ? कितने वर्ष तक सृष्टि और कितने वर्ष का प्रलय काल होता है ? इसको स्पष्ट करते हुए वेदमन्त्र में लिखा है कि चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष सृष्टि का और इतना ही प्रलय का समय होता है। इसे कलि, द्वापर, त्रेता और सत्युग इन चार भागों में विभक्त किया है। चार लाख बत्तीस हजार वर्ष कलियुग, इसका दो गुना अर्थात् आठ लाख चौसठ हजार वर्ष द्वापर का तथा कलियुग का तीन गुना अर्थात् बारह लाख छियान्नवे हजार त्रेता युग का तथा कलि का चार गुना सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्ष सत्युग का होता है। चार युगों का समय तेतालीस लाख बीस हजार वर्ष होता है जिसे एक चतुर्युगी का काल कहते हैं ऐसे एक हजार चतुर्युगी का एक सृष्टि काल अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होता है यह विस्तृत विवेचन पं. क्षेमकरणजी त्रिवेदी ने अपने भाष्य में मन्त्र की व्याख्या करते हुए लिखा है[८]। ब्रह्म ज्ञानी मनुष्य मृत्यु से भयभीत नहीं होते हैं (८-२-२३)।

राजकीय व्यवस्था :- जो राजा अपने राज्य में प्रजा के धन की रक्षा करता है, राष्ट्र को शक्तिशाली बनाता है ऐसे राष्ट्र की प्रजा को शत्रु कष्ट नहीं दे सकते हैं,[९] शक्तिशाली राजा झूठ बोलनेवालों को, चोर और डाकुओं को दण्ड देकर नष्ट कर दे जिससे प्रजा सुखी रहे[१०]। जो मनुष्य-गाय-घोड़े आदि का मांस खाता है, गायों को मारकर गोदुग्ध की मात्रा कम (न्यून) करता है ऐसें व्यक्तियों का सिर कटवा (शीर्षाणि वृश्च) कर राजा मार डाले (८-३-१५)। जो राजा प्रजा की रक्षा और शत्रुओं का नाश करता है उसकी कीर्ति चारों ओर फैलती है। यह सन्देश वेद के इस मन्त्र में दिया है[११]। राजा को शस्त्रास्त्रों का निर्माण करवाना चाहिये जिनसे आकाश, भूमि, पहाड़ादि से शत्रु को मारा जा सके[१२]। राजा दुष्टों को कारागृह (जेल) में रखे (८-४-१३)। जो छली, कपटी, दुष्ट व्यक्ति धर्मात्मा व्यक्तियों को अधार्मिक या पापी बतावे, राजा ऐसे छली कपटी व्यक्तियों को कठोर दण्ड देवे जिससे प्रजा धर्म का आचरण करती रहे (८-४-१६)।

छली कपटी को दण्ड :- जो वीर शिरोमणि पुरुष होते हैं वे वैदिक नियमों का पालन करते हुए विघ्नों को हटाकर आगे बढ़ते हैं[१३]। वेदानुगामी पुरुष ही शत्रुओं को वश में करके सबकी रक्षा करता है (८-५-४)। जो संयमी पुरुषों के समान जितेन्द्रिय होते हैं वे यशस्वी होकर अपने कार्य को निर्विघ्न सम्पन्न करते हैं (८-५-७)। जिन हिंसाओं (कृत्यों) को दूसरे उपद्रवी मनुष्य करते हैं, उन सब हिंसाओं को मनुष्य अपने ज्ञान और प्रयत्न से दूर कर दे[१४]। जो पाखण्डी मनुष्य उपद्रव या छल कपट से मारना (कृत्या) चाहे, राजा उसको मार कर, प्रजा की रक्षा करे। यह उपदेश प्रस्तुत मन्त्र में दिया है[१५]।

गर्भरक्षा का उपदेश :- इस काण्ड के छठे सूक्त में उपदेश दिया गया है कि गर्भिणी स्त्री के स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखना चाहिये जिससे गर्भस्थ शिशु स्वस्थ और सुरक्षित रहे । वैद्य गर्भिणी स्त्री के लिये ऐसी उत्तम ओषधि बनाकर उसे खिलावे कि उसको कोई भी कठिन रोग न हो सके[१६] । उत्तम ओषधि के सेवन से ही गर्भ रक्षा का उपदेश नहीं दिया गया अपितु यज्ञ करके उसमें विविध ओषधियों के प्रयोग से रोग कीटाणुओं को नष्ट करके गर्भिणी स्त्री और गर्भस्थ शिशु की रक्षा करने का उपदेश देते हुए लिखा है कि मनुष्य केशर, कस्तूरी, कपूर, अगर, तगरादि विविध ओषधियों को यज्ञ में डालकर उनकी सुगन्ध से (गन्धेन तान्) उन रोग कृमियों (कीटाणुओं) को नष्ट कर दे जिससे गर्भ की रक्षा हो सके[१७] । रोग उत्पन्न करनेवाले कृमियों (कीटाणुओं) को यज्ञ की सुगन्ध से (नाशयामसि) नष्ट कर देना चाहिये (८-६-११) । जो कीटाणु कूड़े कर्कट से पैदा होते हैं और कष्ट देते हैं, उन्हें नष्ट कर देना चाहिये[१८] । चिकित्सक रोगोत्पादक कीटाणुओं और रोगों से गर्भिणी स्त्री तथा उसके गर्भ की रक्षा करे (८-६-२३)।

ओषधि प्रयोग :- मनुष्य को उत्तम अन्न ओषधियों का सेवन करके अपने स्वास्थ्य को ठीक रखना चाहिये । रोगनाशक विविध ओषधियों का वर्णन सूक्त सात में किया गया है । परमात्मा ने इस पृथिवी में बहुत पत्तेवाली (प्रस्तृणतीः) बहुत गुच्छोंवाली (स्तम्बिनी) एक कोंपलवाली, (एक शृंगा), बहुत फैली हुई (प्रतन्वतीः) ओषधियों (ओषधिः) को उत्पन्न किया है[१९] । मनुष्य इन ओषधियों के गुण धर्मों को जानकर, उनका परीक्षण करके रोगों (विघ्नों) को दूर करने का यत्न करे (८-७-५)। मनुष्य को पीपल, दर्भ, सोमलता आदि ओषधियों तथा जौ, चावलादि के गुणधर्मों को जानकर और उनका प्रयोग कर स्वस्थ और बलवान् रहना चाहिये[२०] । जो ओषधियां (पुष्पवतीः) फूलवाली हैं, सुन्दर कोंपलवाली (प्रसूमतीः) और फलवाली (फलिनी) हैं उन सब प्रकार की ओषधियों का प्रयोग कर मनुष्य स्वस्थ रहे (८-७-२७) । यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है ।

शत्रु विनाश :- आंठवें सूक्त में शत्रु के विनाश के लिये विविध अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग का वर्णन किया है । सेनापति अपने सैनिकों के द्वारा शत्रुओं को बांधकर उन्हें मारने के लिये उत्साहित कर निर्देश दे यह उल्लेख किया गया है[२१] । राजा दुष्टों को अनेक प्रकार का कष्ट देकर उनको नष्ट करवा दे (८-८-११) । सेना की व्यूह रचना करके श्रेष्ठ योद्धाओं को यथोचित स्थान पर खड़ा करके शत्रुओं को नष्ट कर दे (८-८-१३) । कुशल सेनापति शत्रुओं की सेना में कोलाहल (शोर मचवा) कर के

शत्रु सेना के मनोबल को कमजोर कर उन पर आक्रमण करके विजय प्राप्त कर ले (८-८-२१)। पराक्रमी सेनापति शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने में सफल होते हैं (८-८-२४)।

परमात्मा का स्वरूप :- सूक्त ९-१० में ब्रह्मविद्या का वर्णन है। परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए उपदेश दिया है कि परमात्मा सृष्टि की उत्पत्ति करता है, सभी प्राणियों का पालन करता है और सृष्टि का प्रलय भी करता है[२२]। परमात्मा ने तीन गुणों (सत्व, रज और तम) से युक्त सृष्टि की रचना की है (८-९-३)। परमात्मा सर्वव्यापक है, उसने प्राणियों के उपकार के लिये सूर्य, पृथिवी आदि लोक-लोकांतरों की रचना की (८-९-६) है। प्राणियों के कल्याण के लिये परमात्मा ने दिन और रात्री का निर्माण किया (८-९-१२)। मनुष्य के शरीर में (सप्त) सात छिद्र अर्थात् दो आंखें, दो कान, दो नासिका द्वार और एक मुख को बनाया। इस शरीर के द्वारा मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करता है[२३]। परमात्मा एक अद्वितीय है जो अपनी अनुपम शक्ति से सभी का शासक है, सभी उसके अनुशासन का पालन करते हैं, वह सभी प्राणियों का हितैषी है[२४]। जो व्यक्ति ईश्वर की महिमा को जानता है वह विद्वानों का प्रिय होता है (८-१०-१-५)। परमात्मा सभी जीवात्माओं को उनके कर्मों का यथावत् फल देता है, सर्पादि विषैले प्राणियों को उन जीवात्माओं के कर्मों के कारण ही ऐसा शरीर परमात्मा ने उन्हें दिया है-उन योनियों में डाला है (८-१०(५)१३) ऐसा वेदमन्त्र में स्पष्ट किया गया है। ब्रह्म के गुणों को जानकर मनुष्य को अपने दोषों को दूर करना चाहिये (८-१०(६)१)। यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है।

प्रमाण :-

१. *अन्तकाय मृत्यवे नमः....अमृतस्य लोके।* (अथर्व.८-१-१)
२. *तुभ्यं वातःपवतां.....मा प्र मेष्ठाः।* (अथर्व.८-१-५)
३. *उद्यानं ते पुरुषं नावयानं....आ वदासि।* (अथर्व.८-१-६)
४. *आ रभस्वेमाममृतस्य....गा मा प्र मेष्ठा।* (अथर्व.८-२-१)
५. *जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्।* (अथर्व.८-२-६)
६. *यत् ते नियानं रजसं...वर्म कृण्मसि।* (अथर्व.८-२-१०)
७. *शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ।* (अयर्व.८-२-१८)
८. *शतं तेऽयुतं हायनान् युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।*
इन्द्राग्नि विश्वे देवास्तेनु मन्यन्ताम हृणीयमानाः। (अथर्व.८-२-२१)
९. *तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुपा रक्ष....यातु धाना नृचक्षः।* (अथर्व.८-३-९)
१०. *पराद्य देवा वृजिनं.....यातुधानः।* (अथर्व.८-३-१४)
११. *ये ते शृंगे अजरे जातवेद....विनिक्ष्व।* (अथर्व.८-३-२५)
१२. *इन्द्र सोमा वर्तयतं....निर्जूवथः।* (अथर्व.८-४-४)
१३. *अयं मणिः [illegible]....वीरः।* (अथर्व.[illegible])

१४. याःकृत्या अंगिरसी र्याः.....अति । (अथर्व.८-५-९)
१५. यस्त्वा कृत्याभि...वज्रेण शतपर्वणा । (अथर्व.८-५-१५)
१६. मा सं वृतो मोपं...दुर्णामचातनम् । (अथर्व.८-६-३)
१७. ये शाला...तानोषधे त्वं गन्धेन...नाशय । (अथर्व.८-४-१०)
१८. येषां पश्चात् प्रपदानि...प्रतिबोधेन नाशय । (अथर्व.८-६-१५)
१९. प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशृंगा....जीवनी । (अथर्व.८-७-४)
२०. अश्वत्थो दर्भो वीरुधां....मर्त्यौ । (अथर्व.८-७-२०)
२१. परुषानमू....वधको वधैः...जालेन संदिता । (अथर्व.८-८-४)
२२. यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा....तन्वः पराचैः । (अथर्व.८-९-२)
२३. सप्त छन्दांसि....कक्ष्मार्पितानि । (अथर्व.८-९-१९)
२४. एको गौरेक....नाति रिच्यते । (अथर्व.८-९-२६)

नवम काण्ड

काण्ड परिचय :- नौवे काण्ड में पांच अनुवाक, दस सूक्त तथा ३१३ मन्त्र हैं। इस काण्ड में ब्रह्म की प्राप्ति, ऐश्वर्य को प्राप्त करना, घर (शाला) बनाने की विधि, आत्मिक उन्नति, परमात्मा के ज्ञान से सुख, संन्यासी और गृहस्थ के कर्तव्य, अतिथि सत्कार, सृष्टि विषयक ज्ञान, रोग निवृत्ति के उपाय, जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूपादि के विषय में उपदेश दिया गया है।

ईश्वर और वेद :- सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि लोक लोकान्तरों के आकार-प्रकार तथा उनकी गतिशीलता, एक दूसरे को धारण आकर्षणादि देखकर विचारशील व्यक्ति, परमात्मा की सर्वज्ञता और सर्व शक्तिमत्ता आदि गुणों को जानते हैं। परमात्मा के विषय में विचार करके प्रसन्न होते हैं[१]। परमात्मा के वेद ज्ञान को क्रियात्मकरूप से पृथिवी, जल, अग्नि, वायु आदि भौतिक पदार्थों में देखकर ईश्वर की यथार्थता का अनुभव करके, अपनी आत्मिक शक्ति को बढ़ाते हैं[२]। वेदों के द्वारा मनुष्य के सूर्य-पृथिवी आदि लोक लोकान्तरों की परस्पर आकर्षण शक्ति का ज्ञान वेदों के द्वारा होता है[३]। जो मनुष्य वेदों के विद्वान् होते हैं वे संसार में सब प्रकार की उन्नति करने में सफल होते हैं[४]। वेदों के अनुसार आचरण करने से ही संसार का कल्याण हो सकता है (९-१-१०)।

उत्तम शिक्षा :- उत्तम शिक्षा प्राप्त करके मनुष्य को ऐश्वर्यशाली होना चाहिये[५]। उत्तम शिक्षा प्राप्त करके मनुष्य संसार का कल्याण करता हुआ अपने जीवन को सफल करे तथा अपने जीवन की सरलता, नम्रता, सेवा आदि के द्वारा गुरुजनों और विद्वानों में प्रतिष्ठा को प्राप्त करे (९-१-१३)। माता पिता के कर्तव्यों का निर्देश देते हुए लिखा है कि माता-पिता अपनी सन्तानों को अच्छी शिक्षा देकर उन्हें बलवान् और पराक्रमी बनावें[६]। माता-पिता और गुरुजनों से उत्तम शिक्षा प्राप्त करके मनुष्य तेजस्वी वाणी (तेजस्वतीं वाचम्) बोले (९-१-१९)।

परमात्मा की उपासना :- मनुष्य परमात्मा की भक्ति करके उसका आश्रय लेकर अपने अभिमानादि (मानसिक विकाररूपी) शत्रुओं को नष्ट कर दे (९-२-१)। ऋषि दयानन्द ने भी लिखा है परमात्मा की उपासना करने से मनुष्य निरभिमानी अर्थात् अहंकार रहित हो जाता है। वेद ने सावधान करते हुए लिखा है कि जो लोग धर्मात्माओं को दुःख देते हैं वे लोग ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार अपनी हानि, विघ्न और दुःख प्राप्त करते हैं[७]। अर्थात् धार्मिक व्यक्तियों को कष्ट नहीं देना चाहिये और जो दुःख देता है वह कभी सुखी नहीं रहता है। परमात्मा की उपासना करके मनुष्य

अपने काम-क्रोधादि विकारों को जड़मूल से नष्ट कर देता है (९-२-९)। मनुष्य को सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की उपासना करनी चाहिये (९-२-१९)। यह उपदेश देकर परमात्मा की महानता का वर्णन करते हुए लिखा है कि परमात्मा सूर्य-पृथिवी आदि को बनानेवाला और जाननेवाला है (९-२-२१)। सूर्य-चन्द्र-अग्नि-वायु आदि सभी से परमात्मा महान् है सभी उसी के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं[८]।

शाला (भवन) निर्माण :- वेदों में भवन निर्माण के विषय में विस्तृत वर्णन मिलता है। भवन बनाने से पहले भवन निर्माता को उसका नक्शा बना लेना चाहिये (९-३-१)। योग्य शिल्पियों (भवन निर्माताओं) को ऐसे भवन बनाने चाहियें जहां वैज्ञानिक यन्त्र, मन प्रसन्न रखने के उपकरण तथा विविध कला यन्त्रों के रखने के लिये यथोचित स्थान हो, जिससे घर सुखदायक लगे[९]। घर में सभी के रहने के लिये स्थान विशेषत: महिलाओं के बैठने बातचित और चर्चा आदि करने के कमरे, पुरुषों के बैठने के बैठक स्थलादि बनाने चाहियें[१०]। घर ऐसा बनाया जाय जिसमें रहनेवाले सभी व्यक्ति सुख पूर्वक रह सकें (९-३-९)। श्रेष्ठ मकान के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि जैसे गर्भाशय में गर्भस्थ शिशु सुरक्षित रहता है वैसे ही विविध कला कौशल अस्त्रशस्त्रादि से सुरक्षित बने हुए मकान में रहनेवाले छोटे बड़े सभी सदस्य सुख पूर्वक और सुरक्षित रहते हैं[११]। भवन में यज्ञादि करने, उपासना और वेदपाठ के लिये पृथक् स्थान बनाना चाहिये (९-३-२२)। जिस घर में शुद्ध जल-वायु और सूर्य का प्रकाश आदि आता है उस घर में रहनेवाले सदस्य रोगरहित होते हैं (९-३-२३)।

ब्रह्म की उपासना :- परमात्मा अनादि और अनन्त है तथा सभी का पालन-पोषण करता है, ऐसे परमात्मा की जो व्यक्ति पुरुषार्थ करके उपासना करता है वह व्यक्ति सदा उन्नति करता है और सुखी रहता है[१२]। मनुष्य को परमेश्वर के उपकारों को सदा स्मरण करना चाहिये (९-४-६)। परमात्मा सृष्टि का नियन्ता है, सारा जड़-चेतन जगत् उसके अनुशासन का पालन करता है। परमात्मा की महिमा का वर्णन वेदों में वर्णित है। वेदों के द्वारा परमात्मा की महिमा को जानना चाहियें[१३]। परमात्मा ने कुत्ता, बिल्ली, कछुआ, कीट, पंतगादि विविध योनियों को बनाया (९-४-१६)। परमात्मा सब क्लेशों का नाश करके भक्तों कों आनन्द प्रदान करता है (९-४-१७)। इसलिये सर्वशक्तिमान् परमात्मा की उपासना करके मनुष्य को अपनी उन्नति करनी चाहिये[१४]।

मनुष्य की उन्नति :- जो मनुष्य परम ऐश्वर्य सम्पन्न परमात्मा में श्रद्धा रखकर अपने दोषों को दूर कर लेता है वह व्यक्ति अपनी भी उन्नति करता है तथा संसार

की उन्नति करने में सफल होता है[१५] यह उपदेश दिया है। आत्मदर्शी विवेक पूर्वक मिथ्याज्ञान को नष्ट करके अभिमान रहित होकर परोपकार करके परमात्मा के सानिध्य को प्राप्त करके आनन्द को प्राप्त करें[१६]। जो मनुष्य पुरुषार्थ करके अनेक प्रकार की शक्तियों को प्राप्त करके सूर्य के समान तेजस्वी होकर आनन्द पूर्वक रहता है तथा संसार का कल्याण करता है (९-५-१५)। परमात्मा अनादि, अनन्त, सृष्टि का कर्ता, सबका नियन्ता और सर्वव्यापक है[१७]। जो मनुष्य धर्मात्मा होता है वह सत्पात्रों को दान देता है तथा वह दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझता है[१८]।

संन्यासी और गृहस्थी :- गृहस्थियों को अतिथि सत्कार करना चाहिये इसका उपदेश देते हुए वेदमन्त्र में लिखा है कि घर पर आये हुए विद्वान् का स्वागत, सत्कार करना चाहिये। विद्वान् अतिथि के घर पर आने पर उसका आदर पूर्वक अभिवादन अर्थात् नमस्ते करे, पाद्य अर्घादि से अतिथि का स्वागत करके उससे उत्तम शिक्षा का उपदेश ग्रहण करना चाहिये[१९]। गृहस्थ घर पर आये हुए संन्यासी का स्वागत सत्कार करे किन्तु संन्यासी गृहस्थ पर उपकार करने के लिये उनका आतिथ्य स्वीकार कर उन्हें धर्मोपदेश दें[२०]। संन्यासी और गृहस्थी की तुलना करते हुए लिखा है कि गृहस्थी व्यक्ति शय्या पर विश्राम करता है जबकि संन्यासी परमात्मा के आश्रय में विश्राम करके तपस्वी जीवन व्यतीत करता है (९-६-९)। संन्यासी को शारीरिक सुखों की आंकाक्षा नहीं रखनी चाहिये यह भी उपदेश दिया है (९-६-१०)। जो गृहस्थ अतिथियों का अन्नादि देकर स्वागत नहीं करते हैं वे दुःखी रहते हैं (९६(२)९)। गृहस्थी व्यक्ति अपनी सुख वृद्धि के लिये अतिथियों का सत्कार (अतिथि यज्ञ) किया करें[२१]। बड़े बड़े यज्ञों के द्वारा मनुष्य संसार का उपकार कर सुख प्राप्त करता है वैसे ही विद्वान् अतिथियों का स्वागत करके उनके सत्संग से लाभ उठाकर सुख प्राप्त करता है[२२]। इस प्रकार छठे सूक्त के मन्त्रों में अतिथि यज्ञ से होनेवाले लाभों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

परमात्मा-विद्वान्-चिकित्सक :- परमात्मा सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, और सर्वनियन्ता है[२३]। परमेश्वर ने मानव शरीर-हड्डियां, नस नाड़ियां, गुर्दे आदि विविध अंगों की व्यवस्थित रूप से रचना की है (६-७-१३)। जैसे चिकित्सक रोगी के रोग के कारणों को जानकर रोगों को नष्ट करके मनुष्यों के शरीर को स्वस्थ और पुष्ट करता है वैसे विद्वान् व्यक्ति अपने उपदेशों से लोगों की अविद्या को दूर करके उन्हें सुखी करते हैं[२४]। जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार का नाश हो जाता है वैसे ही उत्तम वैद्यों की चिकित्सा से रोगों का नाश हो जाता है अर्थात् रोग समाप्त हो जाते हैं[२५]। परमात्मा ने सृष्टि के आदि में छोटे बड़े सभी प्राणियों के शरीरों की रचना की, उन

शरीरों में जीवात्मा रहकर कर्म करता है। जीवात्मा को कर्मों का फल भोगने के लिये सांसारिक पदार्थों की रचना की[२६]। शरीर में ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि की तथा उनके विषय शब्द, स्पर्श-रूप-रसादि विषयों की भी रचना की है (९-९-३)। प्रलयावस्था में प्रकृति कारणावस्था में परमाणुओं के रूप में रहती है उसी प्रकृति से परमात्मा ने पृथिवी जल-अग्नि-वायु-आकाशादि पंचमहाभूतों की रचना की[२७]। कर्मफल के अनुसार परमात्मा ने जीवात्मा को शरीर-इन्द्रियाँ आदि प्रदान कीं (९-९-१६)। जीवात्मा अपने स्वरूप से स्त्री-पुरुष या नपुसंक नहीं होता है अपितु वह कर्मों के अनुसार स्त्री-पुरुष का शरीर प्राप्त करता है[२८]। सर्वान्तर्यामी परमात्मा को योगीजन उसके गुणों का अनुभव करते हुए उसका साक्षात्कार करते हैं और मोक्ष को प्राप्त करते हैं[२९]। वाणी की परा-पश्यन्ती-मध्यमा और बैखरी इन चार अवस्थाओं का वर्णन किया है[३०]। परमात्मा एक है किन्तु परमात्मा के इन्द्र-अग्नि-वरुण आदि अनेक गुणों के कारण उसके अनेक नाम होते हैं यह इस वेद मन्त्र में स्पष्ट किया है[३१]। दसवें सूक्त में परमात्मा के गुण उसके द्वारा सृष्टि रचना की प्रक्रिया आदि का विस्तत विवेचन है।

प्रमाणः-

१. *दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात्...प्रति नन्दन्ति सर्वाः।* (अथर्व ९-१-१)
२. *पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्या....उग्रा नसिः।* (अथर्व ९-१-३)
३. *स तौ प्र वेद स उ तौ.....अनपस्फुरन्तौ।* (अथर्व ९-१-७)
४. *हिंकरिक्रती बृहती.....पयते पयोभिः।* (अथर्व ९-१-८)
५. *यथा सोमो द्वितीये.....आत्मनि ध्रियताम्।* (अथर्व ९-१-१२)
६. *यथा मक्षा इदं मधु...बलमोजश्च ध्रियताम्।* (अथर्व ९-१-१७)
७. *दुष्वाप्न्यं कामदुरितं च .....चिकित्सात्।* (अथर्व ९-२-३)
८. *न वै वातश्च....नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः।* (अथर्व ९-२-२४)
९. *यानि तेऽन्तः......तन्वे भव।* (अथर्व ९-३-६)
१०. *हविर्धानमग्निशालं......देवि शाले।* (अथर्व ९-३-६)
११. *या द्विपक्षा चतुष्पक्षा....गर्भ इवा शये।* (अथर्व ९-३-२१)
१२. *अपां यो अग्रे प्रतिमा....अपि नः कृणोतु।* (अथर्व ९-४-२)
१३. *य इन्द्र एव देवेषु.....भद्रया।* (अथर्व ९-४-११)
१४. *पिशंगरूपो नभसो.....न सचताम्।* (अथर्व ९-४-२२)
१५. *इन्द्रास्य भागं परि त्वा....याजमान्यस्य वीराः।* (अथर्व ९-५-१)
१६. *अनु.....तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम्।* (अथर्व ९-५-४)
१७. *अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत....समुद्रौ कुक्षी।* (अथर्व ९-५-२०)
१८. *अनुपूर्ववत्सां धेनुम्....यन्ति दिवमुत्तमाम्।* (अथर्व ९-५-२९)
१९. *यदभि वदति दीक्षामुपैति....प्रणयति।* (अथर्व ९-६-४)
२०. *या एव यज्ञ आप प्रणीयन्ते ता एव ताः।* (अथर्व ९-६-५)
२१. *इष्टं च वा एवपूर्तं च....अतिथेरश्नाति।* (अथर्व ९-६(३)-१)
२२. *स य एवं विद्वान्.....यावद् द्वादशा।* (अथर्व ९-६(४)-८)

२३. प्रत्यङ् तिष्ठन्....सविता। (अथर्व ९-७-२१)
२४. शीर्षक्तिं शीर्षामयं.....निर्मयन्त्रयामहे। (अथर्व ९-८-१)
२५. सं ते शीर्ष्णःकपालानि.....भेदमशीशमः। (अथर्व ९-८-२२)
२६. को ददर्श प्रथमं जायमानम्.....प्रष्टुमेतत्। (अथर्व ९-९-४)
२७. माता पितरमृत आ बभाज.....वाकमियुः। (अथर्व ९-९-८)
२८. स्त्रियः सतीस्तां......पिता सत्। (अथर्व ९-९-१५)
२९. उद् गायत्रे अधि.....अमृतत्वमानशुः। (अथर्व ९-१०-१)
३०. चत्वारि वाक्परिमिता....वाचो मनुष्या वदन्ति। (अथर्व ९-१०-२७)
३१. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु........आहुः। (अथर्व ९-१०-२८)

दशम काण्ड

काण्ड परिचय :- इस काण्ड में १० सूक्त तथा ३५० मन्त्र हैं, इसमें कृत्या अर्थात् विनाशक साधनों का वर्णन है, 'कृती छेदने' धातु से कृत्या शब्द बनता है जिसका तात्पर्य है विनाश करने के साधनों का वर्णन। इसमें राजा सौम्य प्रकृति का अर्थात् शान्तप्रिय हो, विविध शस्त्रास्त्रों का युद्ध से होनेवाले दुष्परिणाम, युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपाय तथा सेनापति के कर्तव्यों का उल्लेख है। मनुष्य शरीर के अवयवों का तथा ब्रह्म का वर्णन किया गया है। वारणमणि अर्थात् रोगनिवारक ओषधि तथा शत्रु निवारक सेनापति, सर्प विष चिकित्सा, शासन व्यवस्था, ओषधि, सेनापति, सूर्य, चन्द्रमादि के लिये मणि शब्द प्रयुक्त हुआ है। परमात्मा का स्कम्भ तथा शतौदना माता अर्थात् सैकड़ों प्रकार के ओदन (भोज्य पदार्थों) को देनेवाली माता के रूप में वर्णन किया गया है।

कृत्या और उसका निवारण :- शत्रु का विनाश जिन उपायों से किया जाता है उसे 'कृत्या' कहा गया है। 'कृत्या' को दूर करने के साधनों का भी वर्णन किया गया है। विष कन्या को भी कृत्या के रूप में प्रयोग करने का उल्लेख है, विष विद्या के विशेषज्ञ चिकित्सक अपने राजा के लिये विष प्रयोग करके शरीर से सुन्दर दीखनेवाली विष कन्या को निर्मित करके जो राजा का शत्रु होता था उसको भेंट रूप में भेज जाता था, विष कन्या के शरीर के सौन्दर्य से आकर्षित होकर शत्रु राजा उसको स्पर्श-आलिंगनादि करने से वह भी विषयुक्त हो कर मारा जाता था। राजा के विष वैद्य विष कन्या के स्वरूप को ज्ञात करके उससे दूर रहने का निर्देश राजा को देते थे तथा विष कन्या को वापस उसी भेज़नेवाले राजा के पास भेज देते थे। इस विषयक वर्णन करते हुए मन्त्र में लिखा है कि चिकित्सक विवाह में वधू के समान सजायी हुई अपने हाथों से बनायी हुई (विष कन्या) अपने समीप आवे तो उसे हम (अपनुदामः) परे धकेलते हैं अर्थात् दूर हटाते हैं, वापस करते हैं[१]। सेना के द्वारा भी राजा अपने शत्रु का विनाश करता है इसलिये इसे भी 'कृत्या' कहते हैं। गायादि पशुओं के तथा मनुष्यों के खाद्यपदार्थों में विष का प्रयोग करके शत्रुओं को नष्ट किया जाता है, अतः विषाक्त खाद्यपदार्थों के द्वारा शत्रु को नष्ट करना भी 'कृत्या' कहलाता है तथा भूमि में विस्फोटक पदार्थों को गाड़ कर विस्फोट द्वारा शत्रु को नष्ट करने को 'कृत्या' कहा जाता है अर्थात् विषकन्या, सेना, विषैले खाद्यपदार्थ तथा विस्फोटक पदार्थ इन सब शत्रु विनाशक उपायों को 'कृत्या' कहा गया है।

विष कन्या के रूप प्रयोग में लायी जानेवाली कृत्या का निवारण उसे वापस भेजकर (अपनुदामः १०-१-१)। सेना के द्वारा सेना को नष्ट करना तथा ओषधि के

द्वारा (अनया ओषध्या १०-१-४)। खाद्यपदार्थों में विषैले पदार्थ रूपी कृत्या का निवारण तथा विस्फोटक पदार्थों को वारुणास्त्रों द्वारा पानी बरसा कर शान्त करने के उपायों (शम्भुः-स्नपयामसि १०-१-९) का वर्णन भी इस काण्ड के प्रथम सूक्त के मन्त्रों में उपदेश किया गया है।

शान्तप्रिय राजा :- राजा युद्ध और युद्ध से होनेवाली हानियों को अच्छी तरह जानता है। युद्ध में शत्रु के विनाश के लिये किन किन साधनों को अपनाया जाता है। विनाशकारी उपायों (कृत्या) से जगत् का कल्याण नहीं होता है, इसलिये जहाँ तक हो सके राजा को विनाश की अपेक्षा 'शान्ति' के लिये प्रयत्नशील होना चाहिये इसलिये वेदमन्त्र में उपदेश देते हुए लिखा है कि राजा को चन्द्रमा की तरह शान्त स्वभाववाला होना चाहिये। क्योंकि वह हमारा अर्थात् प्रजा का रक्षक और पालनकर्ता है[२]। किन्तु राजा इतना भी शान्त स्वभाव नहीं होना चाहिये कि वह दुष्ट व्यक्ति को दण्ड न दे सके इसलिये लिखा है कि यदि कोई पहले प्रहार करे (पूर्वसिनम्) या पहले ही किसी को मार डाले तो ऐसे शत्रु को राजा अवश्य मृत्यु दण्ड दे अर्थात् मार डाले क्योंकि शत्रु ने दोनों ही कार्य मारने के लिये ही किये थे। अतः ऐसे दुष्टात्मा को नहीं छोड़ना चाहिये[३]।

ब्रह्म की महिमा और प्राप्ति :- दूसरे सूक्त के अनेक मन्त्रों (१-१२) में मानव शरीर के अवयवों का वर्णन करते हुए प्रश्न किया गया है कि किसने (केन....प्रतिष्ठाम् १-२-१)। इन शरीर के अंगों को बनाया है ? किसने शरीर में प्राण अपानादि की व्यवस्था की है (१-२-१३) ? किसने भूमि द्युलोक को घेरकर रखा है अर्थात् इनमें कौन व्याप्त है ? किसने पर्वत-बादलादि को अपने अनुशासन में कर रखा है (१-२-१८)। इस प्रकार विविध प्रश्न ब्रह्म की महिमा के विषय में करके स्पष्ट किया है कि यह सब कुछ परमात्मा ने किया है। ब्रह्म अर्थात् परमात्मा को कौन प्राप्त करता है ? इसको स्पष्ट करते हुए वेदमन्त्र में लिखा है कि श्रोत्रिय अर्थात् वेदों का अध्ययन करनेवाला ब्रह्म को प्राप्त करता है, जो ब्रह्म के प्रति निष्ठा-श्रद्धा रखता है, ज्ञानी है, वह ब्रह्म को प्राप्त करता है[४]। ब्रह्म ने ही भूमि-अन्तरिक्ष और द्युलोक को धारण कर रखा है[५]।

शरीर देवों का नगर :- मानव शरीर की महत्ता का वर्णन करते हुए उपदेश दिया है कि मनुष्य का शरीर देवताओं का नगर है इसमें आठ चक्र तथा नौ दरवाजे हैं। 'पातंजल योगप्रदीप' नामक ग्रन्थ में आठ चक्रों का वर्णन करते हुए लिखा है कि मूलाधार चक्र-स्वाधिष्ठान चक्र-मणिपूर चक्र-अनाहत चक्र-विशुद्धचक्र-आज्ञाचक्र-सहस्त्रारचक्र तथा ब्रह्मरन्ध्र इन चक्रों को मानसिक एकाग्रता के शक्ति पुंज माना जाता

है जो सुषुम्णा नाड़ी और मस्तिष्क में है ऐसा उल्लेख हठयोग के ग्रन्थों में विस्तार से मिलता है। शरीर में दो आंखें, दो कान, दो नासिका के छिद्र तथा मल-मूत्र के त्यागने के स्थान ये नौ दरवाजे हैं। इन दरवाजों के द्वारा शरीर में रहनेवाला जीवात्मा सांसारिक विषयों को जानता है। आंखों से जीवात्मा सांसारिक पदार्थों को देखता, नासिका से सूंघता, कानों से शब्दों को सुनता है। ऐसा यह मानव शरीर देवताओं का नगर है। इसमें सोने (सुवर्ण) के समान चमकनेवाला कोष (हृदय) है जिसे स्वर्ग कहते हैं जो ब्रह्म की ज्योति से घिरा हुआ है अर्थात् हृदय में परमात्मा का साक्षात्कार जीवात्मा कर सकता है[६]। अर्थात् ब्रह्म का दर्शन मनुष्य अपने शरीर में कर सकता है यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है।

वरणमणि :- वरणमणि का प्रयोग इस काण्ड के तीसरे सूक्त में शत्रु को हटानेवाले सेनापति तथा रोग को हटानेवाली ओषधि के लिये प्रयुक्त हुआ। राजा सेनापति के गुणों का वर्णन करते हुए कहता है कि यह (अयम्) मेरा (मे) शत्रु को हरानेवाला (वरणः) श्रेष्ठ सेनापति (मणिः) है जो शत्रुओं को नष्ट करनेवाला (सपत्नक्षयणः) तथा सुखों की वर्षा करनेवाला (वृषा) है[७] इसी मन्त्र में चिकित्सक रोगी से कहता है कि यह वरण नामक ओषधि श्रेष्ठमणि रूप है जो रोगरूपी शत्रु को नष्ट करता है तथा तेरे लिये सुखदायक है। यह वरणमणि सभी रोगों के लिये श्रेष्ठ ओषधि है[८]। वरणमणि क्षय रोग (टी.बी.) को नष्ट करता है यह उपदेश देते हुए लिखा है कि यह वरणमणि तेरे क्षय रोग को दूर करे, शरीर में प्रविष्ट हुए क्षय रोग को कुशल वैद्य ने वरण नामक श्रेष्ठ ओषधि से नष्ट कर दिया है[९]। राजा सेनापति के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहता है कि मैं (राजा) हिंसा से (अरिष्टः) बच गया हूँ, मेरे राज्य की भूमि हिंसा रहित हो गयी है, मैं सारी प्रजा के साथ बच गया हूँ (आयुष्यमान्) यह मेरा (अयम्) श्रेष्ठ सेनापति (वरण) जो शत्रु निवारक है वह सभी दिशाओं में मेरी रक्षा करे[१०]। इस प्रकार सेनापति और ओषधि के लिये वरणमणि का प्रयोग इन मन्त्रों में हुआ है।

सर्प विष चिकित्सा :- वरणमणि नामक ओषधि का वर्णन तीसरे सूक्त में करके चौथे सूक्त में सर्पविष चिकित्सा का वर्णन करते हुए उपदेश दिया है कि दर्भ नामक ओषधि और तरुणक नामक ओषधि अघाश्व नामक (अतिविषैले) सर्प के विष को दूर करती है। यह ओषधि विष की गति को (बन्धुरम्) बांध देती है, फैलने नहीं देती है[११]। श्वेत-पुनर्नवा नामक ओषधि का श्वेत (सफेद), सरसों के चूर्ण के प्रयोग करने से सर्प के विष को दूर किया जाता है (१०-४-३)। खेतों में नर और मादा दोनों प्रकार के सांप रहते हैं तथा खेतों में पाये जानेवाले सांप प्रायः (अरसः) विषैले नहीं होते हैं[१२]। सांप विष रहित हों या विषवाले हों उनको तथा बिच्छु को मारने

का उपदेश दिया है (१०-४-९)। सर्प के विनाश के लिये नेवले का प्रयोग करना चाहिये (१०-४-११)। पानी के द्वारा अर्थात् जल चिकित्सा से सर्प विष को दूर करने का निर्देश भी दिया है (१०-४-१९)। इस प्रकार विविध उपायों से सर्प विष को दूर करने का उपदेश इस सूक्त में दिया है।

शासक के गुण और कर्तव्य :- इस काण्ड के पांचवें सूक्त में पृथिवी पर राजा की शासन व्यवस्था के विषय में विस्तार से उपदेश दिया गया है। प्रजा पर शासन करने और शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये राजा को ब्राह्मणों का सहयोग लेना चाहिये[13]। इसी प्रकार जल ओषधि आदि के लिये वैश्यों का सहयोग लेना चाहिये (१०-५-३ तथा ४)। जो लोग वैदिक संस्कृति के दुश्मन हैं, वैदिक संस्कृति को नष्ट करना चाहते हैं उनका सामाजिक बहिष्कार होना चाहिये (१०-५-३०)। राजा को शत्रु सेना पर विजय प्राप्त करके शत्रु राजा के राज्य पर अधिकार करने का निर्देश दिया गया है[14]। श्रेष्ठ राजा को ब्रह्म की उपासना करते हुए ब्रह्मवर्चस्वी होना चाहिये और अपने सद्गुणों के परिणाम स्वरूप प्रजा पर शासन करना चाहिये (१०-५-३७)। जो राजा प्रजा पर शासन कर रहा है और यदि उसमें ब्रह्मवर्चस्विता नहीं है तो वह शासक होने के योग्य नहीं है ऐसे शासक राजाओं (क्षेत्रिय राजाओं) को सार्वभौम शासक (केन्द्रीय शासक) राजा उन्हें यथोचित दण्ड दे (१०-५-४२ से ५०) क्योंकि अयोग्य राजा प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता है यह उपदेश विस्तार से इन मन्त्रों में दिया हैं।

मणि अर्थात् अन्न और परमेश्वर :- कृषि से खेत में उत्पन्न अन्न की प्रशंसा करते हुए वेद में उसे 'मणि' अर्थात् रत्न कहा है[15]। वेदमन्त्र में उपदेश देते हुए लिखा है कि हल की फाल (अर्थात् धार) से उत्पन्न हुआ यह श्रेष्ठ अन्न मेरे लिये कवच (वर्म) का निर्माण करता है अर्थात् श्रेष्ठ अन्न से ही शरीर बलवान् होता है तथा रोग से प्रभावित नहीं होता है। अन्न अर्थात् भोजन में दूध और दही-छाछ (रसेन-मन्थेन) आदि का प्रयोग किया जाय तो अन्न अधिक तेजस्वी अर्थात् शारीरिक शक्ति देनेवाला हो जाता है[16]। इस काण्ड के छठे सूक्त में अग्नि-राजा-सूर्य-चन्द्रमादि को मणि कहा है (१०-६-९-१०)। परमात्मा का मणि के रूप में वर्णन करते हुए उपदेश दिया है कि जिस परमेश्वर रूपी मणि के आश्रय में देवता-पिता और मनुष्य आजीविका प्राप्त करते हैं या जिसके आश्रय में जीवित रहते हैं वह परमेश्वर मेरे सिर में अर्थात् मस्तिष्क में सदा रहे जिससे मैं अपने जीवन में श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न हो जाऊँ[17]।

स्कम्भ अर्थात् परमात्मा :- इस काण्ड के छठे सूक्त में विविधार्थों में मणि शब्द का प्रयोग हुआ है। सातवें सूक्त में 'स्कम्भ' का वर्णन किया है, सभी को अपनी

व्यवस्था में बांधने अर्थात् रखनेवाले परमेश्वर को 'स्कम्भ' कहते हैं। इस सूक्त के मन्त्रों में विविध प्रकार से परमात्मा की व्यवस्था का वर्णन करते हुए उसे स्कम्भ कहते है। जिसके अंग में सब तेंतीस देव इकठ्ठे होकर रहते हैं उसे तुम स्कम्भ अर्थात् परमात्मा कहो[१८]। जिस परमेश्वर से ऋग्वेद, जिससे यजुर्वेद प्राप्त किया है, सामवेद के मन्त्र जिस परमेश्वर के लोम सदृश (लोमानि) हैं, अथर्ववेद (अथर्वाङ्गिरसो) अंगों तथा ओषधियों के रसों का वर्णन करनेवाला है वह ब्रह्म के मुख समान मुख्य है उस परमात्मा को 'स्कम्भ' जानो। वह (स) ब्रह्म (कतमःस्विद् एव) अत्यन्त सुखस्वरूप है जिसमें दुःख का लेशमात्र भी नहीं है अर्थात् चारों वेदों का ज्ञान देनेवाला ब्रह्म आनन्द स्वरूप है[१९]।

ब्रह्म का स्वरूप :- ब्रह्म के स्वरूप का उपदेश देते हुए लिखा है इस सृष्टि के भूतकाल अर्थात् इस संसार को बने हुए जितना समय हो गया है उस काल में भी परमात्मा ने जगत् को अपने अनुशासन में रखा है वर्तमान में रख रहा है और भविष्य (आनेवाले समय) में भी सृष्टि को और समस्त जड़ चेतन जगत् को अपने अनुशासन में रखेगा जो केवल सुखस्वरूप अर्थात् आनन्द स्वरूप है जिसमें किंचित् मात्र भी दुःख नहीं है ऐसे सबसे बड़े (महान्) ब्रह्म को हमारा प्रणाम हो अर्थात् हम उसके प्रति नतमस्तक हैं[२०]। परमात्मा सभी के अन्दर विद्यमान है और वह परमात्मा अदृश्य अर्थात् आंखों से दिखलाई नहीं देता है[२१] जो व्यक्ति ऐसे आनन्द स्वरूप ब्रह्म को जान जाता है वह आनन्द रस का पान करता है (१०-८-२२)।

सनातन का अर्थ:- सनातन किसे कहते हैं ? इसको स्पष्ट करते हुए वेदमन्त्र में लिखा है कि सनातन सदा नया रहता है उसमें कभी पुरानापन नहीं आता है जैसे दिन के बाद रात और रात के बाद दिन सदा नवीन रहते हैं उनमें कभी पुरानापन (पुरातन) नहीं आता है वैसे ही सनातन सदा नवीन रहता है[२२]। उसमें कोई परिवर्तन या परिवर्धन या संशोधन नहीं होता, जो नियम सदा एक जैसे रहते हैं जिनमें न्यूनाधिकता नहीं होती है वे नियम (धर्म) सनातन कहलाते हैं। जैसे मनुष्य हजारों वर्ष पहले पैदा होता था, बालक से जवान और जवान से वृद्ध होकर मृत्यु को प्राप्त होता था आज भी वैसा ही है और आगे भी ऐसा ही होगा अंर्थात् जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी होती है यह सनातन (धर्म) है।

जीवात्मा का स्वरूप :- जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि जीवात्मा का अपना कोई लिंग (स्त्री या पुरुष रूप में) नहीं होता है जीवात्मा जब स्त्री का शरीर अपने कर्मों के अनुसार परमात्मा की व्यवस्था से प्राप्त करता है तो स्त्री और पुरुष का शरीर प्राप्त करता है तो पुरुष कहलाता है वही जब बाल्यावस्था के शरीर में होता है तब कुमार अथवा कुमारी के नाम से जाना जाता है[२३]।

परमात्मा शतौदना और वशा :- परमात्मा को शतौदना माता के रूप में वर्णन करते हुए लिखा है कि परमात्मा-शत अर्थात् सैकड़ों ओदना अर्थात् खाद्यपदार्थों को देनेवाला है परमात्मा ने अन्न-दूध-फल-मेवा आदि सैकड़ों प्रकार के खाद्यपदार्थ मनुष्यों के लिये निर्मित करके इन्हें प्रदान कर रखा है। इसलिये इसे "शतौदना माता" वेदमन्त्र में कहा है[२४]। इसी मन्त्र में यह भी उपदेश दिया है कि जो पाप कर्म करने में संलग्न (अघायताम्) है ऐसे पापकर्म करनेवालों के मुखों को बांध दे। जो परमात्मा ध्यान के द्वारा प्रकट हो जाता है अर्थात् धारणा-ध्यान समाधि द्वारा जिस परमात्मा का साक्षात्कार किया जाता है उसके प्रति हमारा प्रणाम है[२५]। परमात्मा जगत् को वश में रखता है इसलिये उसे 'वशा' कहा गया है (१०-१०-२)। जिस वशा अर्थात् वश में रखनेवाले परमात्मा के अनुशासन में पृथिवी-अन्तरिक्ष और द्युलोकादि सभी रहते हैं। वेदों के द्वारा जिसका कथन किया जाता है[२६]। वशा परमात्मा को अमृत भी कहते हैं। वशा को मृत्यु के रूप में जानते है (१०-१०-२६)। इस सूक्त के अन्त में वशारूपी परमात्मा की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है कि वशारूपी परमात्मा के आश्रय में सूर्य, चन्द्र, तारागणादि दिव्य पदार्थ जीवित हैं। वशा के आश्रित ही मनुष्य जीवित हैं, जो सूर्य चमक रहा है यह भी वशा के कारण ही चमक रहा है[२७]। अर्थात् इन सब को उत्पन्न और धारण वह परमात्मा ही कर रहा है।

प्रमाण :-

१. *यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः।*
   सारा देत्वप नुदाम एनाम्॥ (अथर्व. १०-१-१)
२. *सोमो राजाऽधिपा मृडिता च... मृडयन्तु॥* (अथर्व. १०-१-२२)
३. *उत हन्ति पूर्वासिनं..... हन्त्यपरः प्रति॥* (अथर्व. १०-१-२७)
४. *ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम्....॥* (अथर्व. १०-२-२१)
५. *ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता....॥* (अथर्व. १०-२-२५)
६. *अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।*
   तस्यां हिरण्मय कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ (अथर्व. १०-२-३१)
७. *अय मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा....॥* (अथर्व. १०-३-१)
८. *अयं मणिर्वरणो विश्व भेषजः......॥* (अथर्व. १०-३-३)
९. *वरणो वारयाता अयं देवोवनस्पतिः.... अवीवरन्॥* (अथर्व. १०-३-५)
१०. *अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्सर्वपुरुषः।*
   तं माऽयं वरणो मणिः परिपातु दिशो दिशः॥ (अथर्व. १०-३-१०)
११. *दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः.... बन्धुरम्॥* (अथर्व. १०-४-२)
१२. *.... अस्मिन् क्षेत्रे द्वावहीस्त्रीच पुमांश्च तावुभावरसा॥* (अथर्व. १०-४-८)
१३. *इन्द्रस्य.... जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वायुनज्मि॥* (अथर्व. १०-५-१)
१४. *जितमस्माकम....... पादयामि॥* (अथर्व. १०-५-३६)
१५. *जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद् रत्नमभिधीयते॥* (मल्लिनाथ) अर्थात् जो श्रेष्ठ होता है उसे मणि या रत्न कहते हैं।

१६. वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः...... रसेन सह वर्चसा ॥ (अथर्व. १०-६-२)
१७. यं देवा पितरो मनुष्याः...... मणिः श्रैष्ठ्यायमूर्धतः ॥ (अथर्व. १०-६-३२)
१८. यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे.... स्कम्भं तं ब्रूहि...... ॥ (अथर्व. १०-७-१३)
१९. यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् । सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसा ॥
२०. यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ (अथर्व. १०-८-१)
२१. प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर दृश्यमानो बहुधा विजायते..... ॥ (अथर्व. १०-८-१३)
२२. सनातनमेनमाहुरूताद्य स्यात् पुनर्णवः । अहोरात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥
(अथर्व. १०-८-२३)
२३. त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी... ॥ (अथर्व. १०-८-२७)
२४. अघायतामपि नह्यामुखानि.... शतौदना.... गातु ॥ (अथर्व. १०-९-१)
२५. नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते... नमः ॥ (अथर्व. १०-१०-१)
२६. यया द्यौर्यया पृथिवी....... वदामसि ॥ (अथर्व. १०-१०-४)
२७. वशां देवा उपजीवन्ति वशा मनुष्या उत ।
वशेदं सर्वमभवत् यावत् सूर्यो विपश्यति ॥ (अथर्व. १०-१०-३४)

एकादश काण्ड

काण्ड का परिचय :- ग्यारहवें काण्ड में १० सूक्त तथा ३१३ मन्त्र हैं। इस काण्ड में सम्राट् के कर्तव्य, यज्ञ, परमात्मा को भव (उत्पादक) शर्व (संहारक) तथा रुद्र (दुष्टों को दण्ड देकर रुलानेवाला) के रूप में वर्णन है। प्राण का स्वरूप, उसकी विशेषता, ब्रह्मचर्य का महत्त्व, अंहस् अर्थात् पाप से मुक्त होने की प्रार्थना, परमात्मा उच्छिष्ट अर्थात् प्रलय में अवशिष्ट रहने का, ब्रह्म और प्रकृति, कर्मों की गति, मृत शरीर का दाह कर्म तथा देवों और असुरों के युद्ध का वर्णन है।

राज्य व्यवस्था :- इस काण्ड के प्रथम सूक्त में राजा प्रजा को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि हे प्रजा! प्रारम्भिक काल से यह राजव्यवस्था चली आ रही है कि राष्ट्र में अन्नादि पदार्थ होते हैं उसके तीन विभाग होते हैं एक देवताओं अर्थात् विद्वानों-ऋषि-मुनियों और तपस्वियों के लिये, दूसरा पितरों-गृहस्थी-स्त्री-पुरुषों के लिये और तीसरा मनुष्यों-ब्रह्मचारी-वानप्रस्थी आदि सामान्य प्रजा के लिये होता है। इन तीनों भागों को मैं अपनी राजकीय व्यवस्था से यथोचित्त रूप में विभक्त करता हूं जिससे आप लोगों को स्वीकार करना है। देवताओं का भाग (हिस्सा) निकालकर उन्हें दिया जाता है, जिससे राज्य की प्रजा दुःखों और कष्टों को पार कर ले,[१] देवताओं का वह भाग उन्हें कष्टों से बचाता है।

राजा के कर्तव्य :- राजा के कर्तव्यों का उपदेश देते हुए मन्त्र में लिखा है कि राजा को प्रतिदिन यज्ञ करने के लिये यज्ञवेदि पर आना चाहिये (वेदिम् उदेहि) अपनी राष्ट्रीय प्रजा की रक्षा और संवृद्धि करनी चाहिये (प्रजया वर्धय)। दुष्टों (राक्षसीय प्रवृत्तिवाले व्यक्तियों) को राष्ट्र में न रखना चाहिये उन्हें राष्ट्र से बाहर या जेल में डाल देना चाहिये। (रक्ष नुदस्व)अपने राष्ट्र की उन्नति यश और सम्पत्ति आदि को बढ़ाना चाहिये (श्रिया) वैभवशाली और शक्तिशाली राष्ट्र की ओर शत्रु कभी आक्रमण करने की भी नहीं सोचेगा क्योंकि शक्तिशाली सम्राट् उसे तुरन्त नष्ट कर देता है (द्विषतः पादयामि) इस प्रकार राजा के कर्तव्यों का उपदेश इस मन्त्र में दिया है[२]। जिस राज्य का राजा यज्ञादि शुभ कर्म में संलग्न रहता है तो उस राज्य की प्रजा (अनमीवा) रोग रहित रहती है यह सन्देश इस वेद मन्त्र में दिया है[३]।

स्त्री और जल :- स्त्री की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है कि स्त्रियाँ शुद्ध-पवित्र और यज्ञ के योग्य हैं, जिस प्रकार स्त्रियाँ शुद्ध और पवित्र हैं उसी प्रकार ब्रह्मवेत्ताओं के हाथों से स्पर्श किया हुआ जल है शुद्ध और पवित्र है। इस मन्त्र में स्त्रियों की महत्ता का बोध होता है, स्त्रियाँ सदा यज्ञिया अर्थात् पूजा और सम्मान के

योग्य है क्योंकि उनका जीवन शुद्ध और पवित्र होता है उनकी शुद्धता और पवित्रता से जल की पवित्रता की तुलना इस मन्त्र में की गयी है। शुद्ध पवित्र जल के छींटे आशीर्वाद के रूप में ब्रह्मवेत्ता जिस व्यक्ति पर डालता है परमात्मा उस व्यक्ति की कामना को पूरा करता है[५]।

परमात्मा भव-शर्व-रुद्र :- परमात्मा को भव और शर्व के रूप में सम्बोधित करते हुए उससे सुख प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है। परमात्मा संसार को उत्पन्न करता है इसलिये उसे भव कहते हैं[५]। परमात्मा को शर्व इसलिये कहते हैं कि वह सृष्टि का संहार करता है[६]। हे सृष्टि को उत्पन्न करनेवाले और प्रलय करनेवाले परमेश्वर! (भवाशर्वौ) हमको (मृडतम्) सुखी करो, हमारी रक्षा करो। हमारा आपको प्रणाम है[७]। परमात्मा को रुद्र कहा गया है क्योंकि वह दुष्टों को दण्ड देकर उन्हें रुलाता है (रोदयतीति रुद्रः) और उन्हें दुष्कर्मों से दूर रहने तथा सत्कर्मों को करने की प्रेरणा देता है। परमात्मा के भव और रुद्र दोनों ही रूपों का एक साथ वर्णन करते हुए उसके साथ साथ रहनेवाले (सयुजौ) और सब का ज्ञान रखनेवाले सर्वज्ञ (संविदानौ) के रूप में वर्णन करते हुए दोनों स्वरूपवाले परमात्मा को प्रणाम करने का वर्णन किया है[८]। रुद्र रूप में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है कि हमे सत्कर्म करनेवालों को ज्वर (तक्मना) से सम्बद्ध मत करो अर्थात् हम ज्वरग्रस्त न हों तथा हम विष से सम्बद्ध न हों[९]। हे रुद्र परमात्मन्! हमारे माता-पिता आदि वृद्धजनों की तथा शिशुओं (अर्भकम्) की रक्षा करो[१०]। इस काण्ड के तीसरे सूक्त में ब्रह्म का ओदन के रूप में वर्णन किया है। इस ब्रह्मौदन प्रजापति (परमात्मा) ने तैंतीस लोकों की रचना की है[११]।

प्राणों का महत्त्व :- इस काण्ड के चौथे सूक्त में प्राणों के महत्व के बारे में विस्तृत विवेचन किया गया है। पृथ्वी पर आथर्वणी-आंगिरसी-दैवी और मनुष्यज ओषधियां पैदा होती हैं, जबकि हे प्राण! तू उन्हें प्रीणित करता है[१२] अर्थात् प्राणों के कारण मनुष्यादि प्राणी जीवित हैं और विविध ओषधियां पल्लवित-सुरक्षित-रोगनाशक तथा पुष्टिकारक होती हैं। प्राण की जागरुकता तथा सक्रियता का वर्णन करते हुए लिखा है कि सोये हुए प्राणियों में प्राण सदा जागता रहता है, प्राण कभी टेढ़ा होकर नहीं लेटता है, न सोता है, सोते हुए व्यक्ति में प्राण के सोने को किसी ने नहीं सुना है अर्थात् मनुष्य सो जाता है गहरी निद्रा में (सुषुप्ति अवस्था) में चला जाता है सब इन्द्रियां और मन सक्रिय नहीं रहते हैं किन्तु उस समय भी प्राण सक्रिय रहते, चलते रहते है अर्थात् प्राण सदा जागते रहते हैं[१३]। प्राण से विहीन मनुष्य जीवित नहीं रहता अपितु मृत्यु को प्राप्त करता है।

ब्रह्मचर्य का महत्त्व :- गुरु शिष्य सम्बन्ध :- ग्यारहवें काण्ड का पांचवां सूक्त ब्रह्मचर्य सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है इसमें ब्रह्मचर्य के महत्त्व का अत्युत्तम

विवेचन किया गया है। गुरु शिष्य के सम्बन्ध का अत्युत्कृष्ट वर्णन करते हुए वेदमन्त्र में लिखा है जिस प्रकार मां के उदर में गर्भस्थ शिशु सुरक्षित रहता है, वह मां के द्वारा किये हुए भोजन से अन्न-जलादि ग्रहण करता है, जैसे गर्भवती महिला अपने गर्भस्थ शिशु को ध्यान में रखते हुए आहार-विहार आदि क्रिया करती है उसी प्रकार अपने समीप आये हुए शिष्य को आचार्य अपने गर्भ अर्थात् अन्तःकरण में रखता है, उसके खान-पान तथा शिक्षा-सुरक्षा का पूरा ध्यान रखता हैं। आचार्य अपने आचरण के द्वारा अपने शिष्य को आचरण की शिक्षा देता है। उसकी शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों को विकसित करता है, जब वह इन तीनों शक्तियों से सम्पन्न सदाचारी विद्वान् हो जाता है ऐसे ब्रह्मचारी को देखने के लिये देवता (श्रेष्ठजनं) आते हैं[१४]। आचार्य को वेद में मृत्यु लिखा है अर्थात् वह अपने शिष्य के अशुभ संस्कारों को मारता-नष्ट करता है। वरुण अर्थात् पाप कर्मों से (निवारण) हटाता है, सत्कर्मों में प्रेरित करनेवाला 'सोम' है तथा अविद्यादि रोगों को दूर करता है। अतः ओषधि तथा सदुपदेशों की वर्षा करनेवाला है इसलिये उसे पयः कहा गया है अर्थात् मेघ से बरसनेवाले पानी के जैसा शीतल तथा दुग्धादि के रूप में खाद्यपदार्थ प्रदान करनेवाला पयः सरूप है।

ब्रह्मचर्य राजा और आचार्य :- राजा ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ अपने तपस्वी जीवन के कारण राष्ट्र की रक्षा करता है अर्थात् राजा को कामी भोगी विलासी नहीं होना चाहिये यदि वह भोगी और विलासी होगा तो राष्ट्र की रक्षा करने में सफल नहीं हो सकता है। यह सन्देश वेद मन्त्र में दिया है इतना ही नहीं आचार्य अपने शिष्य को ब्रह्मचारी बनाना चाहता है तो उसे भी ब्रह्मचर्य का पालन करना होगा। जो गुरु (आचार्य) ब्रह्मचारी सदाचारी होता है वही अपने शिष्य को ब्रह्मचारी सदाचारी बना सकता है। यह उपदेश इस वेद मन्त्र में दिया है अर्थात् राजा और गुरु दोनों को सदाचारी रहना चाहिये[१६]।

ब्रह्मचर्य और कन्या :- बालक के समान बालिका (कन्या) को भी ब्रह्मचर्य का धारण करना चाहिये और वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करके युवावस्था में उसे युवक पति को प्राप्त करना चाहिये[१७] अर्थात् विवाह बाल्यावस्था में नहीं अपितु युवावस्था में करना चाहिये तथा लड़कों के समान लड़कियों को भी ब्रह्मचर्य धारण और शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। वर का चयन करने का अधिकार कन्या (बालिका) को होना चाहिये यह सन्देश इस मन्त्र द्वारा दिया गया है।

ब्रह्मचर्य के महत्त्व का वर्णन करते हुए वेदमन्त्र में लिखा है कि ब्रह्मचर्य के बल से देवताओं ने मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लीं[१८]।

परमात्मा उच्छिष्ट :- इस काण्ड के सातवें सूक्त में परमात्मा को उच्छिष्ट के रूप में उल्लेख किया है क्योंकि प्रलयावस्था में कोई भी पदार्थ शेष नहीं रहता है केवल परमात्मा शेष (शिष्ट) रहता है। प्रलयावस्था में प्रकृति रहती है किन्तु वह सक्रिय नहीं रहती है, वह चेष्टाविहीन रहती है, जीवात्मा भी प्रलयावस्था में शेष रहता है किन्तु वह शरीर इन्द्रियादि के न होने से निष्क्रिय-निश्चेष्ट रहता है, अतः परमात्मा जीव और प्रकृति से 'उत्' अर्थात् श्रेष्ठ है इसलिये परमात्मा को उच्छिष्ट (उत्+शिष्ट) इस सूक्त में कहा गया है। प्रलयावस्था में नाम और रूप में विद्यमान जगत् अवशिष्ट (शेष) नहीं रहता है। परमात्मा उच्छिष्ट है उसमें सब लोक-लोकान्तर स्थित रहते हैं। उसमें अग्नि विद्युत् आदि स्थित रहते हैं। सभी पदार्थ उसी परमात्मा के अन्दर समाये हुए हैं[१९]। ऋत-तप-सत्य-धर्म-श्रम-कर्म-बलादि सभी गुण परमात्मा में विद्यमान हैं[२०]।

मानव शरीर और उसका अन्त :- मानव शरीर की रचना परमात्मा ने की है। मरण धर्मा शरीर में देवताओं का वास है[२१] मृत्यु होने पर यह शरीर अग्नि में भस्म कर दिया जाता है। शरीर से जीवात्मा के निकलने पर शरीर अग्नि को सौंप दिया जाता है[२२]। शरीर को पंचभूतों में विलीन करने का माध्यम अग्नि ही है, शव को अग्नि में जलाना चाहिये, जमीन में गाढ़ना या पानी में बहाना नहीं चाहिये। यह सन्देश भी वेद के इस मन्त्र से प्राप्त होता है। जब मनुष्य श्रेष्ठ कर्म करता है तो वह परमात्मा (मोक्ष) को प्राप्त करता है। जब अशुभ कर्म करता है पशु-पक्षी-कीट-पंतगादि योनियों को प्राप्त करता है तथा सामान्य कर्म (पाप और पुण्य के समान रूप से) करता है। तब मनुष्य शरीर को प्राप्त करता है इस प्रकार मनुष्य के तीन प्रकार के कर्मों के द्वारा तीन प्रकार से फलों को भोगता है यह सन्देश वेद ने दिया है[२३]। नौवें और दसवे सूक्त में युद्ध का वर्णन हैं।

प्रमाण:-

१. *त्रेधा भागो निहितो य : पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम्।*
अंशान् जानीध्वं विभाजामि तान्....पारयाति। (११-१-५)
२. *उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं देहयेनाम्।*
श्रिया समानानाते......द्विषतस्त पादयामि। (११-२-२१)
३. *अभ्यावर्तस्व.....स्वे क्षेत्रे अनमिवा वि राज।* (११-१-२२)
४. *शुद्धाःपूता योषितो यज्ञिया इमा....मे।* (११-१-२७)
५. *भावयति उत्पादयति पदार्थानिति भवः।* (अथर्व भाष्यं पं. विश्व ११-२-१)
६. *शर्व शृणाति हिनस्ति पदार्थनिति शर्वः।* (अथर्व भाष्य पं. विश्व११-१-२२)
७. *भवाशर्वौ मृडतं माभियातं.... मा नो हिंसिष्टम्।* (११-२-१)
८. *भवाशर्वौ सयुजा संविदाना.....ताभ्यां नमः।* (११-२-१४)
९. *मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण.....।* (११-२-२६)

१०. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं.....रूद्र मा। (११-२-२९)
११. एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमित प्रजापतिः। (११-३-५२)
१२. आथर्वणीराङ्गिरसी दैवी मनुष्यजा उत।
औषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि। (११-४-१६)
१३. ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् निपद्यते।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन। (११-४-२५)
१४. आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीं स्तिस्त्र उदरे बिभर्ति जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः। (११-५-३)
१५. आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः। (११-५-१४)
१६. ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते। (११-५-१७)
१७. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। (११-५-१८)
१८. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत। (११-५-१९)
१९. उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्त समाहितम्। (११-७-१)
२०. ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म। (११-७-१७)
२१. यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता गृहं कृत्वा मर्त्यं देवा पुरुषमाविशन्। (११-८-१८)
२२. सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं......देवाः प्रायच्छन्नग्नये। (११-८-३१)
२३. प्रथमेन प्रमारेन त्रेधा....एकेन हि नि षेवते। (११-१८-३३)

द्वादश काण्ड

काण्ड परिचय :- बारहवें काण्ड में पांच सूक्त तथा ३०४ मन्त्र हैं। इस काण्ड का प्रथम सूक्त 'पृथिवी सूक्त' के नाम से प्रसिद्ध है, इसमें राष्ट्र धर्म का अत्युत्तम उपदेश दिया गया है, सत्य-उद्योग-यथोचित दण्ड व्यवस्था, राष्ट्र की उन्नति के लिये प्रत्येक राष्ट्रवासी में समर्पण-तप-त्याग की भावना का होना तथा आस्तिकता और मिलकर रहने की भावना से राष्ट्र शक्तिशाली होता है। पृथिवी विश्वम्भरा है सबका भरण पोषण करनेवाली है, यह धरती मेरी मां है और मैं इसका पुत्र हूँ इत्यादि सद्विचार इस सूक्त में विद्यमान हैं। दूसरे सूक्त में यक्ष्मा रोग को दूर करने के उपायों का वर्णन है तथा सौ वर्ष तक जीवित रहने के उपयों का वर्णन है। तृतीय सूक्त में गृहस्थ के कर्तव्यों का उल्लेख है, चतुर्थ सूक्त में 'वशा' अर्थात् वेदों का प्रचार करनेवाले वेद के विद्वानों की सार्थक वाणी का वर्णन है तथा पांचवें सूक्त में परमेश्वर की वेदवाणी का उपदेश दिया गया है।

राष्ट्र रक्षा के उपाय :- राष्ट्र की रक्षा और उसे शक्तिशाली बनाने के साधनों का उपदेश देते हुए वेदमन्त्र में लिखा है कि सत्य-परिश्रम-कठोर दण्ड व्यवस्था, राष्ट्र के प्रति समर्पण भाव, तपस्वी जीवन, ब्रह्म के प्रति आस्तिक भाव, विद्वानों का सत्कार, सज्जनों का संग, त्याग की भावना इत्यादि गुण पृथिवी (राष्ट्र) को धारण करते हैं अर्थात् राष्ट्र को सशक्त,एवं सुरक्षित रखते हैं[१]। यह राष्ट्र ही हमारे भूतकाल और भविष्यत् काल का निर्माण करता है। कौन शासक राष्ट्र की रक्षा करने में सफल होता है? इसका उपदेश देते हुए लिखा है कि जो शासक निद्रा-आलस्य आदि प्रमादों से रहित है तथा दिव्य गुणों से सम्पन्न हैं वे सदा सबको दान देनेवाली भूमि (राष्ट्र) की रक्षा करते हैं[२]। अर्थात् राष्ट्र की भूमि में उत्पन्न होनेवाले सभी खाद्यपदार्थ-फल-फूल-वनस्पति ओषधि आदि से मनुष्यों का भरण-पोषण होता है ऐसी राष्ट्रभूमि इन सब पदार्थों को उत्पन्न करके राष्ट्रवासियों को प्रदान करती है इसलिये इसे विश्वदानी कहा है[३]।

राष्ट्रवासी :- राष्ट्र में निवासी किस प्रकार रहते हैं ? इसका उपदेश देते हुए लिखा है कि जिस राष्ट्र में विविध प्रकार की क्रीड़ाओं को करनेवाले मनुष्य रहते हैं। आपस में प्रेमपूर्वक रहते हुए गीत गाते हैं, नृत्य करते हैं, युद्ध के प्रारम्भ होने पर नगाड़े बजाकर उत्साहपूर्वक शत्रु को युद्ध के लिये ललकारते हैं, ऐसे वीरभावों से ओतप्रोत होकर युद्ध करके शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, ऐसे वीर योद्धा अपने राष्ट्र की रक्षा करने में सफल हो जाते हैं वीर योद्धाओं के कारण उनका राष्ट्र शत्रुरहित हो जाता है। अर्थात् ऐसे शक्ति सम्पन्न राष्ट्र पर कोई भी राष्ट्र आक्रमण करने का विचार नहीं करता

है। जो राजा राष्ट्र पर आक्रमण करे और दास बनाने का यत्न करे तो सार्वभौम संगठन अर्थात् संयुक्त राष्ट्रसंघादि संगठन ऐसा प्रयत्न करें कि शक्तिशाली राष्ट्र कमजोर राष्ट्र पर आक्रमण कर उसे नष्ट करने का यत्न न कर सकें।[४]

राष्ट्र का गुणगान :- राष्ट्रभक्ति का उपदेश देते हुए लिखा है कि हमारी मातृभूमि सभी नागरिकों (राष्ट्रवासियों) का भरण-पोषण करनेवाली है। सभी सम्पत्तियों को धारण करनेवाली है, सभी भोग्य पदार्थ तथा हिरण्यमयादि पदार्थों को धारण करनेवाली, सबको आश्रय देनेवाली, हमें धन और बल प्रदान करनेवाली है। इस प्रकार विविध गुणों से सम्पन्न यह धरती है[५]। जैसे माता सन्तान का भरण-पोषण करती है वैसे ही पृथ्वी (राष्ट्र) सभी प्राणियों का भरण पोषण करती है। इसलिये वेद में लिखा है कि यह धरती मेरी मां है और मैं इसका पुत्र हूँ[६]। इसलिए जैसे पुत्र मां की रक्षा करता है वैसे राष्ट्रवासियों को राष्ट्र की रक्षा करनी चाहिए। जिस राष्ट्र में हम रहते हैं उसकी रक्षा के लिये हमें बलिदान देना पड़े तो अपना बलिदान देकर राष्ट्र की रक्षा करनी चाहियें[७]। यदिं राष्ट्र के विकास-उन्नति के लिये हमें अपनी आय का कुछ अंश (कर-टैक्स के रूप में) देना पड़े तो देना चाहिये और राष्ट्र को सुरक्षित और विकसित करना चाहिये यह उपदेश इस सूक्त में दिया है।

सभी को प्रेमपूर्वक रहना :- सभी राष्ट्रवासियों को अपने राष्ट्र में प्रेमपूर्वक मिलकर रहना चाहिये, इसका उपदेश देते हुए लिखा है कि जिस प्रकार एक घर में रहनेवाले अनेक भाई विविध विचारोंवाले होते हैं, विविध भाषाओं को बोलनेवाले होते हैं तथा भिन्न भिन्न कर्म करनेवाले, स्वभाव और आचरण करनेवाले होते हैं किन्तु सभी एक घर में आपस में मिलकर प्रेमपूर्वक रहते हैं वैसे अपने अपने राष्ट्र में रहनेवाले व्यक्ति अनेक भाषाओं को बोलनेवाले होते हैं तथा भिन्न भिन्न विचारोंवाले होते हैं तो इन सबको आपस में मिलकर प्रेमपूर्वक रहना चाहिये[८]। यह उपदेश इस मंत्र में दिया है।

यक्ष्मा रोग को दूर करने के उपाय :- इस काण्ड के दूसरे सूक्त में यक्ष्मा रोग के निवारण करने के उपायों का उपदेश दिया है। वैश्वदेवी नामक ओषधि के सेवन से यक्ष्मा रोग दूर हो जाता है[९]। यक्ष्मा रोग प्राणायाम करने से भी दूर होता है, ऋषि लोग इक्कीस बार (त्रि सप्तकृत्वः) प्राणायाम करके यक्ष्मारोग के कारण होनेवाली मृत्यु को दूर कर देते हैं[१०]। अर्थात् प्राणायाम से यक्ष्मा रोग नष्ट होने के कारण इस रोग के कारण होनेवाली मृत्यु भी नहीं होती है यह उपदेश इस सूक्त में दिया है। यक्ष्मा रोग को काली भेड़ के दूध (पशूनां कृष्णा अविः) सोने और चांदी से निर्मित ओषधियां (चन्म्) तथा उड़द के आटे (पिष्टा माषाः) के सेवन तथा उसकी यज्ञ में दी गयी

आहुतियां (हव्यम्) तथा उत्तम जलवायु युक्त अरण्य (वन) प्रदेश के सेवन से यक्ष्मा रोग दूर किया जा सकता है[११]। तिल तथा तिल की खली की यज्ञ में आहुति देकर यक्ष्मा रोग को दूर किया जाता है[१२]। यज्ञ में रोगनाशक ओषधियों की आहुति देने से उन ओषधियों से निकलनेवाली गैस (वायु) से यक्ष्मा रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार इस रोग को नष्ट करने के विविध उपाय इस सूक्त में बताये हैं।

गृहस्थ व अन्य आश्रम :- गृहस्थ जीवन में मनुष्य को अत्यन्त परिश्रम करते हुए सांसारिक पदार्थों को प्राप्त करने का पूरा प्रयत्न करना चाहियें, जिससे उसके घर में सभी प्रकार के खाद्य पदार्थ विद्यमान रहें। यह उपदेश देते हुए वेद मन्त्र में लिखा है कि जो दूध की धाराएं (मधुना) शहद से बढ़ाई हुई और घी से मिश्रित (घृतेन मिश्राः) हैं वे अमृत का केन्द्र हैं अर्थात् दूध-घृत-शहद आदि के सेवन से मनुष्य का स्वास्थ्य ठीक रहता है। इसलिये ये पदार्थ घर में पर्याप्त मात्रा में रहने चाहियें। सुखपूर्वक गृहस्थ जीवन व्यतीत करके इस आश्रम के बाद वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में भी प्रवेश करना चाहिये। इसलिये गृहस्थी को अधिक से अधिक साठ वर्ष (षष्ठ्यां शरत्सु) के बाद अवश्य गृहस्थाश्रम का परित्याग कर देना चाहिये। यह सन्देश भी वेदमन्त्र में दिया है[१३]। गृहस्थाश्रम में सुखों का उपभोग करके (अभि इच्छात्) अगले आश्रम (वानप्रस्थ, संन्यास) की इच्छा करे, यह उल्लेख इस मंत्र में किया गया है।

परमात्मा की व्यवस्था :- परमात्मा की न्याय व्यवस्था अपने आप में पूर्ण है उसमें किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं है। उसकी न्याय व्यवस्था में किसी की सिफारिश नहीं चलती है। मित्र-बन्धु बान्धवादि कोई भी उसकी दण्ड व्यवस्था में अपना हिस्सा नहीं बंटा सकता है, जिस व्यक्ति ने जैसा कर्म किया है, उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है। इसलिये मनुष्य को सदा सत्कर्म करना चाहिये[१४]। इसलिये अगले मन्त्र में उपदेश दिया है कि हम प्रिय करनेवालों का प्रिय करें और जो हमसे द्वेष करते हैं हम उनके साथ द्वेषभाव न करें, उनकी व्यवस्था परमात्मा को सुपूर्द कर दें अर्थात् वह उनको दण्ड देगा ही, हम उनके साथ द्वेष भाव न रखें[१५]। इसके पश्चात् परमात्मा की सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए लिखा है, पूर्व दिशा का अधिपति परमात्मा अग्नि है (१२-३-५५)। दक्षिण दिशा का स्वामी इन्द्र (१२-३-५६) प्रतीची (पश्चिम) दिशा का स्वामी वरुण (१२-३-५७), उत्तर (उदीची) दिशा का स्वामी सोम (१२-३-५८) ध्रुवा (नीचे की) दिशा का स्वामी विष्णु (१२-३-५९) तथा ऊर्ध्व (ऊपर की) दिशा का स्वामी बृहस्पति है(१२-३-६०)। ऐसे परमेश्वर के अस्तित्व का प्रमाण मानते हुए दूसरों से द्वेष न करने का संकल्प दोहराया है।

वशा अर्थात् वेदवाणी :- इस काण्ड के चौथे सूक्त में 'वशा' का वर्णन है। वशा का अर्थ वेदवाणी है क्योंकि 'वशा' का पर्यायवाचक शब्द गौ का प्रयोग मन्त्रों में हुआ है तथा गौ का अर्थ वाणी (गो: वाङ्नाम निघण्टु १-११) है। ब्रह्म की वशा (गौ) अर्थात् परमात्मा की वाणी-वेदवाणी का वर्णन इस सूक्त में है। वेदवाणी के प्रचार की स्वतंत्रता के लिये निवेदन करने हेतु वेदों के विद्वान् राजा के पास जाते हैं[१६]। वेदवाणी की महत्ता का वर्णन करते हुए उपदेश दिया है जिस प्रकार सुरक्षित खजाना (शेवधि:) सुखदायक होता है। उसी प्रकार वेदों की वाणी मनुष्यों के लिये सुख देनेवाली होती है[१७]। वेदवाणी विद्वानों का सुरक्षित खजाना है क्योंकि इसके द्वारा विविध विषयों का यथार्थ ज्ञान होता है। ईश्वरीय ज्ञान वेदवाणी 'विलिप्ती' अर्थात् राग-द्वेषादि के लेप से रहित होने का उपदेश देनेवाली है। यह 'सूतवशा' अर्थात् यह इन्द्रियों को वश में करके सन्तान प्राप्ति का उपदेश देनेवाली है। इतना ही नहीं अपितु यह 'वशा' अर्थात् इन्द्रियों को वश में रखने का उपदेश देनेवाली है। ऐसी वेदवाणी को वे लोग नहीं जान पाते हैं जो सांसारिक भोगों में फंसे हुए हैं[१९]।

ब्रह्मगवी (वेदज्ञान) :- इस काण्ड के पांचवें सूक्त में 'ब्रह्मगवी' का वर्णन है। ब्रह्म की गौ को ब्रह्मगवी कहते हैं। गौ का अर्थ वाणी, ब्रह्म की गौ अर्थात् ब्रह्म की वाणी यह अर्थ 'ब्रह्मगवी' शब्द का अर्थ है। गौ का अर्थ गाय भी होता है, गाय पशुओं में श्रेष्ठ मानी जाती है। गो दुग्ध को अमृत कहा गया है। गाय का घी विषनाशक है, गाय का दूध-दही-घी-छाछ (मट्ठा) मूत्र-गोबरादि सभी पदार्थों में विशेष गुण हैं। इसलिये वेदों में गाय की बहुत प्रशंसा की गयी है। इस प्रकार दो अर्थ ब्रह्मगवी शब्द के हैं।

वेदवाणी की प्रशंसा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वेदों का ज्ञान परिश्रम करने से प्राप्त होता है, तपस्वी जीवन व्यतीत करने से वेदज्ञान प्राप्त होता है इसमें यथार्थ नियमों का वर्णन है। परमात्मा की कृपा, तप तथा श्रम से वेदों का ज्ञान होता है[२०]। मनुष्य अपना भरण-पोषण कर सकें यह उपदेश वेदों में दिया है, यह ज्ञान श्रद्धापूर्वक परिश्रम करने से प्राप्त होता है, सभी के कल्याण का उपदेश इस मन्त्र में दिया गया है।[२१]

गौ की महिमा :- गाय की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है कि जो मनुष्य परमात्मा के द्वारा रचना की गयी श्रेष्ठ पशु 'गौ' की हत्या करता है या जो गाय को हानि पहुंचाता है तो उसका पूर्णतया विनाश हो जाता है[२२]। गाय की प्रशंसा करते हुए वेद में इसे 'वैश्वदेवी' कहा है अर्थात् गाय सब देवों की प्रतिनिधि रूपा है। ओषधियों में 'दैवी' प्रकार की ओषधि श्रेष्ठ होती है इसी प्रकार गाय के घी दुग्धादि सभी पदार्थ

रोग निवारण में और बल प्रदान करने में सर्व श्रेष्ठ हैं[२३]। इस प्रकार अनेक मन्त्रों में गौ की महिमा का वर्णन है तथा गो हत्या करनेवाले का विनाश हो जाता है। वह सदा दुःखी रहता है यह वर्णन इस सूक्त में किया गया है।

प्रमाण :-

१. *सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।*
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवीं नः कृणोतु॥ (२-१-१)
२. *यां रक्षन्त्य स्वप्ना विश्वदानी देवा .... वर्चसा॥* (१२-१-७)
३. *यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति .... असपत्नं मा पृथिवी कृणोतु॥* (१२-१-१४)
४. *यो नो द्वेषत् पृथिवि .... पूर्व कृत्वरि॥* (१२-१-१४)
५. *विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।*
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निरिन्द्र .... दधातु॥ (१२-१-६)
६. *यत् .... माता भूमिः पूत्रोऽहं पृथिव्याः .... ॥* (१२-१-१२)
७. *उपस्थास्ते .... वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥* (१२-१-६२)
८. *जनं बिभ्रती वहुधा विनाचसं नाना धर्माणं पृथिवी ....॥* (१२-१-४५)
९. *वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा ... मदेम॥* (१२-२-२८)
१०. *उदीचीनैः पथिभिर्वायुम् .... पदयोपनेन॥* (१२-२-२९)
११. *अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः।*
भाषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व॥ (१२-२-५३)
१२. *दूषीकां जरतीमिष्ट्वा तिलूपिञ्जं दण्डनं नडम्।*
तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ॥ (१२-२-५४)
१३. *वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः।*
सर्वास्ता अव .... पष्ट्यां शरत्सु .... अभीच्छात्॥ (१२-३-४१)
१४. *न किल्विषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममममानः एति।*
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनराविशति॥ (१२-३-४८)
१५. *प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यत मे द्विषन्ति॥* (१२-३-४९)
१६. *य एना वनिमायन्ति तेषां देवकृता .... ॥* (१२-४-११)
१७. *यथा शेवधि निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा .... ॥* (१२-४-१४)
१८. *वशा चरन्ती वहुधा देवानां निहितो निधिः .... ॥* (१२-४-२९)
१९. *विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा।*
तस्या नाश्नीयाद ब्राह्मणो य आश सेत भूत्याम्॥ (१२-४-४४)
२०. *श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्तेश्रिता॥* (१२-५-१)
२१. *स्वधया परिहिता श्रद्धया .... लोको निधनम्॥* (१२-५-३)
२२. *सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं .... मृत्योः .... आ द्यति॥* (१२-५-१५)
२३. *वैश्वदेवी .... कूल्वजमावृता॥* (१२-५-५३)

त्रयोदश काण्ड

काण्ड परिचय :- तेहरवें काण्ड में चार सूक्त तथा १८८ मन्त्र हैं। इसमें 'रोहित' का वर्णन है। रोहित-परमात्मा को, राजा को तथा सूर्य को कहा गया है। प्रथम सूक्त के मन्त्रों में इन तीनों का वर्णन किया गया है। परमात्मा को रोहित के अतिरिक्त 'अत्रि' के रूप में भी लिखा है तथा जो व्यक्ति ब्रह्मज्ञानियों और वेद के विद्वानों को कष्ट देते हैं वे अपराधी हैं, परमात्मा उन्हें दण्ड देता है, राजा भी उनको दण्डित करे। यह उपदेश इस मन्त्र में दिया गया है क्योंकि ब्रह्मज्ञानी और वैदिक विद्वान् अपने ज्ञान और उपदेश से लोगों का कल्याण करते हैं। ऐसे परोपकारियों को जो पीड़ा देता है, परमात्मा उन्हें दण्ड देता है। परमात्मा को रोहित-अत्रि के अतिरिक्त 'सविता' के रूप में भी वर्णन किया है, सविता परमात्मा के लिये ही नहीं अपितु सूर्य के लिये भी प्रयुक्त है। इस प्रकार रोहित-अत्रि-सविता का वर्णन इस सूक्त में है।

परमात्मा-राजा और सूर्य :- 'रोहित' शब्द परमात्मा-राजा और सूर्य के लिये प्रयुक्त होता है 'रुह' धातु से यह शब्द बनता है, परमात्मा इस सृष्टि का जन्मदाता अर्थात् निर्माता है, इसका प्रादुर्भाव करता है। राजा भी अपने राष्ट्र के औद्योगिक विकास के द्वारा धन-सम्पत्ति, वैभवादि का प्रादुर्भाव करता है अर्थात् इन्हें बढ़ाता है तथा सूर्य के कारण भी वृक्ष-वनस्पतियां अन्न-ओषधियों का प्रादुर्भाव होता है इस प्रकार परमात्मा-राजा और सूर्य को रोहित इस सूक्त में कहा गया है।

रोहित-राजा :- राजा को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि हे बल शालिन् राजन्! इस राष्ट्र में प्रिय और सत्य वाणी बोलनेवाले प्रवेश करें अर्थात् इस राष्ट्र की जनता सत्य और प्रिय बोलती है ऐसे राष्ट्र पर तू शासन कर। संसार पर शासन करनेवाले परमात्मा (रोहित) ने इस संसार को उत्पन्न किया, उस परमेश्वर ने तुम्हें राष्ट्र की सेवा करने के लिये, प्रजा का पालन करने के लिये अवसर प्रदान किया है[१]। राजा बलवान् हो तथा वह राज्य की प्रजा, गायादि पशुओं की रक्षा करे, वनस्पति ओषधि तथा जलादि की समुचित सुरक्षा और समृद्धि करे। यह सन्देश इस मन्त्र में दिया है।[२]

रोहित-परमात्मा :- रोहित को परमात्मा के रूप में वर्णन करते हुए उपदेश दिया है कि परमात्मा सब पर आरूढ़ है अर्थात् परमात्मा का अनुशासन सब पर चलता है। परमात्मा के ऊपर किसी का अनुशासन नहीं है। इसीलिये परमात्मा सर्वोपरि (रोहित) है। उस परमात्मा ने ही द्युलोक और पृथिवी लोक को उत्पन्न किया है। उसने अपने बल से ही इनको सुदृढ़ कर रखा है इन दोनों लोको में अजन्मा परमेश्वर ने वायु को फैला रखा है[३]। परमेश्वर ने द्युलोक पृथिवी लोक को धारण (स्तभितम्) कर रखा

है, उसने अन्तरिक्ष और सभी लोक-लोकान्तरों (सृजांसि) को बनाया है और धारण कर रखा है, उस परमात्मा की कृपा से ही श्रेष्ठ जन मोक्ष को प्राप्त करते हैं[४]। परमात्मा पृथिवी के गर्भ में (पृथिव्या गर्भम्) बसा हुआ है, वह द्युलोक-अन्तरिक्षादि सभी लोक लोकान्तरों के अन्दर विद्यमान है। अर्थात् वह सर्वत्र व्यापक है[५]। परमात्मा हजारों किरणोंवाले सूर्य के समान सुखों की वर्षा करनेवाला है तथा वह जातवेदा अर्थात् जितने भी पदार्थ उत्पन्न हुए हैं उनको जाननेवाला अर्थात् सर्वज्ञ है। ऐसा परमात्मा हमें न छोड़े[६] अर्थात् हमारा आचरण शुद्ध-पवित्र हो जिससे हम परमात्मा के सदा निकट रहें, परमात्मा की आज्ञा (अन्तःप्रेरणा) के विरुद्ध व्यवहार न करें, जिससे हम परमात्मा से दूर हो जाय, अर्थात् परमात्मा हमारा त्याग न करे। परमात्मा ने सूर्य-चन्द्रमा इन दो का निर्माण कर संसार को प्रकाश प्रदान किया है (१३-१-४७)।

रोहित-सूर्य :- रोहित को सूर्य के रूप में प्रस्तुत करते हुए वेद में उपदेश दिया है कि सूर्य की किरणें अन्धकार को दूर करनेवाली, रोग को नष्ट करनेवाली हैं। अपनी किरणों के द्वारा सूर्य जल का पान करता है अर्थात् सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से पानी वाष्प के रूप में आकाश में जाता है और बादल बनकर बरसता है। प्रकाशमान सूर्य सभी ग्रहों-उपग्रहों को द्युलोक में आरूढ़ होकर प्रकाशित कर रहा है[७]। सूर्य अपनी किरणों के द्वारा उग्र प्रकाश करनेवाला है, सूर्य की गर्मी से फसल पकती है, अन्नादि प्रदान कर सूर्य सुखों की वर्षा कर रहा है[८]। सूर्य की उष्णता से अन्न-वनस्पति-ओषधि आदि परिपक्व होकर मनुष्य के जीवन के लिये उपयोगी होती हैं। उदय होता हुआ सूर्य मेरे शत्रुओं को अर्थात् रोग कीटाणुओं को नष्ट कर दे[९]। सूर्य की किरणों से रोग कीटाणु नष्ट होते हैं। सूर्य प्राणियों का चक्षु है[१०]। अर्थात् सूर्य के कारण ही मनुष्य आंखों से देख पाता है। इसलिये इसे प्राणियों का चक्षु वेद में बताया है। इस प्रकार रोहित शब्द परमात्मा-राजा और सूर्य के अर्थ में प्रथम सूक्त के मन्त्रों में प्रयुक्त हुआ है।

सौर और चान्द्रमास :- अत्रि अर्थात् परमात्मा ने सौर और चान्द्रमास के निर्माण के लिये सूर्य और चन्द्रमा को बनाया। यह सूर्य तपता हुआ समस्त जगत् को प्रकाशित करता है[११]। अद् भक्षणे धातु से 'अत्रि' शब्द बनते हैं, प्रलयकाल में परमात्मा जगत् का भक्षण करता है (संसार प्रलयावस्था में कार्य रूप में नहीं रहता यही इसका परमात्मा द्वारा भक्षण करना है।) इसलिये परमात्मा को मन्त्र में अत्रि कहा गया है। बारह राशियों में सूर्य के संक्रमण से बारह सौर मास बनता है, सूर्य के प्रकाश का चन्द्रमा पर पड़ना न पड़ना या आधे चन्द्रमा पर प्रकाश पड़ने से ही पूर्णिमा-अमावस्या और अष्टमी आदि का ज्ञान होता है। अतः चान्द्रमासों का निर्माण भी सूर्य के कारण ही होता है। सूर्य की किरणें प्रकाशमान सूर्य का बोध कराती हैं[१२]। सूर्य की सात किरणें पवित्र तथा प्रकाशयुक्त हैं (१३-२-२३)।

सर्वज्ञ प्रभु :- परमात्मा विश्व का द्रष्टा है, वह सबका ज्ञान रखता है, सब ओर उसका मुख, हाथ हैं, वह सब ओर से विस्तारवाला है। वह परमाणुओं के द्वारा द्युलोक-पृथिवी आदि सभी लोक-लोकान्तरों की रचना करता है और अपने बल से सबका भरण-पोषण करता है। वह परमात्मा एक है[१३]। अर्थात् परमात्मा-सर्वज्ञ-सर्वव्यापक-सर्वान्तर्यामी और सर्वशक्तिमान् तथा विश्व का पालक है। परमात्मा का विचित्र (चित्रम्) बल है। वह सभी का प्रकाशक है[१४]। रोहित अर्थात् सर्वोपरि परमात्मा काल रूप है वह सृष्टि के प्रारम्भ से प्रजा का पालन करनेवाला प्रजापति है वह यज्ञों में मुख अर्थात् मुख्य है उसी ने प्रकाशमान द्युलोक की रचना की है[१५] परमात्मा सर्वगुण सम्पन्न है। यह अनेक मन्त्रों द्वारा उपदेश देते हुए स्पष्ट किया है।

विद्वानों के द्वेषी को दण्ड :- विद्वानों की रक्षा करना, राजा का कर्तव्य है। इसका उपदेश देते हुए वेदमन्त्र में लिखा है कि जो व्यक्ति ब्रह्म ज्ञानी और वेदों के विद्वान् को कष्ट देता है, उन्हें हानि पहुँचाता है ऐसे दुष्ट व्यक्ति को शासन करनेवाला राजा कठोर मृत्यु दण्ड दे, उसका क्षय कर डाले[१६]। उनको कठोर बन्धन में डाल दे। ऐसे व्यक्तियों को दण्डित करने से ब्रह्मज्ञानी सामान्य जनों को ब्रह्म के स्वरूप से अवगत कराने का तथा वेदों के विद्वान् सत्याचरण का उपदेश देकर जन कल्याण कार्य करते रहेंगे अन्यथा लोक उपकार का कार्य रुक जायगा। जिससे सभी मनुष्यों की हानि होगी। अतः राजा विद्वानों के द्वेषी व्यक्ति को दण्ड दे यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है। समुचित राजकीय दण्ड व्यवस्था होने से विद्वानों और सामान्य जनों की रक्षा होती है।

सूर्य की तीन गतियाँ :- सूर्य की गति तीन प्रकार से होती है[१७]। यह सन्देश वेदमन्त्र में देते हुए स्पष्ट किया है जब सूर्य विषुवती (भूमध्य) रेखा पर उदय और अस्त होता है तब दिन और रात बराबर होते हैं, यह एक प्रकार की सूर्य की गति है। वर्ष में यह दिन दो बार २१ मार्च और २३ सितम्बर को आता है। सूर्य की दूसरी गति जब सूर्य कर्क राशि पर उदय और अस्त होता है तब सूर्य उत्तरायण की ओर गति करता है। उस समय दिन बड़ा और रात छोटी होती है यह दिन २१ जून है तथा सूर्य की तीसरे प्रकार की गति अर्थात् सूर्य जब मकर राशि पर उदयास्त होता है तब दिन छोटा और रात बड़ी होती है यह २३ दिसम्बर का दिन होता है। इस प्रकार 'दिवः तिस्र' सूर्य की तीन गतियाँ हैं १. विषुवत् (भूमध्य) रेखा २. विषुवत् रेखा से उत्तर की ओर ३. विषुवत् रेखा से दक्षिण की ओर।

परमात्मा-शरीर आत्मा और समाज के बल का देनेवाला है उसके अनुशासन में समस्त जड़ चेतन जगत् रहता है[१८]। यह संकेत इस मन्त्र में किया है।

परमात्मा-सविता :- परमात्मा सविता है अर्थात् समस्त संसार का निर्माता है। वह निर्माता ही नहीं अपितु सबका धारण-पोषण करता है। वह सबका प्राण स्वरूप और आकाश के समान व्यापक है[१९]। परमात्मा अर्यमा अर्थात् न्यायाधीश भी है। वरुण-शान्ति देनेवाला, रुद्र अर्थात् दुष्कर्म करनेवालों को दण्ड देकर रुलानेवाला है और देवों का देव महादेव है[२०]। वह सविता देव परमेश्वर प्रजाओं के कल्याण के लिये अलग अलग रूप से सबको देखता रहता है[२१]। अर्थात् मनुष्य जो भी शुभाशुभ कर्म करते हैं उनको यथार्थ रूप से जानता है तथा तदनुरूप उन कर्मों का फल मनुष्यों को देता है। वह सविता परमात्मा एक ही है। वह परमात्मा दो-तीन-चार-पांच-छः-सात-आठ-नौ या दस नहीं है[२२]। अर्थात् एक से अधिक परमात्मा नहीं है। वह एक परमेश्वर ही सबके कल्याण के लिये सभी को अलग अलग रूप में देखता है। सभी प्राणियों के कर्मों को यथावत् जानता है[२३]।

सविता की महिमा :- सविता देव की महिमा का वर्णन करते हुए आगे लिखा है कि सब दिव्य गुण सम्पन्न पदार्थ उसी एक सविता देव में समाये हुए हैं[२४]। अर्थात् जहाँ जहाँ भी दिव्यता दिखलाई देती है वह परमात्मा की दी हुई है। भूत और भविष्य का ज्ञान भी वह सविता देव जानता है[२५]। वह सविता ही मृत्यु और अमृत है[२६] ये सारे गतिशील तारागण, नक्षत्र-गृहादि-ग्रह-उपग्रहादि उस सविता देव की आज्ञा (अनुशासन) में ही चल रहे हैं[२७]। वह सविता देव ओषधियों को उत्पन्न कर रहा है कल्याणकारिणी और सुखदायिनी वर्षा कर रहा है, वह जन समुदाय की वृद्धि कर रहा है[२८]। हे सम्पत्तिशाली सविता देव! यह सब आपकी महिमा है, आपके कार्य तो विस्तार से सैकड़ों प्रकार के हैं[२९]। इस प्रकार सविता की महिमा का वर्णन करके सूक्त के अन्तिम मन्त्र में सविता देव को साधक प्रणाम करता है और उससे कृपा दृष्टि की याचना करता हुआ अन्न-यश-तेज-ब्रह्म वर्चस्विता की प्रार्थना करता है[३०]।

प्रमाण :-

१. *उदेहि वाजिन् यो.... राष्ट्रं प्रविश सूनृतावत्।*
यो रोहितो विश्वमिदं जजान सत्वा... बिभर्तु॥ (अथर्व. १३-१-१)

२. *उद् वाज आगन् यो.... द्विपद आ वेशयेह॥* (अथर्व. १३-१-२)

३. *रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान।*
तत्र शिश्रियेऽज एकपादोऽदृहद् द्यावापृथिवीबलेन॥ (अथर्व. १३-१-६)

४. *रोहितो द्यावापृथिवी..... तेन स्वस्तभितं तेन नाकः।*
तेनान्तरिक्षं.... रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन्॥ (अथर्व. १३-१-७)

५. *अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्ते.... व्यानशे॥* (अथर्व. १३-१-१६)

६. *सहस्रशृंगो वृषभो जातवेदा... मा हासीत्....॥* (अथर्व. १३-१-१२).

७. *सूर्यस्याश्वा हरयः.... रोहितो भ्राजमानो.... विवेश॥* (अथर्व. १३-१-२४)

८. यो रोहितो वृषभस्तिग्मश्रृंग........ सृजन्ते ॥ (अथर्व. १३-१-२५)

९. उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नान्.... तमः ॥ (अथर्व. १३-१-३२)

१०. सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरारुरोह... ॥ (अथर्व. १३-१-४५)

११. दिवि त्वात्रिरधारयत सूर्या मासाय..... अचाकशत् ॥ (अथर्व. १३-२-१२)

१२. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति.... विश्वाय सूर्यम् ॥ (अथर्व. १३-२-१६)

१३. यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो.... देव एकः ॥ (अथर्व. १३-२-२६)

१४. चित्रं देवानामुदगादनीकं...... तस्थुषश्च ॥ (अथर्व. १३-२-३५)

१५. रोहितः कालो अभवत्.... स्वराभरत् ॥ (अथर्व. १३-२-३९)

१६. य इमे.... य एवं विद्वांसं ब्राह्मण जिनाति । उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रतिमुञ्च पाशान् ॥ (अथर्व. १३-३-१)

१७. निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह ----तिस्रस्त्रीणिरजांसि ..... पाशान् ॥ (अथर्व. १३-३-२१)

१८. य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते.... पाशान् ॥ (अथर्व. १३-३-२४)

१९. स सविता स विधर्ता सवायुर्नम उच्छ्रितम्.... ॥ (अथर्व. १३-४-३)

२०. सोऽअर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ॥ (अथर्व. १३-४-४)

२१. स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ (अथर्व. १३-४-११)

२२. य एतं देवमेकवृतं वेद (१३-४-१५) न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो.... न पंचमो न षष्ठः सप्तमो... नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥ (अथर्व. १३-४-१६ से १८)

२३. स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न.... ॥ (अथर्व. १३-४-१९)

२४. सर्वे अस्मिन् देवा-एकवृतो भवन्ति.... ॥ (अथर्व. १३-४-२१)

२५. भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्चस्वर्गश्च... ॥ (अथर्व. १३-४-२३)

२६. स एव मृत्यु सोऽमृतं.... स रक्षः ॥ (अथर्व. १३-४-२५)

२७. तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते.....॥ (अथर्व. १३-४-२७)

२८. यद् वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद् वा....॥ (अथर्व. १३-४-४३)

२९. तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥ (अथर्व. १३-४-४४)

३०. नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य... यशसा तेजसा... वर्चसेन ॥ (अथर्व. १३-४-५५-५६)

चतुर्दश काण्ड

काण्ड परिचय :- चौदहवें काण्ड में दो सूक्त हैं तथा इनमें १३९ मन्त्र हैं। इस काण्ड में विवाह तथा वधू के गुण-आभूषण-वस्त्रादि का वर्णन है। विवाह संस्कार में प्रयुक्त मन्त्र तथा उनमें पति-पत्नी के कर्तव्य और गृहस्थ धर्म के विषय में सुन्दर उपदेश दिया गया है। वधू को घर की साम्राज्ञी कहा गया है, वह पति की अनुव्रता हो तथा घर में सास-ससुरादि का सम्मान करती रहे, उनके प्रति सदा नम्रभाव बनाये रखे। पति-पत्नी को परस्पर सुमधुर भाषण करना चाहिये तथा अपने गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाना चाहिये यह उपदेश दिया गया है।

सत्य व्यवहार :- गृहस्थ जीवन में पति-पत्नी को परस्पर सत्य का व्यवहार करना चाहिये, असत्य व्यवहार का ज्ञान होने पर दोनों एक दूसरे के प्रति सन्देह करने लगते हैं, जिससे गृहस्थ जीवन दुःखदायी हो सकता है क्योंकि सारा संसार सत्य पर आश्रित है। इसलिये सत्य बोलना-सत्य को जानना और सत्य का व्यवहार करना चाहिये। इस विषय में उपदेश देते हुए लिखा है कि सत्य के कारण यह भूमि टिकी हुई और सत्य के आश्रित ही द्युलोक है[1]। इनका धारण करनेवाला परमात्मा भी सत्य स्वरूप है। इसलिये सदैव सत्य का व्यवहार करना चाहिये।

पति से पृथक् न होना :- इस काण्ड के प्रारम्भिक मन्त्रों में विवाह योग्य कन्या के लिये सूर्या (यदयात् सूर्या पतिम् १४-१-१०) शब्द का प्रयोग हुआ है। परमात्मा अर्यमा अर्थात् न्यायकारी है इसलिये उससे प्रार्थना की गयी है कि जिस प्रकार पका हुआ खरबूजा अपनी डाल से स्वतः छूट जाता है, पृथक् हो जाता है उसी प्रकार यह वधू पिता के घर को तो छोड़ देती है किन्तु इसे पति के घर से मत छुड़ाना अर्थात् जिसके साथ विवाह हो जाय उसको आजीवन उस का साथ निभाना चाहिये। यह सन्देश वेद ने दिया है[2]। गृहस्थ में प्रवेश होनेवाली पुत्री को उपदेश देते हुए पिता कहता है कि हे पुत्री! तेरा पति ऐश्वर्य सम्पन्न धर्मात्मा और यशस्वी है। तू पति के घर की स्वामिनी-मालकिन होकर रहना, अपना ऐसा व्यवहार रखना कि तेरे घर के नौकर और पुत्र तेरे वश में रहनेवाले हों[3]। गृहस्थ आश्रम में व्यक्ति को पुत्र-पौत्र दौहित्रादि के साथ रहते हुए सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिये, गृहस्थाश्रम से पलायन नहीं करना चाहिये।

परिश्रम-सत्यवाणी और गोपालन :- गृहस्थ स्त्री पुरुषों को अत्यधिक श्रम करते हुए धन, ऐश्वर्य, यश, ज्ञानादि प्राप्त करना चाहिये। यह उपदेश देते हुए दोनों को निर्देश दिया है कि सत्य का आचरण करना चाहिये तथा दोनों की वाणी में मधुरता

(चारु वाचम्) रहे। वेदों के विद्वान् पुरोहित का कर्तव्य है कि गृहस्थियों को उपदेश देता रहे और उनका मार्ग निर्देश करता रहे, जिससे वे गृहस्थ में रहते हुए परिश्रम करके धनैश्वर्यों को प्राप्त करें तथा सत्य और सुमधुर वाणी का प्रयोग करें[५]। गृहस्थ को उपदेश दिया है कि उसे गोपालन अवश्य करना चाहिये, घर में गाय के घी, दूधादि के सेवन से गृहस्थियों का स्वास्थ्य भी ठीक रहता है और घी से देवयज्ञ भी सम्पन्न हो जाता है, गृहस्थ पति-पत्नी को अपने व्यवहार से माता-पितादि वयोवृद्धों को सदा प्रसन्न रखना चाहिये[६]। गाय सदा अवध्या होती है अर्थात् उसकी कभी भी हत्या नहीं करनी चाहिये। यह भी निर्देश वेद (१४-१-३६) में दिया है।

पत्नी के गुण :- पत्नी के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसे रथ के धुरे के समान होना चाहिये जैसे धुरा (जो लोहे का डंडा होता है जिस पर रथ के दोनों पहिये घूमते हैं) रथ का आधार है, उसके आश्रित ही रथ होता है उसी प्रकार पत्नी ऐसी सद्गुणों से सम्पन्न हो कि वह पूरे परिवार का आधार बन सके, जिसके विना सारा परिवार छिन्न-भिन्न हो जाय। यह गुण पत्नी में होना चाहिये। उसमें दूसरा गुण जल के समान शीतलता अर्थात् उसका शान्त स्वभाव होना चाहिये, पानी को पीने से व्यक्ति का क्रोध शान्त हो जाता है, स्नान करने से शरीर की गर्मी दूर हो जाती है, आंखो पर पानी के छींटे देने से आंखों की जलन शान्त हो जाती है और आंखों को ठंडक मिलती है वैसे ही पारिवारिक क्रोध को शान्त करने की क्षमता-योग्यता और स्वभाव पत्नी का होना चाहिये। तीसरा गुण गो दुग्ध के समान सात्विकता तथा भरण पोषण की क्षमता होनी चाहिये[७]। सात्विक प्रवृति के कारण वह अपनी सन्तान को सात्विक बनाने में सफल होगी तथा परिवार के सभी सदस्यों और अतिथियों को भोजनादि के द्वारा तृप्त प्रसन्न रखकर सभी का भरण पोषण कर सकती है। ये गुण पत्नी में होने चाहियें[८]। पत्नी पति को शारीरिक सुख, अन्न का सुख अर्थात् खाद्यपदार्थों को पर्याप्त रखकर, भोजनादि द्वारा सुख तथा अनुकूलता-प्रतिकूलता में सदैव साथ देकर (सहयोग करके) प्रसन्न रखे[८]।

पत्नी घर की रानी :- पत्नी मन से सदा प्रसन्न रहने की भावना रखे, उत्तम सन्तान की आकांक्षा, सौभाग्य तथा धन ऐश्वर्य की कामना करती हुई पति की अनुव्रता हो अर्थात् पति के व्रतों का अनुसरण करनेवाली, मोक्ष प्राप्ति के लिये सदा साधना में संलग्न रहे[९]। मन में सदा सद्विचारों एवं प्रसन्नता से उत्तम सन्तान प्राप्त कर सकती है। अपने सद्गुणों से पत्नी घर की साम्राज्ञी बने[१०] वह अपने सद्व्यवहार से सास-ससुर-देवर-ननदादि सभी के हृदयों पर राज्य करे। इस प्रकार सद्गुण सम्पन्न पत्नी घर की रानी बन कर रहे, यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है।

पाणिग्रहण और पति :- विवाह संस्कार में पति-पत्नी का हाथ ग्रहण (पाणिग्रहण) करता हुआ अपने कर्तव्यों की घोषणा करता हुआ कहता है कि मैं तुम्हारे सौभाग्य को बढ़ाने के लिये, तुम्हारा हाथ ग्रहण कर रहा हूँ। तू वृद्धावस्था पर्यन्त मेरे साथ रहनेवाली है न्यायाधीश परमात्मा ने गृहस्थ धर्म के कर्तव्यों का पालन हेतु मेरे लिये तुझे दिया है[११]। मैं सदा ध्यान रखूंगा। परमात्मा ने तेरा हाथ मुझे प्रदान किया है धर्म के अनुसार तू मेरी (धर्म) पत्नी और मैं तुम्हारा गृहरक्षक पति हूँ[१२]। तुम्हारे भरण पोषण का उत्तरदायित्व मैं अपने ऊपर लेता हूँ[१३] अर्थात् तुम्हारी जो भी आवश्यकता होगी उसको मैं पूरा करूँगा। हम दोनों मन से एक दूसरे के साथ बंधे हुए रहेंगे, क्योंकि मुझे तेरे लिये, तुझे मेरे लिये बनाया है। यह विचार अन्य किसी स्त्री-पुरुष के विषय में हम दोनों नहीं करेंगे[१४]। एक दूसरे से छिपा कर हम खाद्यपदार्थ का ही नहीं अपितु किसी तरह अन्य भोग नहीं करेंगे।

पति-पत्नी के गुण :- पति-पत्नी के गुणों का वर्णन करते हुए उपदेश दिया हैं कि पत्नी घर (ससुराल) में पति के भाई बहन (देवर-जेठ-ननदादि) को कष्ट न देनेवाली हो-पशु हत्या न करनेवाली अर्थात् मांस भक्षण करनेवाली न हो, पति के प्रतिकूल आचरणवाली या उसे कष्ट न देनेवाली हो तथा वन्ध्या न हो अर्थात् सन्तान को जन्म देने के अयोग्य न हो। पति के गुणों का उपदेश देते हुए लिखा है कि पति आचार-विचार में श्रेष्ठ हो, दुर्व्यसनी न हो। बृहस्पति अर्थात् वेदों का विद्वान्-ज्ञानी हो। इन्द्र अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी-आत्मिक बल का धनी हो, इन्द्रियों का दास भोगी-विलासी न हो तथा सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति से सम्पन्न हो, जिससे वंश परम्परा चलती रहे पति नपुंसक न हो, यह निर्देश वेद मंत्र में दिया है[१५]। पति दीर्घायु हो तथा वह तेजस्वी और स्वस्थ रहता हुआ सौ वर्ष तक जीवित रहे[१६]। यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है।

माता-पिता से पति पत्नी की आकांक्षा :- गृहस्थ में प्रविष्ट हुए पति-पत्नी अपने माता-पिता या सास-ससुर से क्या अपेक्षा रखते हैं? इसका उपदेश देते हुए वेदमन्त्र में उपदेश दिया है कि पति-पत्नी अपने माता-पिता से आग्रह करते हैं कि आप दोनों हम को सुमति अर्थात् सम्मति दीजिये, हमारा मार्गदर्शन कीजिये, जिससे हम सदा सन्मार्ग पर चलते रहें। आप हमारे (गोपा) रक्षक बने रहें। आप दोनों हमें आस्तिक बनाइये, हम परमात्मा की न्यायव्यवस्था को ध्यान में रखें तथा सत्कर्म और उसकी उपासना करते हुए उसका सानिध्य प्राप्त करने का यत्न कर सकें। आप हमें अपना उत्तराधिकारी भी बनावें, आप की भौतिक सम्पदा और आध्यात्मिक सम्पदा हमें प्राप्त होवे ऐसी कृपा हम पर कीजिये, आपसे हम यही चाहते हैं[१७]। गृहस्थ पति-पत्नी, उत्तम-श्रेष्ठ-वीर सन्तान प्राप्त करें (१४-२-६)।

पत्नी का व्यवहार :- पति अपनी पत्नी का कैसा व्यवहार अपने घर में चाहता है इसकी आकांक्षा रखता हुआ विवाह संस्कार में वेदमन्त्र द्वारा व्यक्त करता हुआ कहता है कि तुम क्रूरता रहित आंखोंवाली हो अर्थात् स्नेहभरी दृष्टि से सभी पारिवारिक जनों को देखना। 'अपतिघ्नी' अर्थात् पति को कष्ट न देनेवाली, उसके आदर्शों, श्रेष्ठ कार्यों के विरुद्ध आचरण करनेवाली न होना, तुम सबको सुख देनेवाली होकर रहना, शान्त स्वभाव और सबको शान्त रखनेवाली होना, सुसेवा-अर्थात् अच्छी सेवा करनेवाली होकर रहना, वीर-बलशाली सन्तान को जन्म देनेवाली सुप्रसन्न मनवाली तथा देवरों की शुभ कामना रखती हुई हमारे घर में रहना, तुम्हारे इन गुणों से हमारा परिवार समृद्धि-उन्नति करेगा अर्थात् उपरोक्त गुणोंवाली पत्नी जिस घर में होती है वह परिवार उन्नतशील होता है[१८]। इसलिये पति पत्नी से इन गुणों की आकांक्षा रखता है। पत्नी को घर में प्रति दिन अग्निहोत्र (यज्ञ) करना चाहिये यह उपदेश वेदमन्त्र (१४-२-१८) में दिया है। प्रसूतिगृह (जहाँ बच्चे का जन्म हुआ है वहाँ) भी अग्निहोत्र करना चाहिये (१४-२-२१)। पत्नी-सास-ससुर-पति आदि सभी के लिये सुखदायिनी हो यह सन्देश इस सूक्त में दिया है[१९]।

वधू को आशीर्वाद :- पत्नी के कर्तव्य और गुणों की अनेक मन्त्रों में चर्चा करने के बाद वधू की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यह सुमंगली अर्थात् मांगलिक कार्यों को करनेवाली और मंगल प्रेरणा देनेवाली है। हे सद् गृहस्थियों ! आप सब आइये, इस सुमंगली वधू को देखिये और इसे आशीर्वाद दीजिये[२०]। जो बूढ़ी स्त्रियां हैं और प्रतिकूल विचारोंवाली स्त्रियां हैं वे भी इस वधू को वर्चस्विनी और तेजस्विनी बनने का आशीर्वाद देवें[२१]। इस प्रकार वधू को आशीर्वाद देने तथा उसे देखने का संकेत देकर वेद में स्पष्ट किया है कि वेदों में पर्दा प्रथा या बुरके की प्रथा (मुस्लिम प्रथा) का वर्णन नहीं है।

अकाल मृत्यु :- हमारी असामयिक मृत्यु न हो इससे हम बचे रहें। यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है। हे वधू ! यदि तेरी पुत्री मृत्यु को प्रकट करती हुई रोती है अर्थात् परिवार में किसी की मृत्यु के कारण तुम्हारी पुत्री रोती हो तो उस मृत्यु के कारण रूपी पाप (एनसः) से परमेश्वर तुम्हें छुड़ावे[२२] अर्थात् कोई ऐसा पाप कर्म तुम्हारे द्वारा न हो जिससे तुम्हें अपनी पुत्री को मृत्युशोक करते हुए देखना पड़े। जिन रोगों के कारण असामयिक मृत्यु हो जाती है, जिन रोग कीटाणुओं के शरीर में प्रविष्ट होने से रोग होता है, अति प्रबल रोग मृत्यु का कारण हो सकता है इसलिये रोग कीटाणुओं को नष्ट करने का उपदेश वेद मन्त्र में दिया है[२३]। सूर्य की किरणों से रोग कीटाणु नष्ट होते हैं ऐसा भी वेद में उल्लेख है[२४]।

लाजा होम :– विवाह संस्कार में लाजा होम का विधान है जिसका उपदेश देते हुए लिखा है यह वधू लाजाओं की आहुति देती हुई बोलती है कि मेरा पति दीर्घ आयुवाला हो, वह सौ वर्ष तक जीवित रहे[२५]। लाजा की आहुति से यक्ष्मा रोग के कीटाणु नष्ट होते हैं तथा यह लाजा पाप का नाश करनेवाली है ऐसा वेद में लिखा है[२६]। इसलिये इसकी आहुति विवाह संस्कार में दी जाती है। अग्नि के द्वारा (अर्थात् यज्ञ से) यक्ष्मा रोग नष्ट होता है इसीलिये यज्ञ किया जाता है[२७]।

पति–पत्नी सम्बन्ध :– पति-पत्नी के सम्बन्धों का सुन्दर उपदेश देते हुए लिखा है जिस प्रकार द्युलोक (सूर्य) और पृथिवी का सम्बन्ध है वैसा ही पति–पत्नी का सम्बन्ध है। पति सूर्य समान है और पत्नी पृथिवी के समान है। पति साम है और पत्नी ऋक् (ऋचा) है जैसे सूर्य की उष्णता के कारण अन्न–वनस्पतियां आदि पृथ्वी से उत्पन्न होती हैं वैसे ही पति–पत्नी से सन्तान जन्म लेती है[२८]। स्त्री और पुरुष में परस्पर एक दूसरे के प्रति आकर्षण–विवाहेच्छा और पुत्र प्राप्ति की कामना होती है यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है[२९]।

प्रमाण :–

१. *सत्येनोत्तभिता भूमिः सत्येनोत्तभिता द्यौ....॥* (अथर्व. १४-१-१)
२. *अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पति वेदनम्।*
उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः॥ (अथर्व. १४-१-१७)
३. *भगस्त्वेतो नयेतु.... त्वं विदथमा वदासि॥* (अथर्व. १४-१-२०)
४. *इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायु व्यश्नुतम्।*
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ॥ (अथर्व. १४-१-२२)
५. *युवं भगं सं भरतं....... ब्रह्मणस्पते..... चारु....॥* (अथर्व. १४-१-३१)
६. *इहेद साथ न.... गाव प्रजया..... वो मनांसि॥* (अथर्व. १४-१-३२)
७. *यच्च वर्चो अक्षेषु.... तेनेमां वर्चसावतम्॥* (अथर्व. १४-१-३५)
८. *खे रथस्य खेऽनसः खे...... सूर्यत्वचम्॥* (अथर्व. १४-१-४१)
९. *आशासाना सौमनस्य प्रजां सौभाग्यं..... पत्युरनुव्रता...॥* (अथर्व. १४-१-४२)
१०. *साम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु.... देवृषु.....श्वश्र्वाः॥* (अथर्व. १४-१-४४)
११. *गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मयापत्या...... देवा॥* (अथर्व. ११-१-५०)
१२. *भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तम ग्रहीत्।*
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव॥ (अथर्व. १४-१-५१)
१३. *ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद्.... जीव शरदः शतम्॥* (अथर्व. १४-१-५२)
१४. *अहं विष्यामि मयि रूपमस्या..... न स्तेयमद्मि..... पाशान्॥* (अथर्व. १४-१-५७)
१५. *अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं....... सवितर्वह॥* (अथर्व. १४-१-६२)
१६. *पुनः पत्नीमग्निरदात्.... दीर्घायु.... शरदः शतम्॥* (अथर्व. १४-२-२)
१७. *आ वामगन् सुमतिर्वाजिनीवसु...... अशीमहि॥* (अथर्व. १४-२-५)
१८. *अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः।*
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमानाः॥ (अथर्व. १४-२-१७)
१९. *स्योना भव श्वशुरेभ्यः.... स्योना गृहेभ्यो भव॥* (अथर्व. १४-२-२७)

२०. सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥ (अथर्व. १४-२-२८)
२१. या दुर्हादो युवतयो याश्चेह...... विपरेतन ॥ (अथर्व. १४-२-२९)
२२. यदीयं दुहिता तव.... सविता प्रमुंचताम् ॥ (अथर्व. १४-२-६०)
२३. यत् ते प्रजाया पशुषु यद्वा..... सविता.....॥ (अथर्व. १४-२-६२)
२४. उद्यन् आदित्यः क्रिमीन् हन्तु..... निहन्तु रश्मिभिः ॥ (अथर्व. २-३२-१)
२५. इयं नार्युपब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका.... शरदः शतम् ॥ (अथर्व. १४-२-६३)
२६. शिवौ ते स्तां.... एतौ यक्ष्मं वि बाधते..... ॥ (अथर्व. ८-२-१८)
२७. अगादंगाद्...... अप यक्ष्म निदध्मसि..... ॥ (अथर्व. १४-२-६९)
२८. अमोऽहमस्मि... द्यौरहं पृथिवीत्वम्...... ॥ (अथर्व. १४-२-७१)
२९. जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति.... वाजसातये ॥ (अथर्व. १४-२-७२)

पंचदश काण्ड

काण्ड परिचय :- पन्द्रहवें काण्ड में अठारह सूक्त तथा २२० मन्त्र हैं। इस काण्ड में व्रात्य का वर्णन है, व्रात्य का अर्थ परमात्मा है। व्रात्य मनुष्य को कहते हैं। (व्रातः मनुष्य नाम निघण्टु २-३) मनुष्यों का या जो प्राणियों का हित करता है उसे व्रात्य कहते हैं। इस प्रकार व्रात्य का अर्थ परमात्मा होता है। जो व्रती-संन्यासी-महात्मा अपने उपदेशों के द्वारा मनुष्यों का कल्याण करता है या उन्हें कल्याणकारी कार्यों को करने के लिये प्रेरित करता है ऐसे संन्यासी को भी व्रात्य कहा जाता है।

व्रात्य परमात्मा :- परमात्मा व्रात्य है इसका उपदेश देते हुए लिखा है कि प्रलय अवस्था में सभी प्राणियों का हित करनेवाला परमात्मा (व्रात्य) था। उसने सृष्टि की रचना करने के लिये क्रियावान् अर्थात् सक्रिय होते हुए अपने स्वरूप को प्रकट करने के लिये प्रकृति में गति प्रदान की। परमात्मा के अस्तित्व का अनुभव जीवात्माओं को अर्थात् मनुष्यों के शरीरेन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि होने पर होता है इसके लिये परमात्मा ने क्रिया प्रारम्भ कर अपने प्रजापति स्वरूप को स्पष्ट किया[१]। प्रजापति अर्थात् प्रजा की रक्षा करनेवाले परमात्मा ने प्रकृति तत्व को देखा और उसे सृष्टि के निर्माण करने के लिए प्रेरित किया[२]। अर्थात् जड़ प्रकृति को क्रियाशील किया क्योंकि जड़ पदार्थ में स्वयं गति नहीं आती है। चेतन के विना जड़ प्रकृति सदा गतिविहीन रहती है, अपने आप स्वयं जड़ पदार्थ घूमता फिरता या आगे पीछे आता जाता नहीं है। इसलिये जड़ प्रकृति को परमात्मा सक्रिय करता है।

प्रकृति से महत्तत्व :- परमात्मा ने प्रकृति को गति प्रदान की जिसके परिणाम स्वरूप महत्तत्व बना[३] जो सत्य (सत्यम् अभवत्) अर्थात् यथार्थ है। यह भी वेदमन्त्र द्वारा स्पष्ट किया गया है अर्थात् प्रकृति से बना हुआ यह संसार मिथ्या-झूठा या भ्रमपूर्ण नहीं है अपितु यथार्थ है तथा यह संसार अपने आप स्वयं भी नहीं बना है। इसको बनानेवाला परमात्मा है (तेन प्राजायत) सांख्य दर्शन में भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करते हुए लिखा है कि प्रकृति से महत्तत्व और उससे अहंकार-तन्मात्राएं, इन्द्रियां और पंच महाभूतों का निर्माण हुआ है[४]। महर्षि दयानन्द ने भी सृष्टि उत्पत्ति प्रकरण में (सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ८) में लिखा है कि उस प्रकृति से महत्तत्व, बुद्धि उससे अहंकारादि .... उत्पन्न हुए, महत्तत्व को बुद्धि कहा गया है (महत्तत्व बुद्धि) में सत्वगुण की अधिकता तथा रजोगुण, तमोगुण की न्यूनता होती है इसलिये प्रकाश स्वरूप होता है (सत्वं लघु प्रकाशकम् इष्टम्) परमात्मा ने प्रकृति से महत्तत्व अहंकारादि जगत् को

बनाकर अपने महामहिमारूप को प्रकट किया[५] अर्थात् जगत् की विशालता-क्रमबद्धता आदि को देखकर परमात्मा की महिमा का ज्ञान होता है। यह वेद मन्त्र ने स्पष्ट किया है।

व्रात्य संन्यासी :- व्रात्य संन्यासी को भी कहा जाता है क्योंकि व्रती अर्थात् अपने उपदेशों के द्वारा मनुष्यों का कल्याण करता है, इसके विषय में उपदेश देते हुए वेद में लिखा है कि मनुष्यों का हित करनेवाला संन्यासी (व्रात्य) उठा अर्थात् प्रयत्नशील हो गया और पूर्व दिशा के साथ साथ चलने लगा[६]। जैसे पूर्व दिशा में सूर्योदय के होने पर अन्धकार दूर हो जाता है। उसी प्रकार संन्यासी मनुष्यों के हृदय में अविद्या रूपी अन्धकार को दूर करने के लिये विचरण करना प्रारम्भ कर देता है। वह उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम सभी दिशाओं में अर्थात् सब जगह लोक कल्याण के लिये भ्रमण करता रहता है। जिस व्यक्ति में लोक कल्याण करने की भावना (श्रद्धा) होती है, वही व्यक्ति दूसरों का कल्याण कर सकता है। इसलिये श्रद्धा की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है कि श्रद्धा पुरुष की सहधर्मिणी है, योग दर्शन के व्यास भाष्य में तो श्रद्धा को माता के समान लिखा है, जो मां के समान योगी का कल्याण करती है। (श्रद्धा जननीव कल्याणी योगिनं पाति .... व्यास भाष्य, योग दर्शन) जिस प्रकार ज्ञान शरीर की रक्षा करता है उसी प्रकार ज्ञान-विज्ञान (विज्ञानम्) संन्यासी का वस्त्र अर्थात् रक्षा करता है, ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न संन्यासी ही लोगों का कल्याण कर सकता है[७]। जन कल्याण करनेवाले संन्यासी के सद्गुण और यश उसके आगे आगे चलते हैं अर्थात् परोपकार करने वाले की कीर्ति चारों ओर फैल जाती है। इतना ही नहीं जो व्यक्ति परोपकार के महत्व को जानता है और उसके अनुसार आचरण करता है ऐसा व्यक्ति भी यशस्वी होता है[८]। संन्यासी परोपकार के कार्यों में सदा लगा रहे इसका निर्देश भी वेद में किया है[९]। वह सभी दिशाओं में अर्थात् सर्वत्र भ्रमण करता हुआ मनुष्यों को उपदेश देकर उनका कल्याण करता रहे, यह उपदेश सूक्त ४-५-६ में दिया है।

व्रती राजा :- राजा को भी व्रती कहा है वह भी कुशल राज प्रबन्ध करके जनता का कल्याण करता है इसलिये राजा के रूप में व्रात्य प्रकट हुआ[१०]। राजा अपनी प्रजा को ध्यान में रखते हुए अन्नादि खाद्य पदार्थों की समुचित व्यवस्था अपने राज्य में करके प्रजा का कल्याण करता है इसलिये वह व्रात्य कहलाता है[११]। ऐसा राजा सभी राजाओं में श्रेष्ठ राजा कहलाता है तथा जो अन्य राजा इस परोपकारी राजा की विशेषता को जानता है और उसके अनुसार जनकल्याण का कार्य प्रजा के लिये करता है वह राजा भी प्रजा का प्रिय हो जाता है और उसका भी यश चारों ओर फैल

जाता है[१२]। राजा की अनुकूल राज्यसभा, राज्यसभा के सदस्य, सेना-सेनापति-राज्य का कोष आदि रहें[१३]। जो सभासद् सेनापति आदि सभी राजपुरुष प्रजा हितैषी राजा की भावना को तथा उसके प्रजा कल्याण के कार्यों को जानते हैं और उसके अनुसार आचरण करते हैं वे सभी राजपुरुष और राज्य भी राजा के साथ यशस्वी होते हैं[१४]।

अतिथि सत्कार :- व्रात्य अर्थात् जनकल्याण करने का व्रत जिसने लिया है ऐसे संन्यासी-महात्मा और राजा के लिये 'व्रात्य' शब्द का प्रयोग इस काण्ड में हुआ है तथा सभी प्राणियों के कल्याण के लिये परमात्मा ने संसार की रचना की है। इसलिये परमात्मा भी व्रात्य है। इसका विस्तृत विवेचन इस काण्ड के १ से १० सूक्तों में करके व्रात्य अर्थात् संन्यासी महात्मा किसी गृहस्थ के घर पर आवे तो गृहस्थी को उसका स्वागत सत्कार करना चाहिये। इसका उपदेश देते हुए उसे अतिथि कहा गया है[१५] अर्थात् जनकल्याण करनेवाला किसी भी दिन गृहस्थ के घर आ सकता है क्योंकि उसके आने की कोई तिथि निश्चित नहीं होती है। इसलिये उसे अतिथि कहा गया है। गृहस्थ स्त्री पुरुष का कर्तव्य है कि घर पर आये हुए अतिथि रूप में व्रात्य (संन्यासी) का स्वागत करने के लिये उठें, उसका स्वागत करें। आप इससे पहले (क्व) कहां पर थे ? कहां से आ रहे हैं ? भोजनादि में कौनसा पदार्थ आपको प्रिय है ? अर्थात् आपके लिये भोजन में क्या बनाया जाय ? इत्यादि प्रश्नों को पूछकर उसके मनोनुकूल भोजन बनाकर उसे भोजनादि कराकर, आवश्यक वस्तु प्रदान करके, उसको निश्चिन्त करके उसका उपदेश ग्रहण करें। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक अतिथि सत्कार करना चाहिये[१६]।

अतिथि यज्ञ का महत्व :- अतिथि यज्ञ के महत्व का भी अत्युत्तम वर्णन वेद में किया है। जो परोपकारी महात्मा (व्रात्य) किसी गृहस्थी के यहां आता है और श्रद्धा भक्ति से जो गृहस्थी महात्मा का स्वागत सत्कार करता है उसको क्या प्राप्त होता है ? इसका उपदेश देते हुए वेद में लिखा है कि ऐसा जनकल्याण करनेवाला (व्रात्य) महात्मा किसी गृहस्थी के घर पर एक रात्री विश्राम करता है[१७]। उसके एक रात्री विश्राम करने के कारण पृथिवी के जितने भी पुण्य है वे सब गृहस्थी को प्राप्त हो जाते हैं[१८]। यदि वह दो रात्री निवास करता है तो अन्तरिक्ष के पुण्य, तीन रात्री के निवास करने पर द्युलोक के सभी पुण्य प्राप्त होते हैं (१५-१३, ४-६)। अर्थात् जितने दिन अधिक सेवा अतिथि की की जाती है उसका उतना ही अधिक पुण्य गृहस्थी को प्राप्त होता है। यह इस सूक्त में स्पष्ट किया गया है। जो गृहस्थी अतिथि यज्ञ के महत्व को जानता है और अतिथि यज्ञ करता है। उस अतिथि को दिया हुआ अन्न अतिथि यज्ञ की

आहुति (हवि) रूप होता है अर्थात् अतिथि सेवा अतिथि यज्ञ है[१९]। इस प्रकार व्रात्य से सम्बन्धित इस काण्ड में विस्तृत विवेचन किया गया है।

प्रमाण :-

१. *व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्* ॥ (अथर्व. १५-१-१)
२. *स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत्* ॥ (अथर्व. १५-१-२)
३. *तदेकमभवत् तल्ललाममभवत् तन्महदभवत् ....।*
तत्सत्यमभवत् तेन प्राजायत ॥ (अथर्व. १५-१-१३)
४. *सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् ....* ॥ (सांख्यदर्शन)
५. *सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत्* ॥ (अथर्व. १५-१-४)
६. *स उदतिष्ठत स प्राचीं दिशमनु व्यचलत्* ॥ (अथर्व. १५-२-१)
७. *श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वास ....* ॥ (अथर्व. १५-२-५)
८. *कीर्तिश्च यशश्च पुरः .... य एवं वेद* ॥ (अथर्व. १५-२-८)
९. *स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् .... तिष्ठसीति* ॥ (अथर्व. १५-३-१)
१०. *सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ....* ॥ (अथर्व. १५-८-१)
११. *स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत्* ॥ (अथर्व. १५-८-२)
१२. *विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य-य एवं वेद* ॥ (अथर्व. १५-८-३)
१३. *तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन्* ॥ (अथर्व. १५-९-२)
१४. *सभायाश्च वै स समितिश्च .... य एवं वेद* ॥ (अथर्व. १५-१९३)
१५. *तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्* ॥ (अथर्व. १५-११-१)
१६. *स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयात् व्रात्यक्व .... इति* ॥ (अथर्व. १५-११-२)
१७. *तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिगृहे वसति* ॥ (अथर्व. १५-१३-१)
१८. *ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनावरुन्द्धे* ॥ (अथर्व. १५-१३-२)
१९. *तस्यामेवास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद* ॥ (अथर्व. १५-१३-१४)

षष्ठदश काण्ड

काण्ड परिचय :- सोलहवें काण्ड में नौ सूक्त तथा १०३ मन्त्र हैं। इसमें कुसंग का परित्याग, मादक अग्नि का परित्याग करना, वीर्य रक्षा के उपाय, आत्मिक शक्तियों का विकास, आंखों में पवित्र दृष्टि का होना, वाणी में मधुरता, कानों से कल्याणकारक शब्दों का सुनना, परमेश्वर के प्रति समर्पण, बुरे स्वप्नों का दुष्परिणाम और उन पर विजय प्राप्ति के उपाय इत्यादि विषयों का वर्णन है।

कुसंग का परित्याग :- इस काण्ड के प्रथम मन्त्र में भोगी-विलासी और कामुक व्यक्ति के कुसंग को छोड़ने का उल्लेख करते हुए साधना में संलग्न रहनेवाला व्यक्ति कहता है कि मैंने शरीर की बहुमूल्यवान्, धातु वीर्य को नष्ट करनेवाले भोगी कामुक व्यक्ति के संग को छोड़ दिया है[१]। कुकर्मी-कामुक व्यक्ति का संग करनेवाला व्यक्ति भी कामी-भोगी-विलासी हो जाता है। इसलिये कामवासना में सदा संलग्न रहनेवाले व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) एक दूसरे के प्रति अनुराग, एकान्त सेवन, काम प्रवृत्तियां आदि, कामुक चेष्टाएं कामुक अग्नियां है जो मनुष्य की शारीरिक और मानसिक शक्तियों को नष्ट कर देती हैं। ये मादक (कामुक) अग्नियां (चेष्टाएं) बल का विनाश करती हैं। इसलिये इनको नष्ट करने तथा इनको बढ़ानेवाले कामुक व्यक्तियों से दूर रहने का निश्चय इस मन्त्र के द्वारा व्यक्त किया गया है। वेदों में आपः शब्द पानी, प्राण अन्तरिक्ष, रक्तादि विविध अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। महर्षि दयानन्द ने आपः का अर्थ उणादि कोष (२-५९) में रक्त अर्थ किया है[२]। अथर्ववेद (१०-२-११) मन्त्र में आप शब्द रक्त अर्थ में प्रयुक्त हुआ (पुरुषे आपः) जो रक्त में विलीन रहता है, विद्यमान रहता है उसे "वीर्य" कहते हैं[३]। इसलिये 'अपां वृषभः' का अर्थ कामुक (वीर्य की वर्षा करनेवाला, अर्थात् नष्ट करनेवाला है)। ऐसे व्यक्ति के परित्याग का सन्देश इस मन्त्र में दिया गया है।

काम वासना :- कामवासनाएं अर्थात् कामुक अग्नियां शरीर के अंग प्रत्यंग को तोड़ फोड़ कर रख देती हैं काम वासनाओं के कारण मनुष्य की शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है[४]। इसीलिये भोगी-विलासी और कामी व्यक्ति शरीर से कमजोर रोगी होता है। कामुक व्यक्ति की शारीरिक शक्तियां ही क्षीण नहीं होती अपितु मानसिक शक्तियां भी क्षीण हो जाती हैं, काम-वासनाओं से ग्रस्त व्यक्ति मानसिक दृष्टि से चंचल अस्थिर मति होता है। कामभोग की वासना को मनन करने से शक्ति नष्ट हो जाती है (मनोहा) कामाग्नि मन और शरीर को दाह करनेवाली (निर्दाहः) अर्थात् मन तथा शरीर को जलाकर नष्ट करनेवाली है यह आत्मा को तथा शरीर को दूषित करनेवाली

है[५]। इसलिये शरीर और आत्मा को दूषित करनेवाली कामवासनारूपी अग्नि का मैं परित्याग करता हूँ। अर्थात् जीवन में संयम को धारण करता हूँ। हे मादक कामाग्नि! तू मेरा आलिंगन-स्पर्श मत कर, मेरे से तू दूर रह[६]। यह दृढ़ निश्चय साधक करता है।

कल्याणकारी मार्ग :- आत्मा को इन्द्र कहा जाता है, आत्मा (इन्द्र) के साधन को इन्द्रिय कहते हैं। अपनी आत्मिक शक्ति के बल से व्यक्ति को अपनी कामवासना को समाप्त कर आत्मिक उन्नति करनी चाहिये[७]। आत्मिक उन्नति के पथ पर चलनेवाले व्यक्ति का शरीर-शारीरिक रस-रक्तमांसादि धातुएं-इन्द्रियां मनादि पाप से रहित हो जाते हैं[८]। पापरहित होकर व्यक्ति बुरे स्वप्न (दुष्स्वप्न) और बुरे स्वप्नों के अनर्थकारी परिणाम से रहित हो[९]। शुद्ध पवित्र जीवन होने से दुर्विचार और इनके परिणाम स्वरूप आनेवाले दुष्स्वप्न और बुरे स्वप्नों के परिणाम आदि सभी से बच जाता है। जैसे पानी मैल को साफ करता है, पापरहित मन और शरीर बुरे विचारों को धो देता है। जो साधक जल के समान शान्त होता हैं, जिनकी मानसिक चंचलता समाप्त हो जाती है ऐसे साधक दूसरों के कल्याण के विषय में सोचते हैं ऐसे क़ल्याण पथ के पथिक मुझ साधक पर भी कृपा करें यह प्रार्थना करते हुए वेदमन्त्र में उपदेश दिया है। जल के समान शान्त और शीतलता प्रदान करनेवाले महात्माओं! अपनी कल्याणभरी कृपा दृष्टि से मेरा भी कल्याण कीजिए। अपने कल्याणकारी शरीर से (शिवया तन्वा) मेरी त्वचा अर्थात् शरीर को स्पर्श कर मुझे भी कल्याण के पथ का पथिक बनाइयें[१०]।

वाणी-नेत्र-कर्ण :- कल्याण (अध्यात्म) पथ के पथिक के नेत्ररोग (अर्थात् बुरी दृष्टि से देखने का रोग) नष्ट हो जाता है, उन्हें ऊर्जा अर्थात् आत्मिक बल प्राप्त होता है। उनकी वाणी में मधुरता होती है उनके जीवन में माधुर्य गुण होता है, कल्याण पथ पर चलता हुआ (साधक) मैं भी मधुर वाणी का उच्चारण करूँ[१२]। यह प्रार्थना साधक करता है इतना ही नहीं वह कहता है कि मेरे दोनों कान अच्छी श्रवणशक्ति से सम्पन्न हों, मैं कल्याणकारक और सुखदायक शब्दों को कानों से सुनता हूँ[१३]।

सर्वोपरि और केन्द्र :- कल्याण पथ पर चलता हुआ साधक घोषणा करता है कि मैं धन-ऐश्वर्यादि सम्पत्तिशालियों में मुखिया अर्थात् सर्वोच्च स्थान पर रहूँ। क्योंकि मैं श्रेष्ठ कर्म कर रहा हूँ, कल्याण पथ पर चलनेवाला व्यक्ति सदा उन्नतशील होता है। यह सन्देश इस वेदमन्त्र द्वारा दिया गया है। धन-ऐश्वर्यादि सम्पदाओं में आध्यात्मिक पथ का पथिक श्रेष्ठ और सर्वोपरि ही नहीं होता है अपितु वह धन-ऐश्वर्य-सुख-सम्पदाओं का केन्द्र भी होता है[१४]। जिससे वह दूसरों को भी इन भौतिक सम्पदाओं को वितरित करने के योग्य होता है, वह कल्याणकारी आत्मसंयम-साधना-

आत्मिकबल के फल स्वरूप धन ऐश्वर्य का केन्द्र हो जाता है । भोगी-विलासी और स्वार्थी व्यक्ति न तो उन्नतशील होता है और न ही दूसरों के सहयोग करने के योग्य होता है । यह सन्देश इस मन्त्र में दिया है[१५] ।

सुस्वप्न और दुःस्वप्न (बुरे स्वप्न) :- जो मनुष्य दिन-रात-अशुभ-बुरा सोचता रहता है वह दुष्कर्म में भी प्रवृत्त हो जाता है तथा उसको स्वप्न भी बुरे आते हैं । निरन्तर सत्कर्म करने और सद् विचारों को करने के परिणाम स्वरूप मनुष्य को स्वप्न भी अच्छे आते हैं । मनुष्य सुस्वप्न को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि हे सुस्वप्न ! हम तेरे उत्पत्ति के कारण को जानते हैं अर्थात् जिन कारणों (सत्कर्म और सद्विचारों) से अच्छे स्वप्न आते हैं उनको हम जानते हैं[१६] । अच्छे विचार योग के यम अर्थात् अहिंसा-सत्य-अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तथा नियम अर्थात् शौच (पवित्रता) सन्तोष-तप-स्वाध्याय-ईश्वर प्रणिधानादि का आचरण करने से अच्छे विचार बनते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य को सुस्वप्न अर्थात् अच्छे स्वप्न आते हैं । अच्छे स्वप्न की प्रशंसा करते हुए अगले वेदमन्त्र में लिखा है कि हे सुस्वप्न ! तुम बुरे स्वप्न के नाश करनेवाले हो, बुरे स्वप्न की मृत्यु करनेवाले हो[१७] । सुस्वप्न पवित्र करनेवाले हैं और बुरे स्वप्न अपवित्रता की ओर ले जानेवाले हैं[१८] । इस प्रकार सुस्वप्न की प्रशंसा अनेक मन्त्रों द्वारा की गयी है ।

दुःस्वप्न (बुरे स्वप्न) का नाश :- दुःस्वप्न अर्थात् बुरे स्वप्न का नाश कैसे होता है ? इसका उल्लेख करते हुए वेदमन्त्र में लिखा है कि आज हमने दुःस्वप्न अर्थात् बुरे स्वप्नों और उनके द्वारा होनेवाले दुष्परिणामों पर विजय प्राप्त कर ली है, अच्छे स्वप्न लेते हुए हम निष्पाप अर्थात् पापरहित हो गये हैं[१९] । सूर्योदय से पहले उषाकाल होने पर मनुष्य निद्रा त्याग देता है, निद्रा त्यागने से मनुष्य दुःस्वप्न और उसके द्वारा होनेवाले कष्ट से भी बच जाता है उस उषाकाल से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि बुरे स्वप्न के कारण हम भयभीत हो रहे थे हे उषाकाल ! तुम्हारे कारण अर्थात् तुम्हारे आने से दुःस्वप्न और उसके कारण होनेवाला भय हमारे से दूर हो गया[२०] ।

जागरित अवस्था और दुःस्वप्न :- सोने पर जो बुरे स्वप्न आते हैं वे तो प्रातःकाल सूर्योदय से पहले उषाकाल में जागने पर नष्ट हो जाते हैं और उसके दुष्परिणाम से भी मनुष्य बच जाता है । जागृत अवस्था में जब व्यक्ति दुर्विचार-द्वेषादि में संलग्न रहकर अशुभ स्वप्न लेता रहता है अर्थात् ऐसे कुविचारों में डूबना ही जागृतअवस्था में दुःस्वप्न लेना है जिनके परिणाम स्वरूप मनुष्य कुकर्म में प्रवृत्त हो जाता है । अतः वेद मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि हम जागते हुए भी दुःस्वप्न से बचे रहें हैं[२१] । जागते हुए बुरे स्वप्न से बचने के उपाय स्वाध्याय-सत्संग-साधना आदि सत्कर्म हैं । जागृत

अवस्था में मनुष्य दुष्कर्म और दुर्विचारों, दुष्ट स्वप्न से बचने के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे अग्रणी परमेश्वर! आपके न्यायकारी दिव्य नियम हमें दुःस्वप्न-दुर्विचार-द्वेष भाव और दुष्कर्म से बचाकर सद्विचार करने और सत्कर्म करने के लिये प्रेरित करते हैं। आपके दिव्य नियम ही मनुष्य को सन्मार्ग पर लाते रहते हैं[२२]।

प्रजापति अर्थात् राजा और दुःस्वप्न :- जैसे प्रजा अर्थात् प्राणियों के पालन करनेवाले परमात्मा को प्रजापति कहते हैं उसी प्रकार प्रजा अर्थात् राज्य की प्रजा का पालन करनेवाले राजा को भी प्रजापति कहते हैं। राजा अपने राज्य की प्रजा की अपने राज्य में दुःस्वप्न लेनेवाले अर्थात् चोरी-डकैती-हत्यादि-कुकर्म करनेवालों से रक्षा करता है। ऐसे दुष्कर्म करनेवालों को दण्ड देकर सुस्वप्न अर्थात् सद्विचार और सत्कर्म की प्रेरणा देता है[२३]। किसी शत्रु राजा ने यदि राष्ट्र पर आक्रमण किया हो और राजा ने शत्रु पर विजय प्राप्त कर ली, तब विजय प्राप्त करनेवाला राजा कहता है कि हमने विजय प्राप्त कर ली है अब पराजित राजा की राज्यभूमि-धनसंपदा-वन-अन्न-जलादि सभी राज्य की सामग्री हमारी हो गयी है। राज्य के पशु (पशवः) सेनापति सैनिक (वीराः) प्रजादि, सभी हमारे आधीन हो गये[२४]। राष्ट्र के प्रति दुःस्वप्न-दुर्विचार करके दुष्कर्म अर्थात् आक्रमण करनेवाले शत्रु को राजा दण्ड देकर राज्य की रक्षा करे यह निर्देश वेदमन्त्र में दिया है। शत्रु राजा को राजा दण्ड किस प्रकार का दे इसका उल्लेख इस प्रकार किया है कि १. पराजित राजा की संपत्ति पर अधिकार करके २. पराजित राजा के राजपुरुषों-राज्याधिकारियों को देश से निकाल दे ३. पाश अर्थात् हथकड़ी आदि लगाकर ४. जेल में डालकर ५. उनका रहन-सहन के साधनों में न्यूनता कर उनको जनसाधारण के समान करना ६. खानपान में नियंत्रण करना ७. जिनसे राज्य में उपद्रव की आशंका हो उनको आजीवन जेल में डालकर रखना आदि उपाय दण्ड देने के बताये हैं[२५]।

विजेता राजा ने पराजित राजा के युद्धापराधियों को जेल में डाल रखा हो और युद्धापराधी व्यक्ति रोग ग्रस्त हो जाय तो विजेता राजा अपने राज्य के अंगिरस वैद्यों से उनकी चिकित्सा कराये[२६]।

राजा की भावना :- इस काण्ड के अंतिम सूक्त के मन्त्रों में राजा घोषणा करता है कि हमने शत्रु पर विजय प्राप्त कर ली है शत्रु राज्य के वन-उपवन-सेना आदि पर हमारा अधिकार हो गया है[२८]। प्रजा पालक राजा अपनी भावना को व्यक्त करता हुआ कहता है कि मैंने लोभवश शत्रु पर आक्रमण कर उसे पराजित नहीं किया है अपितु यज्ञीय भावना से राज्य की प्रजा का पालन करने के लिये अपने राज्य की शत्रु

से रक्षा की है, जो हमारे राष्ट्र के बारे में दुःस्वप्न अर्थात् बुरा विचार कुदृष्टि रखता है। हे प्रभो! आपकी कृपा से राष्ट्र के उद्योग विकसित हों, राष्ट्र वैभव और उन्नतशील हो। हे प्रभो! आपकी कृपा से मैं राष्ट्र यज्ञ की भावना से ओतप्रोत होकर राष्ट्र की रक्षा और प्रजा का पालन करता रहूँ[२९]। इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन और राष्ट्रीय जीवन में दुर्विचार-दुष्कर्म समाप्त हों तथा सुस्वप्न अर्थात् सद्विचार और सत्कर्म की ओर राजा-प्रजादि सभी संलग्न रहें यह उपदेश इस सूक्त में दिया गया है।

प्रमाण :-

१. *अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥* (अथर्व. १६-१-१)
२. *आप्नुवन्ति शरीरम् इति आपः ॥* (उणादिकोष २-५९)
३. *को अस्मिन्नापो व्यदधाद्..... अरुण-लोहिनीस्ताम्रधूम्रा... ॥* (अथर्व. १०-२-११)
इस मन्त्र में तीव्राः- अरुणा, में लोहिनी, धूम्रवर्णा आदि शब्द रक्त के बोधक हैं।
४. *रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥* (अथर्व. १६-१-२)
५. *म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषि ॥* (अथर्व. १६-१-३)
६. *इदं तमतिसृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥* (अथर्व. १६-१-४)
७. *इन्द्रस्य च इन्द्रियेणाभिषिञ्चेत् ॥* (अथर्व. १६-१-९)
८. *अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥* (अथर्व. १६-१-१०)
९. *मा स्मदेनां वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु ॥* (अथर्व. १६-१-११)
१०. *शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥* (अथर्व. १६-१-१२)
११. *निर्दुरर्मण्यः ऊर्जा मधुमती वाक्.... ॥* (अथर्व. १६-२-१)
१२. *मधुमती स्थ मधुमती वाचमुर्दयम्.... ॥* (अथर्व. १६-२-२)
१३. *सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥* (अथर्व. १६-२-४)
१४. *मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥* (अथर्व. १६-३-१)
१५. *नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥* (अथर्व. १६-४-१)
१६. *विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥* (अथर्व. १६-५-१)
१७. *अन्तकोऽसि मृत्यु रसि ॥* (अथर्व. १६-५-२)
१८. *विद्म ते स्वप्न जनित्रं...... दुष्वप्न्यात् पाहि ॥* (अथर्व. १६-५-४)
१९. *अजेष्माद्या....... अनागसो वयम् ॥* (अथर्व. १६-६-१)
२०. *उषो यस्माद् दुःष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥* (अथर्व. १६-६-२)
२१. *जाग्रद् दुष्वप्न्यं स्वप्ने दुष्वप्न्यम् ॥* (अथर्व. १६-६-१०)
२२. *तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु.... न साधुः ॥* (अथर्व. १६-६-१२)
२३. *तेनैनं विध्याम्यभूत्यै........ तमसैनं विध्यामि ॥* (अथर्व. १६-७-१)
२४. *जितमस्माकम्...... प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥* (अथर्व. १६-८-१)
२५. *तस्मादमुं निर्भजामोमु........ पुत्रमसौ यः ॥* (अथर्व. १६-८-२)
सः ग्राह्याः पाशान्मा मोचि......... ॥ (अथर्व. १६-८-३)
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुनि........ पादयामि ॥ (अथर्व. १६-८-४)
२६. *स अंगिरसानां पाशान्मा मोचि ॥* (अथर्व. १६-८-१४)
२७. *स आथर्वणानां पाशान्मा मो चि ॥* (अथर्व. १६-८-१६)
२८. *जितमस्माकम्....... विश्वाः पृतना अरातीः ॥* (अथर्व. १६-९-१)
२९. *वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु..... मयि धेहि ॥* (अथर्व. १६-९-४)

सप्तदश काण्ड

काण्ड परिचय :– इस काण्ड में एक सूक्त तथा तीस मन्त्र हैं। इसमें आदित्य अर्थात् परमात्मा तथा सूर्य के विषय में वर्णन किया गया है।

आदित्य परमात्मा :– इस काण्ड के प्रथम मन्त्र में परमात्मा की महिमा का उपेदश दिया है कि परमात्मा सभी को पराजित करनेवाला है। वह सभी पर शासन करनेवाला सहिष्णु अर्थात् सहनशील है। वह सबसे अधिक बलवान् (सासहानम्) अर्थात् सर्वशक्तिमान् है, वह आप्तकाम है, वही परमात्मा स्तुत्य (इड्य) स्तुति करने के योग्य है ऐसे परमैश्वर्यशाली परमात्मा को मैं स्वास्थ्य एवं दीघार्यु की प्राप्ति के लिये स्मरण करता हूँ[१]। परमात्मा को विविध गुणों के कारण विविध नामों से पुकारा जाता हैं परमात्मा को अन्यत्र भी आदित्य (सबका प्रकाशक होने के कारण) कहा है[२]। लौकिक जगत् के अन्धकार को दूर करनेवाले सूर्य को भी आदित्य कहा जाता है। उपनिषदों में उल्लेख है कि सूर्य और चन्द्रमा भी परमात्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित हैं[३]।

सबका प्रिय :– परमात्मा से प्रार्थना करता हुआ साधक कहता है कि हे स्तुत्य एवं परमैश्वर्यशाली परमेश्वर! मैं आपको स्मरण कर रहा हूँ जिससे मैं प्रजाजनों का प्रिय बनूँ[४]। पशुओं का प्रिय बनूँ[५] अर्थात् पशुओं की हिंसा न करके उनकी रक्षा तथा पालन पोषण करता हुआ मैं उनका भी प्रिय बनूं। मैं अपने समान योग्यतावाले साथियों में भी मैं सबका प्रिय पात्र बनूँ[६]। मनुष्य अपने समान गुणधर्म और योग्यतावाले व्यक्तियों से ईर्ष्या द्वेषादि न करके उनके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करे। जिससे वह सभी का प्रिय बन सके। यह उपदेश वेदमन्त्रों में दिया है।

काम क्रोधादि से अप्रभावित :– जो व्यक्ति परमात्मा की साधना करता है उसको काम, क्रोध आदि विकार प्रभावित नहीं करते हैं। यह उपदेश वेदमन्त्र में देते हूए लिखा है क़ि हे परमेश्वर! इस जीवन में शरीर में विद्यमान रस रक्तादि धातुओं के अन्दर (पाशिनः) बन्धन डालनेवाले काम क्रोधादि विकार आपके रहने के कारण मुझे प्रभावित नहीं कर सकते हैं। काम क्रोधादि विकारों का परित्याग कराकर आप हमको सुखी करते हैं। आप हमारे हृदय में विद्यमान हैं। आपके द्वारा प्रदत्त सन्मति के अनुसार हम सदा सत्कर्म करते रहें[७]। परमात्मा अपनी कल्याणकारिणी (शिवाभिः) रक्षा के कारण हमें (शंतमः) अत्यधिक शक्ति प्रदान करता है[८]।

परमात्मा की महिमा का उपदेश देते हुए लिखा है कि हे प्रभो! ऋषि मुनि वेदों के द्वारा आपकी महिमा का गुणगान करते हुए मोक्ष की प्राप्ति के लिये दीर्घकालीन उपासना

यज्ञ करते रहे हैं[९] । अर्थात् वेदों में निर्दिष्ट उपायों के द्वारा ऋषि मोक्ष प्राप्त्यर्थ उपासना करते हैं ।

आदित्य सूर्य :- सूर्य को भी आदित्य के रूप में वर्णन किया है इसकी महिमा का वर्णन करते हुए उपदेश दिया है कि सूर्य (शुक्र) पवित्र है और अपने प्रकाश से दूसरों को भी पवित्र करता है, सूर्य की किरणों के द्वारा अन्धकार के नष्ट हो जाने से मनुष्य पाप कर्म से निवृत्त हो जाता है क्योंकि अन्धकार में मनुष्य पाप कर्म में प्रवृत्त हो होता है । इसलिये सूर्य को पवित्रता प्रदान करनेवाला कहा है[१०] । जैसे सूर्य के प्रकाश से सभी ग्रह-उपग्रह प्रकाशित होते हैं वैसे ही साधक कहता है कि मैं भी परमात्मा के प्रकाश से प्रकाशित अर्थात् पवित्र जीवनवाला बनूं । उदित होनेवाले सूर्य को तथा उदय हो चुके सूर्य को हम प्रणाम करते हैं अर्थात् सूर्य के प्रति हम नतमस्तक हैं[११] । उसके उपकारों को हम जानते हैं, सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के कारण अन्नादि पदार्थ परिपक्व होते हैं ।

हे अज्ञान अन्धकार को दूर करनेवाले परमेश्वर ! आप मेरे कल्याण के लिये मेरी शरीर रूपी नौका पर आरूढ़ हो जाइये अर्थात् आपकी सत्ता का मैं दिन रात अनुभव करता हुआ शरीर से पापकर्म में कभी भी प्रवृत्त न होऊँ[१२] । सत्य धर्म का आचरण करता हुआ मैं दिन रात ही नहीं अपितु सभी ऋतुओं में भी पाप कर्म से सदां सुरक्षित रहूँ । वेदों में उपदिष्ट उपायों के द्वारा मैं स्वयं को पापकर्म से सदा पृथक् रखूं । परमात्मा ऐसी शक्ति मुझे प्रदान करे[१३] । परमात्मा उन्नति की ओर ले जानेवाला (अग्नि) तथा रक्षा करनेवाला है, मुझे पूर्णतया सुरक्षा प्रदान करे । यह प्रार्थना इस काण्ड के अन्तिम मन्त्र से की गयी है[१४] ।

प्रमाण :-

१. *विषासहिं सहमानं सासहानं...आयुष्मान् भूयासम् ।* (अथर्व.१७-१-१)
२. *योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावाहम् ।* (यजु. ४०-१७)
३. *न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं...तमेव भान्तमनुभातिः*
४. *विषासहिं...प्रियःप्रजानां भूयासम् ।* (अथर्व. १७-१-३)
५. *विषासहिं...प्रियः पशूनां भूयासम् ।* (अथर्व. १७-१-४)
६. *विषासहिं...प्रियः समानानां भूयासम् ।* (अथर्व. १७-१-५)
७. *मा त्वा दभन् सलिले...परमे व्योमन् ।* (अथर्व. १७-१-८)
८. *त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिःशंतमो भव ।* (अथर्व. १७-१-१०)
९. *त्वामिन् वर्धयन्तःसत्रं निषेदुः ।* (अथर्व. १७-१-१४)
१०. *शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि...अहं...भ्राज्यासम् ।* (अथर्व. १७-१-२०)
११. *उद्यते नम उदायते.....सम्राजे नमः ।* (अथर्व. १७-१-२२)
१२. *सूर्य नावमारुक्ष....स्वस्तये...पारय ।* (अथर्व. १७-१-२६)
१३. *ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च....सलिलेन वाचः ।* (अथर्व. १७-१-२९)
१४. *अग्निर्मा गोप्ता परिपातु....मध्या यतन्ताम् ।* (अथर्व. १७-१-३०)

अष्टादश काण्ड

काण्ड परिचय :- काण्ड १८ में चार सूक्त तथा २८३ मन्त्र हैं। इसमें विवाह और नियोग की चर्चा यम-यमी के संवाद के रूप में है। पितर-पितामह-प्रपितामह की श्रद्धा भक्ति से सेवा करना और उनका आशीर्वाद प्राप्त करना, जातवेदा अर्थात् जो विद्यासम्पन्न और बुद्धिमान् हैं उनका सम्मान करते हुए उनसे ज्ञान प्राप्त करना, स्वर्ग का तात्पर्य तथा ऋषि वाचक नामों की यथार्थता का वर्णन इस काण्ड में किया गया है।

यम यमी का संवाद :- वेद में यम और यमी कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं अपितु संवाद के लिये काल्पनिक व्यक्ति हैं। भाई और बहिन का विवाह या नियोग नहीं होता है, इस विषय को स्पष्ट करने के लिये वेदमन्त्रों में यम (भाई) और यमी (बहिन) के संवाद (वार्तालाप) का वर्णन है। जिस प्रकार नाटक में परंस्पर वार्तालाप (संवाद) के लिये काल्पनिक पात्र (Actors) होते हैं, वैसे ही यम और यमी काल्पनिक-भाई-बहिन हैं यम-यमी को दिन और रात्री के रूप में भी विद्वानों ने उल्लेख किया है। अनेक आर्य विद्वानों ने इस विषय पर विस्तार से लिखा है।

इस काण्ड के प्रथम मन्त्र में यमी (बहिन) यम (भाई) से विवाह करने का विचार प्रस्तुत करते हुए कहती है कि पिता के (पितुः नपातम्) पौत्र को प्राप्त करने के लिये (आ दधीत) मेरे साथ विवाह करके पुत्र प्राप्त कर[१] जिससे अपने पिता को पौत्र की प्राप्ति हो जाय। इसका निषेध करता हुआ यम अर्थात् भाई कहता है कि विवाह के लिये तू किसी दूसरे कुल में उत्पन्न व्यक्ति की इच्छा कर (विषु रूपा) क्योंकि हम दोनों एक माता-पिता की सन्तान (सलक्ष्मा) हैं। अतः अपना आपस में विवाह नहीं हो सकता है (१८-१-२)। ऐसा पहले अर्थात् इस सृष्टि से पहले भी कभी नहीं हुआ है[२]। परमात्मा के गुप्तचर इस संसार में सदा विचरण कर रहे हैं और हम जो करते हैं और सोचते हैं उसको भी देखते अर्थात् जानते हैं। ऐसी घृणित बात करके तूने मेरे हृदय पर चोट की है। मुझे आघात पहुँचानेवाली तू मुझे छोड़कर अन्य पुरुष (अन्येन) के साथ विवाह करले[३]। हे सौभाग्यवती बहिन! तेरा भाई तेरे साथ विवाह के योग्य नहीं है, शारीरिक सम्बन्ध भाई-बहिन के साथ नहीं कर सकता है, (१८-१-१३)। यदि कोई ऐसा कुकर्म करता है वह पापी है[४]। इसलिये कुविचार को त्याग दे। इस तरह अनेक मन्त्रों से स्पष्ट किया है विवाह या नियोग केवल सन्तान प्राप्ति के लिये शारीरिक सम्बन्ध माता-पिता के कुल गोत्रादि से भिन्न स्त्री-पुरुष के साथ होना चाहिये। सगे बहिन-भाई के साथ कभी भी, किसी भी परिस्थिति में विवाह या नियोग नहीं होना चाहिये। यदि कोई ऐसा

करता है तो यह बहुत ही घृणित और पाप कर्म है। नियोग से सम्बन्धित अनेक मन्त्र इस काण्ड में विद्यमान हैं (१८-३-१ से ४)। जिनमें पति के अभाव में सन्तान प्राप्ति के विषय में वर्णन किया गया है। पति के मरने पर पत्नी को जलाना नहीं चाहिये। अर्थात् सतिप्रथा का निषेध वेदमन्त्र (१८-३-४) में आये हुए अघ्न्या शब्द से स्पष्ट होता है।

परमात्मा की वेदवाणी :- परमात्मा ने मनुष्यों के कल्याण के लिये जल-अन्न-वायु ओषधियों आदि की रचना की (१८-१-१७)। परमात्मा की वेदवाणी हमें जीवन के आदर्श उपायों का उपदेश करती है। हमारे जीवन का श्रेष्ठ कर्म क्या है इसका उपदेश हमें वेदों से ही प्राप्त होता है। वेदों के द्वारा ही परमेश्वर हमारी मनन शक्ति को बढ़ाता है (१८-१-१९)। वेदवाणी हमारा कल्याण करनेवाली है (१८-१-२०)। यह उपदेश वेदमन्त्रों में दिया है। परमात्मा जातवेदा (१८-१-२७) अर्थात् प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान है, प्रत्येक पदार्थ को जानता है, इसलिये उसे जातवेदा कहा है। परमात्मा इस संसार का राजा है। उसके नियम को कौन तोड़ सकता है ? वह परमात्मा निश्चय ही हमारा मित्र है। वह श्रेष्ठ जनों को चन्द्रमा के समान शीतलता और प्रसन्नता प्रदान करता है तथा वेदमार्ग पर चलनेवालों का वह आत्मिक बल है[५]।

पिता-पितामह-प्रपितामह की सेवा :- माता-पिता का सन्तान पर बहुत ऋण है, माता-पिता सन्तान का पालन-पोषण करते हैं। अतः माता-पिता-पितामहादि की सेवा का उपदेश देते हुए वेदमन्त्र में पुत्र की ओर से लिखा है कि हे माता पिता ! आप दोनों की मैं पूजा करता हूँ। जिससे मेरे पुण्य कर्मों की वृद्धि हो, आप मेरे जन्मदाता हैं, कष्टों को दूर करनेवाले हैं; मुझे बल प्राप्ति और प्राण शक्ति के विषय में उपदेश दीजिये। आप हमें घर में सुमधुर उपदेश दिया करें[६]। मनुष्य को पिता-पितामह (पिता के पिता) तथा प्रपितामह (पिता के पितामह) की सेवा श्रद्धापूर्वक करनी चाहिये। यह सन्देश इस वेदमन्त्र में इन तीन पितरों को अवर-मध्यम-परास इन शब्दों से सम्बोधित करते हुए दिया है तथा उनसे सदुपदेश देने के लिये प्रार्थना की गयी है। आप-क्रोधी स्वभाव से रहित हैं तथा आप ऋत और अनृत (ऋतज्ञाः) के ज्ञाता हैं। अर्थात् आप उचित-अनुचित कार्यों के ज्ञाता हैं, आपको हम श्रद्धापूर्वक पुकारते हैं। आप हमें प्राप्त हों और अपने सदुपदेश के द्वारा हमारी रक्षा करें[७]। यहां स्पष्ट ही संकेत है जीवित माता-पिता-दादा-दादी आदि के लिये पितर शब्द प्रयुक्त हुआ है। ये सदुपदेश देनेवाले और रक्षा करनेवाले हैं। तीन पितरों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि जो हमारे पिता के पिता (पितुः पितरः) तथा पिता के पितामह हैं उन पितरों का हम सम्मान करते हुए अन्नादि (भोजनादि) खाद्य पदार्थों से सेवा करें[८]।

जीवित पितर :- पितर जीवित होते हैं और वे अपनी सन्तानों की रक्षा करनेवाले होते हैं यह निर्देश देते हुए पितरों को उत्तम कुशासनों पर बैठनेवाले (बर्हिसदः) पितर कहा है। आप हमारी (ऊती) रक्षा के लिये हमारे समीप (अर्वाक्) पधारें। आपके लिये जो भोजन तैय्यार किया है उसे ग्रहण करके हमको सुख शान्ति और पापरहित सत्य आचरण के लिये प्रेरित करके दुःखों से दूर कीजिये[९]। जो पितर लोग खनिज विद्या (निखाता) अर्थात् भूगर्भ विद्या के विशेषज्ञ हैं, जो कृषि विद्या (परोप्ता) के ज्ञाता हैं, जो अत्यधिक बुद्धिमान् (दग्धाः) हैं ऐसे सभी विषयों के विद्वान् पितर हमारे घर में आवें और अन्न-जल का ग्रहण करें[१०]। अग्निविद्या और पदार्थविद्या के जाननेवाले विद्वानों को स्वादिष्ट भोजन कराकर हम उनकी सेवा किया करें (१८-२-३५)।

गृहस्थ का उपदेश :- गृहस्थ को उपदेश देते हुए लिखा है कि हे सद्गृहस्थ! इस गृहस्थ जीवन में तुम्हारी मानसिक शक्ति सुरक्षित रहे, तेरी प्राणशक्ति अर्थात् शारीरिक बल बना रहे। इन शक्तियों में कुछ भी न्यूनता न आने पावे। तुम्हारे शरीर के सभी अंग सुरक्षित रहें, कोई भी विकृत न हो। तुम्हारे शरीर में सभी रस अर्थात् रस रक्तादि सभी धातुएं यथावत् बनी रहें। जिससे तुम शरीर से बलवान् मन और बुद्धि से स्वस्थ और शान्तचित रहो, जिससे अगला वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम का जीवन पितर रूप में सुखपूर्वक व्यतीत कर सको और नवीन गृहस्थियों को सदुपदेश देते रहो[११]।

सौ वर्ष की आयु :- मनुष्य की आयु सौ वर्ष की होती है, सौ वर्ष तक मनुष्य जीवित रहे, इसके पहले मृत्यु न होवे यह उल्लेख अनेक वेदमन्त्रों (८-२-३८ से ४५) में किया है। शरद् ऋतु में मनुष्य के रोगी होने की अधिक सम्भावना होती है इसलिये सौ वर्षों का उल्लेख न करके सौ शरद् ऋतुओं तक जीवित् रहने की प्रार्थना की गयी है[१२]। शरद् ऋतु वर्ष में एक बार आती है इसलिये सौ शरद् ऋतुओं का तात्पर्य सौ वर्ष होता है। सौ वर्ष मनुष्य जीवित ही नहीं रहे अपितु वह स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हुए सुखपूर्वक सौ वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रहे, यह उपदेश दिया गया है[१३]। सौ वर्ष तक जीवित रहने की प्रार्थना करते हुए लिखा है कि सबका पालन पोषण करनेवाला परमेश्वर तेरी सौ वर्ष की आयु तक पूर्ण रक्षा करे, तुम अपने जीवन का दुरुपयोग न करो, जिस मार्ग पर श्रेष्ठ लोग चलते हैं उस पर तुम चलो[१४] यह निर्देश दिया है।

ऋषि वाचक शब्द :- ऋषि वाचक शब्दों का उल्लेख करके प्रार्थना की गयी है कि हे विश्वामित्र, हे जमदग्नि, हे वसिष्ठ, हे भारद्वाज, हे गौतम, हे वामदेव! हे

श्रेष्ठ पितरो ! आप सब हमें सुख प्रदान कीजिये। हमारे अनुनय विनय के कारण ही अत्रि ऋषि ने हमारे विनाश को रोक दिया है[१५] वेदमन्त्र में ऋषि वाचक नाम सस्वर (उदात्त अनुदात्तादि स्वरयुक्त) लिखे हुए है। जिससे स्पष्ट होता है कि ये शब्द यौगिक अर्थात् धातु-प्रत्यय से मिलकर बने हैं। क्योंकि रूढ़ि रूप में प्रयुक्त व्यक्ति वाचक संज्ञा शब्दों (Proper Noun) में उदात्तादि स्वर नहीं होते तथा उनमें तरप् (कण्वतर) तमप् (कण्वतम) प्रत्ययों (Comperative and Superlative degree) का प्रयोग नहीं होता है। अतः मन्त्र में विश्वामित्र कोई व्यक्ति विशेष नहीं अपितु जो सभी प्राणियों (नि. २-७-२५) से मित्रता करानेवाले, कण्व अर्थात् जो मेधावी (निघण्टु ३-१५) अत्रि अर्थात् जो त्रिविध तापों से रहित है वह अत्रि, वसिष्ठ अर्थात् सुख प्राप्त करानेवाला विद्वान्, भारद्वाज अर्थात् मन, गौतम अर्थात् वाक् शक्ति इन विविध अर्थों में इन शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनके द्वारा मनुष्य सुख प्राप्त करता है, इसलिये सुख प्राप्ति और विनाश से बचने की प्रार्थना इस मन्त्र में की गयी है। इस काण्ड (१८-३-१५,१६,६३ तथा १८-४-५४) में पितरों के प्रकरण में विश्वामित्र-वसिष्ठ-अत्रि आदि १७ ऋषियों के नामों का उल्लेख है। पितरों (पिता-पितामहादि) में कौन कौन से गुण होने चाहियें। यह निर्देश इन ऋषिवाचक नामों के द्वारा दिया गया है। वेदार्थ में प्रयुक्त यौगिक प्रक्रिया का ध्यान न रखने के कारंण अनेक विद्वान् इन नामों को व्यक्ति वाचक मानकर वेदार्थ करने और समझने में भ्रमित हो गये हैं।

स्वर्ग अर्थात् सुख विशेष :- स्वर्ग और नरक के विषय में यह भ्रान्ति है कि स्वर्ग और नरक पृथिवी से ऊपर अन्यत्र लोक हैं। इस भ्रान्ति को दूर करते हुए महर्षि दयानन्द ने स्वर्ग का अर्थ करते हुए लिखा है कि जो सुख विशेष और सुख की सामग्री को जीव प्राप्त होता है वह स्वर्ग कहाता है और जो विशेष दुःख और दुःख की सामग्री को जीव प्राप्त होता है उसको नरक कहते हैं। (आर्योद्देश्यरत्नमाला) इसलिये अथर्ववेद (६-१२०-३) में लिखा है कि जिस घर में भाई भाई प्रेमपूर्वक रहते हैं, सत्कर्म करते हैं, शरीर रोगरहित हैं तथा जहाँ माता-पिता की श्रद्धा से सेवा होती है। सन्तान की देख रेख होती है उस घर में स्वर्ग है[१६]। अर्थात् जिस घर में सुख और सुख के साधन होते हैं वह घर स्वर्ग है, स्वर्ग इस धरती से ऊपर कहीं अन्यत्र नहीं है। स्वर्ग विषयक अनेक मन्त्र इस काण्ड में हैं। योग के मार्ग को उपासक अपने अनुकूल जानकर सत्कर्म करता हुआ प्राणायामादि का अभ्यास करता हुआ, जिस योग मार्ग पर चलता है और उसके द्वारा विशेष सुख (स्वर्गम्) मोक्ष को प्राप्त करता है। तू भी उस सुख विशेष मोक्ष धाम को प्राप्त कर[१७]। यजमान यज्ञ करता हुआ (स्वर्गाः लोकाः) सुखविशेष के साधनरूप पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्युलोक इन तीनों लोकों के अन्न-जल-

वायु-प्रकाश आदि को प्राप्त करता है[१८]। इस प्रकार अनेक मन्त्रों में स्वर्ग सुख विशेष और उसके प्राप्ति के साधनादि का उल्लेख है। सत्कर्म करनेवाले को परमात्मा तक ले जानेवाला (स्वर्गः पन्थाः) सुख विशेष का मार्ग प्राप्त हो जाता है[१९]।

विष चिकित्सा :- विषैले प्राणी मनुष्य को काट डाले तो उसकी चिकित्सा के विषय में लिखा है कि यदि काले कौए, सांप या जंगली हिंसक पशु ने काट खाया हो और शरीर के किसी अंग को कष्ट पहुंचाया हो तो सभी रोगों का भक्षण करनेवाली अग्नि और पानी के द्वारा चिकित्सक उसकी चिकित्सा करे[२०]। अर्थात् शरीर के काटे हुए स्थान को अग्नि से जलाकर उसका विष नष्ट कर दे, जिससे विष पूरे शरीर में न फैले या ओषधियों को अग्नि में डालकर उसका धूम्रपान रोगी को करावे या ओषधियों को पानी में मिलाकर विषैले स्थान पर लगावे, ये संकेत वेदमन्त्र द्वारा दिये गये हैं।

सत्संग-यज्ञ :- यज्ञादि शुभ कर्म तथा सत्संग प्रवचनादि के श्रवण के महत्व का उपदेश देते हुए लिखा है कि जिस प्रकार समुद्र में तैरनेवाली नौका (नाव) से मनुष्य-नदी-समुद्रादि पार कर लेता है उसी प्रकार गुरुजनों के सदुपदेश और शास्त्रों के श्रवण करने से भावी कष्टदायक पाप कर्मों से बच जाता है। यज्ञ करनेवाले और सत्कर्म करनेवाले जिस सुपथ पर चलते हैं उस सुपथ पर जब मनुष्य चलने लगते हैं तो यज्ञीय भावनाओं और सत्कर्मों की अन्यों को प्रेरणा प्रदान करते है[२१]। जो लोग प्राणायाम करते हैं उनके फेफड़े ठीक रहते हैं (१८-४-९) गृहस्थ में प्रविष्ट हुए दम्पत्ति (पति-पत्नी) को यज्ञाग्नि सदा प्रदीप्त रखनी चाहिये, कभी बुझने नहीं देना चाहिये अर्थात् नित्य यज्ञ करना चाहिये (१८-४-१२) यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है। गृहस्थ में निरन्तर किया जानेवाला यज्ञ यजमान अर्थात् गृहस्थ दम्पत्ति को स्वर्ग अर्थात् सुख विशेष उसके साधन प्राप्त कराता है[२२]। जो लोग संसार का उपकार करते हैं, लोगों को सत्पथ पर ले जाते हैं हम उनका स्वागत करते हैं[२३] विश्व का पालन करनेवाले परमात्मा के प्रति हम नतमस्तक हैं (१८-४-३५) परमेश्वर बन्धनों से मुक्त करनेवाला है (१८-४-६९) इसलिये उससे पाप बन्धन से मुक्त करने की प्रार्थना (१८-४-७०) की गयी है। इस काण्ड के अन्तिम मन्त्र में चन्द्रमा और मन के परस्पर सम्बन्ध का वर्णन किया है[२४] तथा मन की चंचलता को दूर करने का उपदेश दिया है।

प्रमाण :-

१. ओ चित् सखायं....... पितुर्नपातमदधीत....॥ (अथर्व. १८-१-१)
२. न यत् पुरा चकृमा...... जामि तन्नौ.... ॥ (अथर्व. १८-१-४)
३. न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते....... रथ्येव चक्रा ॥ (अथर्व. १८-१-९)
४. न वा उ ते तनूं..... पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्....॥ (अथर्व. १८-१-१४)
५. किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥
(अथर्व.१८-१-३३)
६. अर्चामि वां वर्धयापो घृतस्नू...... अत्र पितरा शिशीताम् ॥ (अथर्व. १८-१-३१)
७. उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः..... हवेषु ॥ (अथर्व. १८-१-४४)
८. ये नः पितुः पितरो ये पितामहा...... पितृभ्यः नगसा विधेम ॥ (अथर्व. १८-२-४९)
९. बर्हिसदः पितर ऊत्यर्वा...... रयो दधात ॥ (अथर्व. १८-१-५१)
१०. ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिता।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितृन् हविषे अत्तवे ॥ (अथर्व. १८-२-३४)
११. मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते।
मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥ (अथर्व. १८-२-२४)
१२. इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासा तै। शते शरत्सु नो पुरा ॥ (अथर्व. १८-२-३८)
१३. अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम्....॥ (अथर्व. १८-२-४५)
१४. आयुर्विश्वायुः परिपातु त्वा.... सुकृतो यत्र.... ॥ (अथर्व. १८-२-५५)
१५. विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥ (अथर्व. १८-३-१६)
१६. यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
अश्लोणा अंगैरहुता स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥ (६-१२०-३)
१७. ऋतस्य पन्थामनुपश्य..... स्वर्गं....... श्रयस्व ॥ (अथर्व. १८-४-३)
१८. जुहूर्दाधार द्याम्..... स्वर्गाः........ यजमानाय ॥ (अथर्व. १८-४-५)
१९. ईजानः........ स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥ (अथर्व. १८-४-१४)
२०. यत् ते कृष्णाः........ सर्प..... ब्राह्मणा आविवेश ॥ (अथर्व. १८-३-५५)
२१. तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो....... भूतानि यदकल्पयन्त ॥ (अथर्व. १८-४-७)
२२. यज्ञ एति विततः कल्पमान......... जातवेदसं...... ॥ (अथर्व. १८-४-१५)
२३. अपूपवान् क्षीरवान्...... हुतभागा इह स्थ ॥ (अथर्व. १८-४-१६)
२४. चन्द्रमा अप्स्वन्तरा......... मे अस्य रोदसी ॥ (अथर्व. १८-४-८९)

एकोनविंश काण्ड

काण्ड परिचयः- उन्नीसवें काण्ड में ७२ सूक्त तथा ४५३ मन्त्र हैं। इस काण्ड में यज्ञ, जल, अग्नि, पुरुष अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा, नक्षत्र, गायत्री, अनुष्टुप् आदि छन्द, शान्ति प्राप्त करने के उपाय, मन के दोष और उनको दूर करने के साधन, जंगिड़-शतावर-गुग्गुलादि ओषधियों के गुण, तप और दीक्षा से राष्ट्रीय सुरक्षा-समुन्नति सूरमा (अंजन) ब्रह्म यज्ञ का महत्व, रात्री की विशेषता, काल का महत्व, स्वप्न-निद्रा आदि विविध विषयों का वर्णन इस काण्ड में हैं।

राष्ट्रीय सम्पदा :- आदर्श राष्ट्र की कल्पना करता हुआ एक राष्ट्र प्रेमी व्यक्ति परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो ! मेरे राष्ट्र में नदियां (नद्यः) अच्छी तरह से बहती रहें अर्थात् नदियों में जल प्रवाह सदा बना रहें। वायु ठीक बहता रहे सभी राष्ट्रवासियों को पर्याप्त प्राणवायु प्राप्त होता रहे, पशु-पक्षी सुरक्षित रहें, इस राष्ट्र की सदा उन्नति होती रहे[१]। राष्ट्र की राज्य सम्पदाएं सुरक्षित रहें (१९-१-३)। पर्वतों से निकलनेवाली नदियों का पानी, कुओं का पानी और वर्षा का जल सभी मनुष्यों के लिये रोगनाशक और शीतलता और शान्ति प्रदान करनेवाला हो[२]।

परमात्मा और जीवात्मा :- इस काण्ड के छठे सूक्त में पुरुष अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा का वर्णन है ब्रह्माण्ड रूपी पुरी में विद्यमान रहनेवाले परमात्मा को पुरुष कहते हैं[३] तथा शरीर रूपी नगर में रहनेवाले जीवात्मा को भी पुरुष कहते हैं[४]। किन्तु ब्रह्माण्ड में रहनेवाला परमात्मा पुरुष विशेष (ईश्वर) कहलाता है और शरीर में रहनेवाला जीवात्मा सामान्य पुरुष कहलाता है, जो मान-अपमान-राग-द्वेषादि से प्रभावित होता रहता है[५]। यहां इस सूक्त में ब्रह्माण्ड में रहनेवाले परमात्मा को सर्वद्रष्टा-सर्वाधार तथा दश अंगुलियों का अतिक्रमण करनेवाला कहा है अर्थात् संसार की रचना करने में उसको दस अंगुलियों (दो हाथों) की आवश्यकता नहीं पड़ती है, विना हाथों के वह सृष्टि की रचना करता हैं, जबकि शरीर में रहनेवाला दोनों हाथों (दस अंगुलियों) से प्रत्येक पदार्थ (सुई से लेकर हवाई जहाज तक) का निर्माण करता है यही दोनों पुरुषों की भिन्नता वेदमन्त्र में स्पष्ट की है[६]। सारा ब्रह्माण्ड उस परमात्मा की महिमा का गान कर रहा है, जो परमात्मा के एक अंश में समाया हुआ है और इसका तीन गुणा (ब्रह्म का अंश) इस ब्रह्माण्ड से भी परे है अर्थात् ब्रह्म अनन्त है[७]। परमात्मा का शिर-द्युलोक, नाभि-अन्तरिक्ष और पृथिवी पैर के रूप में है यह परमात्मा का विशाल स्वरूप है ऐसी कविता के रूप में कल्पना करके स्पष्ट किया है कि प्राणियों के शरीर के समान परमात्मा का यथार्थ रूप में शरीर नहीं है[८]।

चार वर्ण :- जो मुख अर्थात् मस्तिष्क के कार्य करता है अर्थात् समाज में अज्ञानता को विद्या द्वारा दूर करने का यत्न करता है उसे ब्राह्मण कहते हैं। जो आंख-नाक-कान-रसनादि इन्द्रियों के द्वारा देखना-सुनना-सूंघना और रसास्वाद करता तथा वाणी के द्वारा राष्ट्रवासियों को ज्ञान प्रदान करने का कार्य करता है, वह ब्राह्मण, बाहुओं (भुजाओं) के समान रक्षा करनेवाले को क्षत्रिय, शरीर के मध्य भाग अर्थात् पेट के समान सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाले को वैश्य तथा पैरों के समान सभी का जो आधार है वह शूद्र अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यादि को शारीरिक सहयोग प्रदान करता है उसे शूद्र कहा जाता है[९]।

नक्षत्र विद्या :- इस काण्ड के सूक्त ७ और ८ में कृत्तिका-रोहिणी आदि नक्षत्रों का वर्णन है। इन दोनों सूक्त के मन्त्रों में २८ नक्षत्रों का उल्लेख है जो इस प्रकार हैं १. कृत्तिका २. रोहिणी ३. मृगशिरः ४. आर्द्रा ५. पुनर्वसु ६. पुष्य ७. आश्लेषा ८. मघा. ९. पूर्वा फाल्गुन्यौ १०. उत्तरा फल्गुन्यौ ११. हस्त १२. चित्रा १३. स्वाति १४. विशाखे या राधे १५. अनुराधा १६. ज्येष्ठा १७. मूलम् १८. पूर्वाषाढ़ा १९. उत्तराषाढ़ा २०. अभिजित् २१. श्रवण २२. श्रविष्ठाः (घनिष्ठाः) २३. शतभिषक् २४. पूर्वाप्रोष्ठपदा (भाद्रपदा) २५. उत्तरा भाद्रपदा २६. रेवती २७. युजी (अश्विनी) २८. भरण्या। इन नक्षत्रों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करके मनुष्य ऋतु परिवर्तन के विषय में ज्ञान प्राप्त करके किस ऋतु में कौन कौन से पदार्थ हवन सामग्री में डालकर यज्ञ (सुहवम् अग्ने) करना चाहिये। जिससे हमारा शरीर रोगरहित रहे यह उपदेश दिया गया हैं[१०]। आर्द्रा नक्षत्र का सम्बन्ध आर्द्रता से (वर्षा) से होता है इसलिये इस नक्षत्र में वृष्टि यज्ञ करने से वृष्टि होती है। यह भी स्पष्ट होता है। मघा नक्षत्र से अयन अर्थात् उत्तरायण का प्रारम्भ होता है, मूल नक्षत्र रोग रहित हो यह प्रार्थना भी की गयी है[११] आषाढ़ा नक्षत्र हमें अन्न देनेवाला हो[१२] अर्थात् आषाढ़ मास में वर्षा होने पर अन्न प्राप्ति के लिये किसान अन्न बोने का कार्य प्रारम्भ करता हैं यह उपदेश दिया गया है।

शान्ति और निर्भयता की प्रार्थना :- नौंवे तथा दसवें सूक्त में परमात्मा से शान्ति की प्रार्थना की गयी है। द्युलोक-अन्तरिक्ष-पृथिवी तथा पृथिवी पर उत्पन्न होनेवाली ओषधियां और नदी-नाले में बहनेवाला और कुओं में रहनेवाला जल शान्तिदायक हो[१३]। हमारे विचार-संकल्प शान्तिदायक हों[१४]। परमात्मा को मित्र-वरुण-विष्णु-प्रजापति-इन्द्र-बृहस्पति आदि नामों से सम्बोधित करते हुए उससे सुख शान्ति की प्रार्थना की गयी है[१५]। परमात्मा को अजन्मा कहकर सुख शान्ति के लिये निवेदन किया है[१६]। वेदमन्त्रों मे सुख और शान्ति की प्रार्थना ही नहीं की गयी है अपितु

भय से रहित होने के लिये प्रार्थना करते हुए लिखा है कि द्युलोक-अन्तरिक्ष-पृथिवी आदि लोक भयरहित हों हमें आगे-पीछे-दायें-बायें किसी भी ओर से भय प्राप्त न हो, हम निर्भय होकर रहे[१७]। मित्र और शत्रु से भी हम भयभीत न हों, दिन रात तथा सभी दिशाएं हमारे लिये भयरहित होवें[१८] यह निवेदन किया है। हमारे राष्ट्र का राजा राष्ट्र की प्रजा को अपनी सुरक्षा व्यवस्था के द्वारा सभी दिशाओं से शत्रुरहित और भयरहित करें[१९]।

उन्नति की ओर अग्रसर :- ब्रह्म की उपासना करनेवाला सदा उन्नति को प्राप्त होता है इस का उपदेश देते हुए लिखा है कि जैसे अग्नि पृथिवी से ऊपर उठता है वैसे ही ब्रह्म की उपासना करनेवाला ऊपर अर्थात् उन्नति को प्राप्त करता है[२०]। वायु अन्तरिक्ष के कारण ऊंचाई की ओर बढ़ता है सूर्य द्युलोक के कारण, चन्द्रमा नक्षत्रों के कारण ऊंचाई पर है अर्थात् जैसे सभी नक्षत्रों में चन्द्रमा सर्वश्रेष्ठ है वैसे ही उपासक सभी मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ होता है (१९-१९-२ से ४)। ब्रह्मचारी लोग वेदों का अध्ययन करके ब्रह्म की महिमा का गान करते हैं[२१]। अर्थात् ब्रह्म का यथार्थ स्वरूप वेदों का यथावत् अध्ययन करनेवाले ब्रह्मचारी जान पाते हैं और लोगों को बता सकते है उत्तम सन्तान के कारण गृहस्थी भी यश और कीर्ति को प्राप्त करता है (१९-१९-११)। सूक्त इक्कीस में गायत्री -जगती आदि छन्दों के विषय में उपदेश दिया हैं। विविध रोगों के निवारण के विषय में सूक्त २२ में वर्णन किया है। प्रजा के कल्याण के लिये राजा का राज्याभिषेक करना चाहिये (१९-२४-५)। राजा को सदा अथक परिश्रम करनेवाले अपने मन्त्रियों के साथ विचार विमर्श करके सदा राष्ट्र की उन्नति के लिये प्रयत्न करना चाहिये (१४-२५-१)। मनुष्य स्वस्थ और दीर्घायु हो इस हेतु जो उपदेश वेदों में परमात्मा ने दिया है उसके अनुसार आचरण करता हुआ जीवन व्यतीत करे, पूर्णायु (शतायु से पहले मृत्यु को प्राप्त न हो)[२२]। इस हेतु शरीर के बहुमूल्य रत्न शुक्र (वीर्य) को शरीर में सदा सुरक्षित रखे (१९-२७-९)। यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है।

विविध मणि :- दर्भमणि :- इस काण्ड के सूक्त २८-२९-३०-३२-३३ सूक्त में दर्भमणि का वर्णन है। जो शत्रु (या रोग) का विदारण करता है उसे दर्भ कहते हैं (दृणाति विदारयति इति दर्भ) शत्रु को विदारण (नष्ट) करनेवाले सेनापति को तथा रोग को नष्ट करनेवाली ओषधि को दर्भ कहते हैं। इन सूक्तों के मन्त्रों में उपदेश देते हुए लिखा है कि हे शत्रुओं का विदारण नष्ट करनेवाले शिरोमणि सेनापति ! तुम राष्ट्र के आन्तरिक शत्रुओं (आतंकवादियो) और देश की सीमाओं पर आक्रमण करनेवाले शत्रुओं के हृदयों को भेद कर दो अर्थात् नष्ट कर दो[२३]। आन्तरिक शत्रुओं

को काट मार डाल (१९-२८-७) तथा सेना द्वारा आक्रमण करनेवाले शत्रुओं को भी नष्ट कर दे (१९-२८-८)। हे सेनापति! मेरे राष्ट्र पर आक्रमण करने की इच्छा करनेवालों को भी जड़ मूल से समाप्त कर दो (१९-२९-५)। परमात्मा को भी दर्भ कहा गया है क्योंकि वह भी काम-क्रोध-ईर्ष्या-द्वेषादि आन्तरिक दोषों को (जो अध्यात्म पथ में शत्रु हैं उनको) नष्ट करता है (१९-३२-५)।

१. औदुम्बर मणि :- औदुम्बर मणि का वर्णन करते हुए वेद में उपदेश दिया है कि यह उदुम्बर अर्थात् 'गुलर वृक्ष' गाय-बैल-घोड़ा-बकरी आदि सभी पशुओं की शुद्धि करनेवाला है। यह वन की रक्षा तथा पालन करता है। मनुष्यों की कामनाओं की पुष्टि करता है[२४]। राज्य का अधिकारी प्रजा धन तथा राष्ट्र के उदुम्बरादि वृक्षों का भी रक्षक और पालक है (१९-३१-७)। उदुम्बर पुष्टि प्रदान करता है (१९-३१-१३)। राज्य शिरोमणि शूरवीर राष्ट्र की रक्षा वनों के अधिपति उदुम्बर की रक्षा करे जिससे सभी राष्ट्रवादी शूरवीर बन जायं (१९-३१-१४)। गूलर का प्रयोग शरीर को बलवान् और पुष्ट बनाने में होता है यह वेदमन्त्रों से स्पष्ट होता है।

२. जंगिड़ मणि :- दर्भ मणि तथा औदुम्बर मणि के समान जंगिड़ मणि भी ओषधि है इसका वर्णन इस काण्ड के सूक्त ३४ तथा ३५ में किया गया है इनका ऋषि अंगिरा है। यह ओषधि उत्पन्न हुए रोगों को नष्ट करती है। (जम् उत्पन्नं रोगं गिरति-निगिरति नश्यतीति जंगिड़ः) इस ओषधि को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि हे ज़ंगिड़! हम सबकी रोगों से रक्षा करो[२५] (रक्षतु) यह ओषधि विषकन्ध अर्थात् सुखे रोग को दूर करने के लिये बहुत उपयोगी है ऐसा अथर्ववेद (२-४-५) में लिखा है[२६]। हे जंगिड़ ओषधि! हिंसा करनेवाले सैंकड़ों रोग के कीटाणुओं को अपने प्रभाव से उनके विष को दूर कर दे (१९-३४-२)। इस ओषधि के सेवन से कफ से सम्बन्धित सर्दी-जुकाम-खांसी आदि रोग नष्ट होते हैं (१९-३४-३)। हे जंगिड़ ओषधि! विद्वान् लोग तुमको अंगिरा के नाम से भी जानते है[२७]। तू सब रोगों (सर्वाः अमीवाः) को नष्ट करती है (१९-३४-९)। हे जंगिड़ ओषधि! तू बल का विनाश करनेवाली कफ रोग को नष्ट करनेवाली, शरीर के पृष्ठ भाग पीठ के कुबड़ेपन को दूर करनेवाले, प्रत्येक शरद् ऋतु में होनेवाले कष्टदायक ज्वर को दूर करनेवाली है[२८], इस तरह वह ओषधि अत्युपयोगी है। दुःखदायक हृदय रोगों को दूर करनेवाली, भयंकर नेत्र रोग के सुक्ष्म कीटाणुओं को नष्ट करनेवाली तथा सभी रोगों से रक्षा करनेवाली जंगिड़ ओषध हैं[२९]।

३. शतवार मणि (शतावरी) :- विविध ओषधियों में शतवार अर्थात् शतावरी के बिषय में वर्णन करते हुए लिखा है कि शतवार यक्ष्मा रोग (टी.बी.) के

कीटाणुओं को नष्ट करती है। यह नाना रोगों के दुष्परिणामों का विनाश करती है[३०]। यह यक्ष्मा रोग को ही नहीं अपितु यातना देनेवाले वात रोगों को भी नष्ट करती हैं (१९-३६-२)। यक्ष्मा रोग नया हो या पुराना हो तथा श्वास प्रश्वास में होनेवाला शब्द (अस्थमा) हो उसको नष्ट करती है (१९-३६-३)। यह सैकड़ों वीरों को जन्म देती है (वीरान् अजनयत्) अर्थात् बल प्रदान करती है (१९-३६-४)। इस तरह शतवार (शतावरी) की महत्ता का वर्णन इस सूक्त के मन्त्रों में किया गया है। इससे अगले सूक्त में परमात्मा से बल ओज स्वास्थ्य और दीर्घायु की प्रार्थना की गयी है (१९-३७)।

गुल्गुलुः (गुग्गुल):- गुग्गुल की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि जहां पर गुग्गुल ओषधि की सुगन्ध रहती है अर्थात् जहां यज्ञ होता हो और उसमें गुग्गुल डाली जाती हो तो उसकी सुगन्ध के कारण यक्ष्मा रोग (टी.बी.) नहीं होता है। यक्ष्मा रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं[३१] गुग्गुल मानसिक क्षीणता को भी दूर करती है। आयुर्वेद में इसका अत्यधिक महत्त्व है, अनेक रोगों को दूर करने में इसका उपयोग होता है। इस तरह विविध ओषधियों का वर्णन अथर्ववेद में मिलता है।

वेद के विद्वानों के कर्तव्यः- शारीरिक दोषों (रोगों) को ओषधि के द्वारा दूर करने का उपदेश देकर मानसिक दोषों को किस प्रकार दूर किया जाता है इसका वर्णन करते हुए वेदों के विद्वान् से निवेदन किया है कि मेरे मन और वाणी के जो दोष हैं उनको आप दूर कर दीजिये[३२]। जिससे मन में कभी अशुभ चिन्तन न करके सदा कल्याणकारी विचार (शिव संकल्प) किया करूं तथा कटुवाणी के द्वारा किसी को कष्ट न दे सकूँ। प्रजा का सुख और कल्याण चाहते हुए ऋषियों ने तप और व्रतों का अनुष्ठान किया है जिससे राष्ट्रीय भावना तथा राष्ट्रवासियों में बल और तेज प्राप्त हो और राष्ट्र बलशाली हो[३३]।

आंजन (सूरमा और परमात्मा) :- परमात्मा जगत् को बनाता है, व्यक्त करता है इसलिये इसे आंजन कहते हैं। आंजन (सूरमा) को भी कहते हैं यह नेत्र रोग को नष्ट करता है, नेत्र की दृष्टि को स्पष्ट करता है, आंखों को शीतलता (ठंडक) देता है, परमात्मा भी मानसिक रोग-काम-क्रोध आदि को दूर करके मानसिक शान्तिं प्रदान करता है, सत्कर्मों को करने की प्रेरणा देकर आयु को बढ़ाता है[३४]। सूरमा पीलिया रोग जाया (पत्नी) के सम्पर्क से उत्पन्न रोग, ज्वर या वात रोग, यक्ष्मा रोगादि को दूर करता हैं[३५]। इस प्रकार आंजन के गुणों का उल्लेख विस्तार से किया है।

रात्री और काल :- इस काण्ड के सूक्त ४७ से ५० तक में रात्री के विषय में

वर्णन है रात्री में मनुष्य विश्राम करके अपनी थकान को दूर करता है, मनुष्य रात्री का अभिवादन करते हुए कहता है कि हे सुख दायिनी रात्री में तुम्हारा अभिवादन करता हूँ। तुम हमारे शरीर को शीतलता देकर शान्ति प्रदान करनेवाली हो[३६]। रात्री के पश्चात् उषा (प्रातः) काल उसके बाद दिन और दिन के बाद रात्री यह क्रम अबाध गति से चल रहा है यह उपदेश दिया है (१९-५०-७)। रात्री के विषय में वर्णन करके ब्रह्म की उपासना करनेवाले उपासक के मन इन्द्रियादि दोष रहित हो जाते हैं क्योंकि वह सर्वत्र ब्रह्म की सत्ता का अनुभव करता है (१९-५१-१)। यह वर्णन करके काल की महत्ता का वर्णन सूक्त ५२, ५३ तथा ५४ में किया है। दिन-रात-वर्षा-हेमन्त-शरदादि ऋतुएं सभी उस काल की महिमा है। काल रूपी अश्व को लाल-नीली-पीली आदि सात रंगोंवाली किरणें वहन कर रही हैं[३७]। सूक्त ५५ में अग्नि अर्थात् अग्रणी राजा प्रजा तथा उसकी धन सम्पदा की रक्षा करे यह उपदेश दिया है।

स्वप्न-व्रत-बल-दीर्घायु :- मनुष्य की जागृत स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएं होती हैं। स्वप्नावस्था में मनुष्य का शरीर नहीं मन क्रियाशील होता है। स्वप्नावस्था का वर्णन सूक्त ५६-५६ में किया है। स्वप्नावस्था में मन बहुत दूर चला जाता है इसलिये स्वप्नावस्था को बहुत वेगवाला (बृहद्गावा १९-५६-३) कहा है। सूक्त ५८ में यज्ञ के विषय में वर्णन करके ५९वें सूक्त के प्रथम मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना की है कि हे परमेश्वर! आप मनुष्य के सत्य कर्माचरणादि व्रतों की रक्षा करते हो[३८]। हे प्रभो! हमारे मुख में वाक् शक्ति, नासिका में प्राण शक्ति, कानों में श्रवण शक्ति आदि रहे यह प्रार्थना की गयी है[३९]। मैं ब्राह्मण क्षत्रियादि सभी का प्रिय बनूं (१९-६-२-१) विद्वान् को सम्बोधित करते हुए कहा कि हे वेदों के विद्वान् उठो यज्ञादि से बोध करो, यजमान की आयु, सन्तान, पशु, धनादि को बढ़ाओ[४०]। इसी काण्ड के सूक्त ६९ में पूर्ण आयु (सर्वमायुः) जीवित रहने की प्रार्थना चार मन्त्रों (१९-६९-१से ४) में की गयी तथा अपने जीवन की पूर्ण आयु की ही नहीं अपितु माता-पिता और गुरुजनों के पुर्णायु तक जीवित रहने की प्रार्थना की गयी है[४१]।

वेदमाता :- इस काण्ड के सूक्त ७१ के प्रसिद्ध मन्त्र[४२] में वर्णन है कि मैंने वर अर्थात् इष्ट फल देनेवाली वेदमाता की स्तुति अर्थात् अध्ययन किया है। यह वेदमाता हमारे जीवन को पवित्र करनेवाली है। उसके बताये हुए उपदेशों के अनुसार आचरण करने से आयु, स्वास्थ्य-उत्तम सन्तान-पशु-यश-धन-ब्रह्म-तेजस्विता आदि प्राप्त होते हैं इन सबको जीवन में प्राप्त करके ब्रह्म लोक (मोक्ष) को प्राप्त करता हूँ। मोक्ष को प्राप्त करने के योग्य हो जाता हूँ। इस काण्ड के अन्तिम मन्त्र (१९-७-२-१) में जीवन की रक्षा की प्रार्थना की गयी है।

प्रमाण :-

१. संस्रवन्तु नद्यः स वाताः....हविषा जुहोमि। (अथर्व. १९-१-१)
२. शं त आपो हैमवतीः....सन्तु वर्ष्या। (अथर्व.१९-२-१)
३. पुरं या वेद ब्राह्मणो यस्याः पुरुष उच्यते। (अथर्व.१०-२-२८)
४. अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूर योध्या।
५. क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः। योग.
६. सहस्र बाहुः पुरुषः सहस्राक्षः दशांगुलम्। (अथर्व.१९-६-१)
७. तावन्तो अस्यमहिमानस्ततो....त्रिपादस्यामृतं दिवि। (अथर्व.१९-१-१)
८. नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ...तथा लोकाँ अकल्पयन। (अथर्व.१९-६-८)
९. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासिद् ...शुद्रो अजायत। (अथर्व.१९-६-६)
१०. सुहवमग्ने कृत्तिका.....अयनं मघा मे। (अथर्व.१९-७-२)
११. पुण्यं पूर्वा फाल्गुन्यौ....अरिष्टं मूलम्। (अथर्व.१९-७-३)
१२. अन्नं पूर्वा रासतां मे आषाढ़ा.....सुपुष्टिम्। (अथर्व.१९-७-४)
१३. शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी.....नः सन्त्वोषधीः। (अथर्व.१९-९-१)
१४. शन्तानि पूर्व रूपाणि.....शमस्तु नः। (अथर्व.१९-९-२)
१५. शन्नो मित्रः शं वरुण ....भवत्वर्यमा। (अथर्व.१९-९-६)
१६. शन्नो आज एकपाद....देवगोपा। (अथर्व.१९-११-३)
१७. अभयं न करत्यन्तरिक्षमंभम्....नो अस्तु। (अथर्व.१९-१५-५)
१८. अभयं मित्रादमयममित्रादभयं....मित्रं भवन्तु। (अथर्व.१९-१५-६)
१९. असपत्नं पुरस्तात्......मा शचीपति। (अथर्व.१९-१६-१)
२०. मित्र पृथिव्योद कामात्.....शर्मच वर्मच यच्छुतु। (अथर्व.१९-१९-१)
२१. ब्रह्म ब्रह्मचारिभिसदक्रमत्......यच्छुतु। (अथर्व.१९-१९-८)
२२. आयुषायुः कृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरूदगा वशम्। (अथर्व.१९-२७-८)
२३. भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं......पातय। (अथर्व.१९-२८-४)
२४. औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय....सविता करत्। (अथर्व.१९-३१-१)
२५. जंगिड़ोऽसि जंगिड़ो.....रक्षतु जंगिड़ः। (अथर्व.१९-३४-१)
२६. शणश्च मा जंगिड़श्च......कृष्या अन्यो रसेभ्यः। (२-४-५)
२७. तमु त्वां गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः। (अथर्व.१९-३४-६)
२८. आशरिकं विशरिकं बलासं पृष्ठ्यामयम्।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जंगिड़स्करत्। (अथर्व.१९-३४-१०)
२९. दुर्हार्दः संघोर चक्षुः....परिपाणोऽसि जंगिड़। (अथर्व.१९-३५-३)
३०. शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान्......चातनः। (अथर्व.१९-३६-१)
३१. न तं यक्ष्मा असन्धते...गुल्गुलोः सुरभिः गन्धोअश्नुते। (अथर्व.१९-३८-१)
३२. यन्मे छिद्रं मनसो यच्चवाचः......बृहस्पतिः। (अथर्व.१९-४०-१)
३३. भद्रमिच्छन्त ऋषयः.....देवा उप संनमन्तु। (अथर्व.१९-४१-१)
३४. आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यतेतदाञ्जनम्। (अथर्व.१९-४४-१)
३५. यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पक.....आञ्जनम्। (अथर्व.१९-४४-२)
३६. शिवां रात्रीमनु सूर्यंच हिमस्य माता...वन्दे...दिक्षु। (अथर्व.१९-४९-५)
३७. कालो अश्वो वहति सप्तरश्मि....भुवनानि विश्वा। (अथर्व.१९-५३-१)
३८. वमग्ने व्रतपा असि......इड़चः। (अथर्व.१९-५९-१)
३९. वाङ्म आसन् नसोः प्राण......बलम्। (अथर्व.१९-६०-१)
४०. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय....वर्धय। (अथर्व.१९-६३-१)
४१. इन्द्र जीव....देवा जीवा सर्वमायुर्जीव्यासम्। (अथर्व.१९-७०-१)
४२. स्तुता मया वरदा वेदमाता......ब्रह्मलोकम्। (अथर्व.१९-७१-१)

विंश काण्ड

काण्ड परिचय :- बीसवें काण्ड में १४३ सूक्त तथा ९५८ मन्त्र हैं। इस काण्ड पर आचार्य सायण का या अन्य किसी मध्यकालीन वेदभाष्यकार का भाष्य नहीं मिलता है। इसलिये कई विद्वान् बीसवें काण्ड को अर्वाचीन मानते हैं जिसे बाद में अथर्ववेद में मिलाया गया है। किन्तु गोपथ ब्राह्मण (१-५) में स्पष्ट लिखा है कि अथर्ववेद के २० काण्ड हैं। कर्म काण्ड विषयक ग्रन्थ ''वैतानसूत्रों'' में भी अथर्ववेद के बीसवें काण्ड के मन्त्रों का विनियोग किया है इससे स्पष्ट होता है कि अथर्ववेद का बीसवां काण्ड भी अथर्ववेद के शेष काण्डों के समान प्राचीन है। बीसवें काण्ड के १२७ से १३६ सूक्तों को ''कुन्ताप सूक्त'' कहते हैं। कुन्ताप शब्द का अर्थ गोपथ ब्राह्मण के अनुसार पाप कर्म को जलानेवाले सूक्त को कुन्ताप कहते हैं (कुम् नाम कुत्सितं भवति यत् तत् तपति तस्मात् कुन्तापः) अथर्ववेद सर्वानुक्रमणी में ''कुन्ताप सूक्तों के'' ऋषि-देवता और छन्दों का उल्लेख नहीं है। ये सूक्त अथर्ववेद की ''पैप्पलाद शाखा'' में भी नहीं हैं। इसलिये इन्हें 'खिल' अर्थात् परिशिष्ट माना जाता है। महर्षि दयानन्द के अनुसार भी ये परिशिष्ट अर्थात् प्रक्षिप्त हैं। यह ''चतुर्वेद विषय सूची'' से ज्ञात होता है। कुन्ताप सूक्तों (१२७-१३६ सूक्तों) के कुलमन्त्र १४७ हैं। इस काण्ड में अन्य विषयों के अतिरिक्त आध्यात्मिक विषय का विस्तृत उपदेश दिया गया है।

परमेश्वर की महिमा :- परमेश्वर की न्याय व्यवस्था को स्मरण करता हुआ उपासक कहता है कि हे प्रभो! आप का न्याय रूपी अंकुश पूरे ब्रह्माण्ड में सदा से व्याप्त है अर्थात् आपकी न्याय व्यवस्था से कोई भी व्यक्ति कहीं पर भी नहीं बच सकता है। उसको निश्चित ही पाप और पुण्य का फल मिलता है[१]। परमेश्वर की महिमा का उपदेश देते हुए मन्त्र में लिखा है कि हे प्रभो! आकाश से न गिरनेवाला तथा सैकड़ों किरणोंवाला सूर्य जो अपनी तीक्ष्ण किरणों के द्वारा समुद्र के जल को वाष्प के रूप में परिवर्तित कर देता है वह बहुत समय के बाद भी आकाश से नीचे नहीं गिरा (न पात्) अर्थात् अपने स्थान पर गतिशील है सभी ग्रह-उपग्रहों को गतिशील बनाये हुए है[२]। परमेश्वर ने जल के विशाल भण्डार समुद्र को बनाया, वर्षाकाल में पृथिवी पर होनेवाली वर्षा परमात्मा की महिमा का दिग्दर्शन कराती है[३]। परमात्मा अन्धकार को दूर करता हुआ दिन की रचना करता है वैसे ही परमात्मा पुण्य कर्म करनेवालों पर सुखों की वर्षा करता है[४]। परमात्मा (शुष्मी) बलशाली है, आनन्द की वर्षा करनेवाला तथा पाप प्रवृत्ति को नष्ट करनेवाला है[५] (वृत्रहा) इस प्रकार अनेक मन्त्रों में परमात्मा की महिमा गायी है[६]

राजा के गुण :– राष्ट्र के लिये राजा की आवश्यकता होती है इसका वर्णन करते हुए वेदमन्त्र में लिखा है कि राष्ट्र की रक्षा के लिये हे राजन्! हम आपको पुकारते हैं। राजा युवा-राष्ट्र रक्षा हेतु उग्र स्वभाववाला होना चाहिये यह निर्देश वेद में दिया है[६]। जिस राजा की सेना शत्रुओं को नष्ट कर दे वही राजा हमारा सच्चा रक्षक है ऐसे प्रजा रक्षक राजा का हमको चयन करना चाहिये[७]। जो राष्ट्र की सम्पत्तियों की अच्छी तरह से रक्षा करे ऐसे राजा का चयन कर हमें उसका गुण-गान करना चाहिये[८]। योग्य व्यक्ति को राजा बनाना चाहिये यह संकेत वेद ने किया है।

वेदस्वाध्याय और सात्विक भोजन :– मनुष्यों को वेदों का स्वाध्याय तथा सात्विक भोजन करना चाहिये। इस विषयक उपदेश देते हुए लिखा है कि हम वेदवाणी के द्वारा अर्थात् वेदों का स्वाध्याय करके दुष्परिणामवाली दुर्बुद्धि जिसके कारण मनुष्य दुष्कर्म में प्रवृत्त हो जाता है और उसका फल दुःख के रूप में प्राप्त होता है, ऐसी अनिष्टफल दायिनी बुद्धि को दूर करें। वेदों का स्वाध्याय करके तथा गाय के सात्विक दूध के सेवन द्वारा हम अपनी बुद्धि को ठीक करें। यव-जौ आदि सात्विक अन्न का सेवन करके हम अपनी आध्यात्मिक धन सम्पदा पर विजय प्राप्त करें[९]। हे उपासक! ज्ञान से सम्पन्न वेदवाणी द्वारा अपने मन को शुद्ध कर, अपने अज्ञान को हटाकर काम-क्रोधादि विकारों को समाप्त कर दे और सत्कर्मों में प्रवृत्त रहो[१०]।

परमात्मा का स्मरण :– परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हुए वेदमन्त्र में उसे 'अथर्वा' कहा है अर्थात् वह सदा एकरस अपरिवर्तनशील है, वह अनादि है। परमात्मा 'उशना' अर्थात् प्राणियों के सुख और कल्याण की कामनावाला है। इसी कारण उसने सृष्टि की रचना की है। वह व्रतपा अर्थात् व्रतों का पालक-प्रेरक-रक्षक है, वह सर्व नियन्ता (यम) अर्थात् सबको नियमों-व्यवस्था-अनुशासन में रखनेवाला है। उसी परमात्मा ने तेजस्वी सूर्य की रचना की है। अपने उपदेश (सत्कर्म की आन्तरिक प्रेरणा) द्वारा हमें कर्तव्य पथ की ओर प्रेरित करता है ऐसे अमृत स्वरूप परमात्मा का हम स्मरण करते हैं[११]। परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह उपासक के काम-क्रोधादि शत्रुओं का हरण (हारितः) करनेवाला है वह लोहे के समान सुदृढ़ (आयसः) बलवान् अर्थात् सर्वशक्तिमान् है[१२]। परमात्मा अनादि स्वरूप है, उसके बल अर्थात् अनुशासन में पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्युलोकादि व्यवस्थित हैं[१३] जिस परमेश्वर के बारे में लोग पूछते हैं कि वह कहां है (२०-३४-५)? जिसके निर्देश में गाय-घोड़े आदि सभी पशु रहते हैं, जिसने सूर्य और उषा को बनाया, जिसने बादलों, नदियों और समुद्र में जल की व्यवस्था की है, वह परमात्मा है[१४]। परमात्मा ही पाप वासनाओं को नष्ट करनेवाला है (२०-३६-११)।

परमात्मा की वेदवाणी :- परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में वेदों का ज्ञान दिया, यह वेदों से ही स्पष्ट होता है। वेदों की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है कि वेदवाणी 'अष्टपदी' अर्थात् आठ प्रकार के पदोंवाली है। वेदों में 'नाम-आख्यात-उपसर्ग और निपात' ये चार प्रकार के शब्द होते हैं जिनके आठ भेद हो जाते हैं। नाम शब्द जातिवाचक-नदी-पर्वतादि तथा व्यक्तिवाचक-हिरणगर्भ-सम्राट् आदि दो प्रकार के होते हैं। आख्यात अर्थात् क्रियावाचक शब्द आत्मने पदी और परस्मैपदी दो प्रकार के होते हैं। इस तरह नाम और आख्यात के चार प्रकार होते हैं तथा निपात तीन प्रकार (नि. १-२-४) के और एक प्रकार के उपसर्ग ये आठ प्रकार के पद होते हैं जिसे अष्टपदी कहा है। उपमा-रूपक-श्लेषादि अलंकार नौ होते हैं। इसलिये वेदवाणी नौ प्रकार के मुख्य अलंकारवाली है। इसमें सत्य नियमों की व्याख्या (ऋतस्पृशम्) की है अर्थात् वेदों में सभी सत्य विद्याओं का वर्णन है। वेदों में वर्णित कोई भी विषय असत्य या मिथ्या नहीं है। ऐसी वेदवाणी परमेश्वर से प्राप्त हुई है[१५] इस तरह वेद मन्त्र में वेदों के रहस्यों को स्पष्ट किया है कि परमात्मा से ही वेद प्रकट हुए है इसलिये उसे जातवेदस् कहा गया है। वेदों में निर्दिष्ट नियमों का पालन करके साधक जन्म और मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है और मोक्षावस्था में सर्वत्र विचरण (इच्छानुसार भ्रमण) करता है मोक्ष का समय पूरा होने पर वापस इस जगत् में (आ गम) लौट आता है[१७]। अर्थात् मुक्ति से पुनरावृति होती है यह वेदमन्त्र से स्पष्ट होता है।

साधारण गृहस्थी और विद्वान्:- साधारण गृहस्थ व्यक्ति अपने जीवन में सन्तान प्राप्ति के लिगे सदा उत्सुक रहते हैं और सन्तान होने पर उनको बहुत प्रसन्नता होती है, सन्तान के मोह में आसक्त रहते हैं। उन्हें अपने पुत्र-पुत्रियों के अतिरिक्त अन्य किसी का कोई ध्यान नहीं रहता है, किन्तु बुद्धिमान् और विद्वान् स्त्री-पुरुष अपनी बुद्धि के द्वारा अपने कर्मों की प्रगति करते रहते हैं अर्थात् अपने सत्कर्मों के द्वारा निरन्तर उन्नति करते हुए विद्वान् लोक कल्याण का कार्य करने में सफल होते हैं[१८]। परमात्मा से अपनी आध्यात्मिक सम्पदा की प्राप्ति के लिये प्रेरणा प्रदान करने लिये आग्रह करते हैं। जिससे उस सम्पदा की प्राप्ति से हमारा जीवन यशस्वी बने[१९] यह कामना एक विद्वान् उपासक किया करता है।

सांसारिक भोग और उपासना :- परमात्मा (स्वः) सुख स्वरूप है उसी ने अपने सामर्थ्य से दिन की महाज्योति अर्थात् सूर्य को बनाया तथा रात्री में जो तारे चमकते हैं उनको भी परमात्मा ने बनाया है। सांसारिक भोग जो तारेरूप हैं मनुष्य को अन्धा बना देते हैं ये मनुष्य के लिये हितकारी नहीं होते हैं। यह वेदमन्त्रों से स्पष्ट होता

है। परमात्मा ने सांसारिक भोगों को भोगने के लिये इस संसार (सृष्टि) की रचना की है[२०]। इस विशाल ब्रह्माण्ड में अनेक सूर्य-पृथिवी-द्युलोक-अन्तरिक्षादि हैं। अतः सारा ब्रह्माण्ड अनन्त है[२१]। इसलिये वेद ने उपदेश देते हुए लिखा है कि ऐसे विशाल ब्रह्माण्ड की रचना करनेवाले परमेश्वर को छोड़कर किसी अन्य की उपासना मनुष्य को नहीं करनी चाहिये। परमात्मा आनन्द की वर्षा करनेवाला अर्थात् आनन्द प्रदाता है। इसलिये वेदमन्त्रों के द्वारा परमात्मा की स्तुति करनी चाहिये[२२]। हम वेदों का स्वाध्याय करके अपनी अविद्या को दूर करें सात्विक भोजन करके अपनी भूख को शान्त करके रोग रहित होकर अपनी शक्तियों की वृद्धि करें तथा निरन्तर श्रम करते हुए अपनी सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक सम्पदा को उपासना के द्वारा प्राप्त करें[२३]।

उपासना की महत्ता और आवश्यकता का उपदेश दिया है कि हे उपासना यज्ञ के करनेवाले उपासको! उस परमेश्वर की अर्चना पूजा-उपासना किया करो उसकी बहुत अधिक अर्चना करो, छोटे छोटे पुत्र-पुत्रियां (पुत्रकाः) भी उस परमेश्वर की पूजा किया करें, जैसे शरीर की रक्षा के प्रति स्वस्थ व्यक्ति सदा जागरुक रहता है वैसे ही पापनाशक ब्रह्म की उपासना के लिये उपासक सदा जागरूक रहे और उपासना करता रहे[२४]।

पूर्णायु और स्वस्थ जीवन :- राजयक्ष्मा (टी.बी.) रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये यज्ञ में ऐसी ओषधियों की आहुति देनी चाहिये जो रोगनाशक हों, इस विषय में उपदेश देते हुए लिखा है कि हे रोगी! तुम्हारे जीवन को यक्ष्मा रोग से सुरक्षित रखने के लिये मैं ऐसी सामग्री की आहुति देता हूँ जिससे इस रोग के सूक्ष्म कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। राज यक्ष्मा रोग ने रोगी को (जग्राह) पकड़ लिया है अर्थात् इसे रोगग्रस्त कर दिया है इसलिये इस औषधयुक्त हवन सामग्री की आहुति के द्वारा तथा परमात्मा की कृपा से यह शीघ्र ही रोग मुक्त हो जायेगा[२५]। वेदमन्त्र से स्पष्ट होता है रोग का निवारण ओषधयुक्त आहुति द्वारा तथा ईश प्रार्थना से होता है। इसलिये ओषधियों के साथ ईश प्रार्थना भी रोग से मुक्ति में सहायक होती है अतः दवा के साथ दुआ (प्रार्थना) का भी उल्लेख लोक व्यवहार में प्रचलित है। यज्ञ में रोगनाशक ओषधियों की आहुति देकर जल-वायु को शुद्ध, पवित्र और बलवर्धक बनाया जाता है। जिससे मनुष्य सौ शरद-हेमन्त-वसन्तादि ऋतुओं तक अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त स्वस्थ और बलवान् रहता हुआ जीवित रहता है, यज्ञ में डाली हुई ओषधयुक्त हवि उसे रोगी होने से बचाती है और सौ वर्ष से पहले मृत्यु भी उसे नहीं छीन सकती है अर्थात् यज्ञ के द्वारा मनुष्य स्वस्थ रहकर पूर्णायु जीवित रहता है यह उपदेश वेद में दिया है[२६]।

रोग कीटाणु :- रोग कीटाणु बहुत सूक्ष्म होते हैं ये गर्भ में प्रविष्ट होकर गर्भस्थ शिशु को भी प्रभावित अर्थात् रोगी कर देते हैं इसलिये वेद में इन्हें राक्षस कहा गया है, इनको जिन ओषधियों के द्वारा नष्ट किया जाता है उन ओषधियों के लिये वेद में रक्षोहा (२०-९६-११) अर्थात् राक्षसरूपी कीटाणुओं को मारनेवाली कहा है। ये रोग कृमि (कीटाणु) कच्चा मांस खानेवाले होते हैं शरीर में प्रविष्ट होकर उसे नष्ट कर देते हैं इसलिये इन्हें 'क्रव्याद' लिखा है इनके कारण शरीर में बहुत दुष्परिणाम हो जाते हैं, शरीर विकृत (रोगी) हो जाता है इसलिये इन्हें 'दुर्णामा' (२०-९६-२) कहा गया है। ये गर्भाशय गर्भस्थ शिशु के आंख-कान-नाक-मुख-जिह्वा-ग्रीवा-कन्धे-हाथ-पैर-हृदय-फेफड़े-छोटी बड़ी आंतें आदि शरीर के सभी अंगों में प्रविष्ट होकर शरीर रोगी कर देते है यह वर्णन २०-९६ के मन्त्र ११ से लेकर ३९ मन्त्रों का किया है।

परमात्मा ही माता-पिता :- जीवात्मा और परमात्मा का क्या सम्बन्ध है ? इसका उपदेश देते हुए वेद में लिखा है कि परमात्मा हमारा माता पिता है जो सम्बन्ध पिता और पुत्र का या माँ और बेटे का है। वही सम्बन्ध हमारा परमात्मा के साथ है जो जन्म-जन्मान्तरों से हमारे साथ है। वेदों से अपरिचित व्यक्ति जीवात्मा-परमात्मा का सम्बन्ध पति-पत्नी के समान मानते हैं और विविध नामों से (राधा-कृष्ण) या प्रकृति-पुरुष के नाम से मिथ्या व्याख्या करते रहते हैं। उनकी व्याख्या इस वेद मन्त्र के विरुद्ध अमान्य और अप्रामाणिक है। परमात्मा हमें (सुम्नम्) सुख प्रदान करता है, जैसे लौकिक माता-पिता सदा अपनी सन्तान को सुखी देखना चाहते हैं वैसे ही परमात्मा हमें सुख प्रदान करता है। हमें सुख की याचना उससे करनी चाहिये। यह उपदेश इस मन्त्र में दिया है[२७]।

उन्नतशील राष्ट्र :- राष्ट्र उन्नतशील कब रहता है इसका उपदेश वेद में इस प्रकार दिया है कि जिस राष्ट्र में उत्तम दूध देनेवाली गौवें होती हैं, वेगवान् शक्तिशाली अश्व (घोड़े) होते हैं, जिस राष्ट्र में पुरुष बलवान् तथा वीर भावना से युक्त होते हैं तथा जिस राष्ट्र में अन्न-खाद्यपदार्थों की कोई न्यूनता नहीं होती है। धन-धान्य पर्याप्त मात्रा में हो, व्यापारी कृपण-कंजूस न होकर हजारों की संख्या में दान-दक्षिणा देनेवाले होते हों। वह राष्ट्र उन्नतशील होता है[२८]। जिस राष्ट्र में स्वास्थ्यवर्धक खाद्यपदार्थ होते हैं तब घर-घर में पत्नी-पति से पूछा करती है कि आपके खाने के लिये सब सामग्री उपलब्ध है आप पके हुए जौ (जो शक्तिदायक होते हैं) तथा बिल्व फल (बेल) जो स्वास्थ्य (उदर) के लिये पथ्य हितकारक है, उपलब्ध हैं। अन्न-फल-दूधादि सभी पदार्थ

राष्ट्र की जनता को उपलब्ध हों जिससे प्रजा सुखी हो, वह राष्ट्र सम्पन्न तथा उन्नतशील होता है[२९]।

दान के पात्र :- दान किसे देना चाहिये ? इस विषय में वेद ने उपदेश दिया है कि जो व्यक्ति आंखों तथा अन्य सभी इन्द्रियों से पवित्र है अर्थात् पापकर्म से सदा दूर रहता है और जिसका हृदय शुद्ध पवित्र है, जो विद्वान् है, विद्वान् में श्रेष्ठ और उत्तम है ऐसे पवित्र धर्मात्मा विद्वान् को दान देना चाहिये[३०]। जो धर्मात्मा और विद्वान् होने के साथ-साथ आध्यात्मिक पथ अर्थात् योगसाधना के मार्ग पर अपने शिष्यों को चलने के लिये प्रेरित करते हैं, वेद का उपदेश करते हैं, ऐसे पवित्रात्माओं को श्रद्धा भक्ति से दान दक्षिणा देनी चाहिये। आध्यात्मिकता की महत्ता के विषय में लिखा है कि जिस प्रकार दिन (सूर्य) के प्रकाश के विना विविध कार्य सम्पन्न नहीं हो सकते हैं वैसे ही उपासना और यज्ञादि शुभकर्मों के विना मनुष्य आध्यात्मिक पथ में उन्नति नहीं कर सकता है[३१]। इसलिये अध्यात्म पथ के उपदेष्टा गुरुजनों का सम्मान सत्कार करना चाहिये।

भोगी-विलासी व्यक्ति :- सांसारिक भोगों को भोगनेवाला व्यक्ति विषय भोगो में फंसा रहता है, उसको भोग विलास के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। अविद्या के वशीभूत होकर आध्यात्मिक-आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध दुःखों से दुःखी रहता है तथा स्थूल-सूक्ष्म और कारण शरीर के बन्धनों में बंधा हुआ रहता है। वह बार-बार सांसारिक विषय भोगों की चर्चा करता रहता है। विविध खाद्यपदार्थों की प्रशंसा में लगा रहता है उसका मन अध्यात्म की ओर, ईश्वरोपासना की ओर नहीं लगता है, जो कोई उपासनादि के विषय में उसका ध्यान आकृष्ट करता है तो उसके विचारों को स्वीकार नहीं करता अपितु अध्यात्म पथ का निषेध करता है[३२]। अन्यत्र भी कहा है कि जिनका मन विषय भोग और धन में लगता है, उसे धर्म और उपासनादि की बातें अच्छी नहीं लगती हैं[३३]। इस काण्ड के अन्तिम मन्त्र से अश्विनी अर्थात् राजा और मन्त्री से राष्ट्र की प्रजा के सुख के लिये प्रार्थना की गयी है[३४]। जिससे सभी राष्ट्रवासी सुखपूर्वक रहकर अपने राष्ट्र को उन्नतशील बनावें।



प्रमाण :-

१. दीर्घस्ते अस्त्वंकुशो येना वसुप्रयच्छति....॥ (अथर्व. २०-५-४)
२.. यस्ते श्रृंगवृषो नपात् प्रणपात्.... आमनः ॥ (अथर्व. २०-५-७)
३. ये ना समुद्रमसृजो..... क्षोणीरनुचक्र दे ॥ (अथर्व. २०-९-४)
४. इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि...... बृहते रणाय ॥ (अथर्व. २०-११-४)
५. ऋजीषी व्रजी वृषभः................ मत्सदिन्द्र ॥ (अथर्व. २०-१२-७)
६. उप-त्वा कर्मन्नूतये......... सानसिम् ॥ (अथर्व. २०-१४-२)
७. यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य.......... इन्द्रभूतये ॥ (अथर्व. २०-१४-३)
८. हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं....... मघवा शतम् ॥ (अथर्व. २०-१४-४)
९. गोभिष्टरेमामतिं......... वृजनेना जयेम ॥ (अथर्व. २०-१७-१०)
१०. एभिर्द्युभिः सुमना......... समिषा रभेमहि ॥ (अथर्व. २०-२१-४)
११. यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते...... अमृतं यजामहे ॥ (अथर्व. २०-२५-५)
१२. सो अस्य वज्रो हरितो..... हरिता मिमिक्षिरे ॥ (अथर्व. २०-३०-३)
१३. यो जात एव प्रथमो मनस्वान्....... स जनास इन्द्रः ॥ (अथर्व. २०-३४-१)
१४. यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो....... स जनास इन्द्रः ॥ (अथर्व. २०-३४-७)
१५. वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृहशम्....... ममे ॥ (अथर्व. २०-४२-१)
१६. उदु त्यं जात वेदसं देवं....... दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ (अथर्व. २०-४७-१२)
१७. दाना मृगो न वारणः......... चरस्योजसा ॥ (अथर्व. २०-५३-२)
१८. समोहे वा य आशत...... धियायवः ॥ (अथर्व. २०-७१-२)
१९. अस्मान्......... राये रभस्वतः .... यशस्वतः ॥ (अथर्व. २०-७१-१२)
२०. स्वर्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैः.........अभिष्टौ ॥ (अथर्व. २०-७७-४)
२१. यद् द्याव इन्द्र ते शतं.... रोदसी ॥ (अथर्व. २०-८१-१)
२२. मा चिदन्यद् विशंसत...... शंसत ॥ (अथर्व. २०-८५-१)
२३. गोभिष्टरेमामति दुरेवां...... जयेम ॥ (अथर्व. २०-८९-१०)
२४. अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो...... अर्चत ॥ (अथर्व. २०-९२-५)
२५. मुंचामि त्वा हविषा जीवनाय..... मुमुक्तमेनम् ॥ (अथर्व. २०-९६-६)
२६. शतं जीव शरदो वर्धमानः....... हार्षमेनम् ॥ (अथर्व. २०-९६-९)
२७. त्वं हि नः पितावसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमी महे ॥ (अथर्व. २०-१०८-२)
२८. इह गावः प्रजायध्वम्..... निषीदति ॥ (अथर्व. २०-१२७-१२)
२९. अभी वस्वः प्रजिहीते........ परिक्षितः ॥ (अथर्व. २०-१२७-१०)
३०. य आक्ताश्च सुभ्यक्तः .... संमिता ॥ (अथर्व. २०-१२८-७)
३१. तां ह जरितर्नः .... न पुरोगवामः ॥ (अथर्व. २०-१३५-७)
३२. अरंगरो वावदीतित्रेधा...... अपसेधति ॥ (अथर्व. २०-१३६-१३)
३३. अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ॥ (मनुस्मृति)
३४. पनाय्यं तदश्विना........ याता पिबध्यै ॥ (अथर्व. २०-१४३-९)







॥ वेद महिमा ॥

"पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति"

(अथर्व. १०-८-[illegible]२)

परमात्मा के वेदरूपी काव्य को देखो जो [illegible]

नष्ट नहीं होता है और न कभी पुराना होता [illegible]।

"अथर्ववेद-महत्त्व"

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारगः

निवसत्यपि तद् राष्ट्रं वर्धते निरूपद्रव्यम् ॥

(अथर्व. परि. ४-१६)

अर्थात् जिस राजा के राज्य में अ[illegible]र्ववेद का जाननेवाला विद्वान् शान्ति स्था[illegible] के कार्य में संलग्न रहता है वह राष्ट्र उपद्रव [illegible]त होकर उन्नति को प्राप्त करता है।